तुलसी साहित्य में
पौराणिक आख्यानों का विनियोग

पैठ संस्कृत सिन्धु में पाये जहां जो रत्न,
ग्रथित करने में उन्हें करके अलौकिक यत्न।
हार जो तुमने दिये इस देश को उपहार,
कर सकेगा कौन उसके मूल्य का निर्धार ॥

—मैथिलीशरण गुप्त
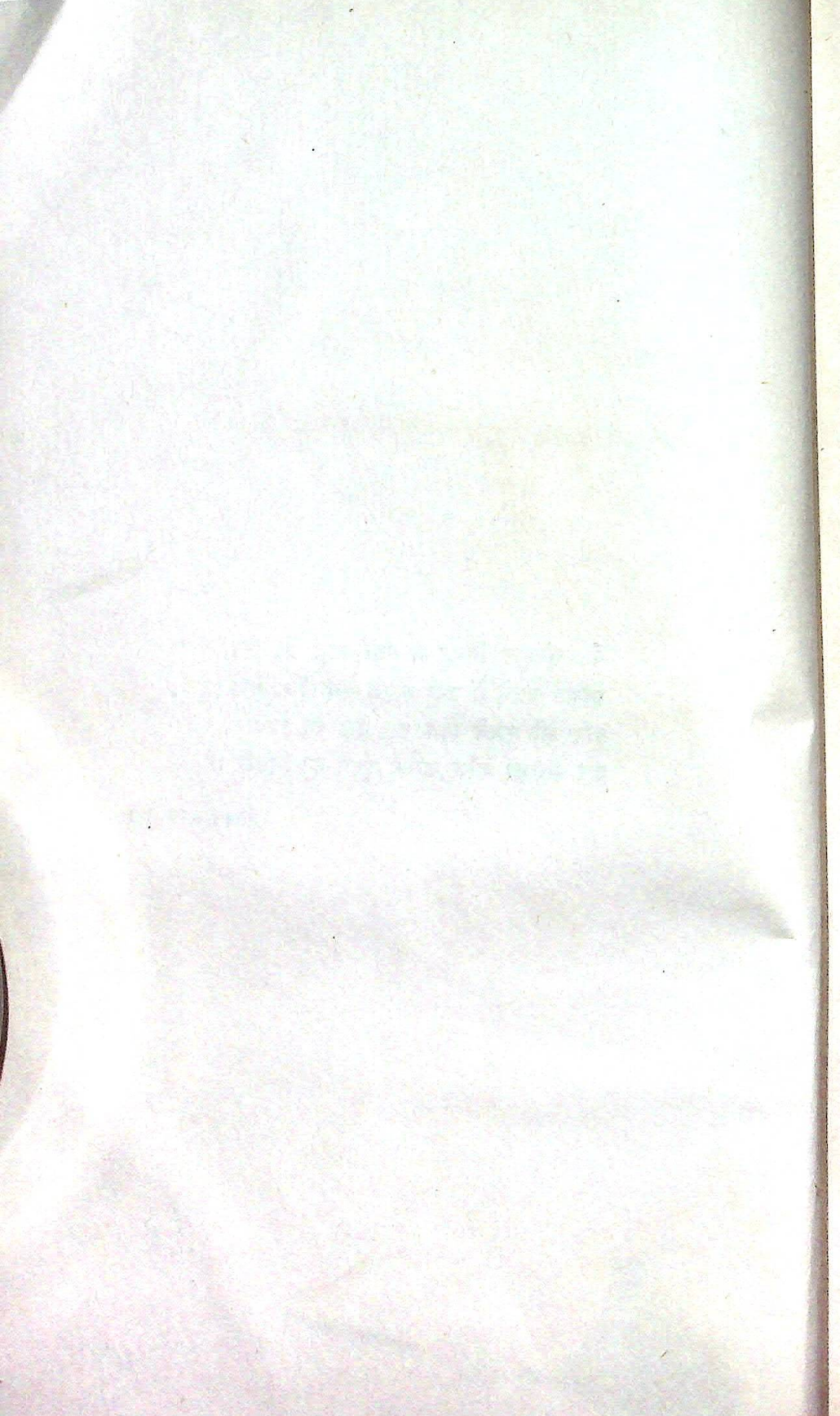
तुलसी साहित्य में पौराणिक आख्यानों का विनियोग

(जम्मू विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच०डी० उपाधि हेतु स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

डॉ० बी० के० शास्त्री
एम० ए०,पी-एच० डी०
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
राजकीय महिला कॉलेज,
परेड, जम्मू।

राजेश प्रकाशन, जम्मू (कश्मीर)।

●

प्रकाशक :
राजेश प्रकाशन, 121, रघुनाथपुरा, जम्मू (कश्मीर)।

●

1982

●

मूल्य 80-00 रुपये

●

मुद्रक :
प्रभात प्रिंटिंग प्रैस, न्यू ट्रांसपोर्ट यार्ड, जम्मू।

●

TULSI SAHITYA MEIN
PAURANIK AKHAYANO KA VINIYOG

By Dr. B. K. Shastri

भूमिका

गोस्वामी तुलसीदास जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अपरिमित साहित्य उपलब्ध है। उनके कवि-कर्म को लेकर आलोचनात्मक रचनाओं के अतिरिक्त अनेक शोध-ग्रन्थों की भी रचना हुई है, परन्तु पौराणिक आख्यानों के विनियोग के सन्दर्भ में उनके योगदान की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है। इसी अभाव को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध लिखा गया है।

यह तो सर्वविदित है कि गोस्वामी जी पौराणिक विचारधारा के पोषक एवं प्रचारक थे, किन्तु तत्कालीन भारत की पराधीन तथा अशिक्षित जनता तक इस विचारधारा को संप्रेषित करने का काम बड़ा कठिन था। पराधीनता और विदेशी शासन के अन्याय एवं अत्याचारपूर्ण व्यवहार के कारण, भारतीय समाज में विश्रृंखलता एवं कुण्ठा का व्यापक वातावरण विद्यमान था। जनता धार्मिक दृष्टि से अधोगति की ओर अग्रसर थी। तुलसी उसे पुनः उसके स्वर्णिम अतीत की ओर ले जाना चाहते थे। विदेशी शासन के कारण जनता को स्पष्ट रूप से नवजागरण का संदेश देना संभव न था। अतः उन्होंने अप्रस्तुत ढंग से इस पुण्यकार्य के निष्पादन का निश्चय किया।

अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कवि ने अपने कथ्य को एक ऐसा आदर्श रूप दिया जिसमें काव्य सम्बन्धी रस और औपदेशिकता – दोनों का मणिकांचन संयोग था। अपने मन्तव्य को कान्तासम्मित उपदेश का रूप देकर, जनता के सुखबोध के लिए उन्होंने पौराणिक आख्यानों का आश्रय लिया। राम के आख्यान का आधार लेकर उन्होंने व्यक्ति, परिवार, समाज तथा राज्य का एक ऐसा आदर्श चित्र प्रस्तुत किया जिसका देश की जनता ने अप्रतिम स्वागत किया। कवि ने राम के आख्यान के साथ-साथ अपने धर्म तथा नीति सम्बन्धी मन्तव्य के स्पष्टीकरण के लिए, अनेक अन्य आख्यानों का भी विनियोग किया। तुलसी द्वारा अपने साहित्य में उपयुक्त ढंग से प्रयुक्त होने के उपरान्त ये पौराणिक आख्यान, भारतीय जन-जीवन का एक अविभाज्य अंग बन गए और अब उनको हिन्दू जाति के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन में महत्व-पूर्ण स्थान प्राप्त है।

पौराणिक आख्यान वेदों से चल कर पुराणों से होते हुए सामान्य जनता के जीवन में कैसे घुलमिल गए? भारतीय जनता में उदात्त भावनाओं के प्रसार-प्रचार में इनकी क्या भूमिका रही? तुलसी ने अपनी कृतियों में इनका किस ढंग से विनियोग किया? इस विनियोग में तुलसी का क्या उद्देश्य निहित था? क्या तुलसी अपने उद्देश्य में सफल रहे? इन सभी प्रश्नों पर इस शोध-प्रबन्ध में यथासम्भव विवेचन किया गया है।

जहां तक पौराणिक आख्यानों के प्रभाव का प्रश्न है, सामान्य व्यक्ति से लेकर राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी तक इनसे प्रेरणा लेते रहे हैं। श्रीराम, श्रवण-कुमार, हरिश्चन्द्र जैसे भव्य चरित्र गांधी जी के आदर्श थे। जहां तक प्रचार का प्रश्न है, आज भारत ही नहीं, अमेरिका और ब्रिटेन जैसे भौतिकवादी देशों में भी "हरे रामा, हरे कृष्णा" जैसी धार्मिक संस्थाएं जन्म ले चुकी हैं और वहां पर वृन्दावन, मधुवन आदि के निर्माण के साथ-साथ श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बन्धित अनेक आख्यानों के आधार पर बाललीला, रासलीला आदि का आयोजन किया जाने लगा है।

मैं आदरणीय डा० संसारचन्द्र जी, आचार्य एवं अध्यक्ष स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू के प्रति श्रद्धापूर्ण अभिनन्दन करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूं जिनकी प्रेरणा और निर्देशन में यह शोध-प्रबन्ध लिखा गया है। अहिन्दीभाषी जम्मू-कश्मीर प्रदेश में हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास के लिए, शोध-प्रबन्धों के रूप में उन्होंने जो एक स्वस्थ एवं स्तुत्य परम्परा स्थापित की है, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की गणना भी उसी परम्परा की एक कड़ी के रूप में की जा सकती है।

जनवरी, १९८२.

बी० के० शास्त्री

विषय-सूची

उत्पत्ति, नारद, नारद-मोह, निमि-वशिष्ठ, नीलकण्ठ, नृसिंह, नृग, परशुराम-सहस्रबाहु, परशुराम-रेणुका, प्रह्लाद, पृथु, बालि-रावण, बालि-सुग्रीव, भृगु-विष्णु, महिषासुर, मधु-कैटभ, मारुति उत्पत्ति, ययाति, रन्तिदेव परीक्षा, रावण-सहस्रबाहु, रुद्रदेह, वराह, वाल्मीकि, शिवि, संपाति, सिंहिका, सीतोत्पत्ति, वामन-बलि, विश्वामित्र-वशिष्ठ, राजा वेन, शबरी, सीता-रजक, त्रिशंकु, उलूखल बन्धन, कर्ण, कालिय, कुब्जा, कृष्ण-सत्राजित, कृष्ण दौत्यकर्म, गोवर्धन धारण, द्रौपदी, नरकुंजर, परीक्षित-कलियुग, पूतना, भस्मासुर, यमलार्जुन, शिशुपाल, सत्यभामा-पारिजात, सुदामा, वाणासुर, वृन्दा, वृत्रासुर, हरिश्चन्द्र, हिरण्याक्ष-वराह आदि आख्यानों का सन्दर्भ सहित संक्षिप्त परिचय ।

तुलसी साहित्य में प्रयुक्त पौराणिक आख्यानों के प्रयोग का स्वरूप

तुलसी की पौराणिक आख्यान सम्बन्धी धारणा और उसका औचित्य, तुलसी और तत्कालीन समाज, पुराण साहित्य एवं तुलसी साहित्य के मन्तव्य में एकरूपता, तुलसी की पुराण सम्बन्धी धारणा, तुलसी का उद्देश्य तथा पौराणिक आख्यान, आख्यानों का दृष्टान्तीकरण, आख्यानों की पुनरुक्ति की पृष्ठभूमि। राम तथा कृष्ण सम्बन्धी पौराणिक आख्यानों का तुलसी साहित्य में विनियोग, पुराण साहित्य में रामकथा, रामचरितमानस के उपस्कारक ग्रन्थ, रामचरितमानस तथा पुराण साहित्य की कुछ उक्तियों का तुलनात्मक परिचय, तुलसी साहित्य में पौराणिक सामग्री, भागवत पुराण तथा कृष्ण सम्बन्धी आख्यान, अग्निपुराण तथा रामचरितमानस, आख्यानों में समन्वय की भावना, भक्ति, ज्ञान और कर्म, शक्ति, शील और सौन्दर्य, व्यक्तिधर्म और लोकधर्म, धर्म और नीति, सगुण और निर्गुण, शिव और विष्णु, ब्राह्मण और शूद्र में समन्वय। पुराण साहित्य में साम्प्रदायिकता, त्रिदेवों की एकता, आख्यानों का वर्गीकरण, साम्प्रदायिक दृष्टि से वर्गीकरण—शैवाख्यान, शाक्ताख्यान, वैष्णवाख्यान, ब्रह्माख्यान, सौराख्यान। विषयवस्तु की दृष्टि से वर्गीकरण—आर्षाख्यान, दैवाख्यान, असुराख्यान, नृपति आख्यान, भक्ताख्यान। उद्देश्य की दृष्टि से वर्गीकरण—धर्म सम्बन्धी आख्यान, नीति सम्बन्धी आख्यान, आध्यात्मिक आख्यान, सामाजिक आख्यान।

तुलसी साहित्य में प्रयुक्त पौराणिक आख्यानों में अभिव्यक्त जीवनदृष्टि

जीवन की व्याख्या में आख्यानों का महत्व, व्याख्या के दो रूप—आध्यात्मिक और लौकिक। आध्यात्मिक पक्ष – ब्रह्म, माया, जीव, जगत्। लौकिक-पक्ष – धर्म, नैतिकता, संस्कृति, राजनीति, समाज, नारी।

प्रथम अध्याय

पुराण साहित्य तथा पौराणिक आख्यान

प्रथम अध्याय

प्राचीन काल से ही हमारे देश में पुराण-साहित्य का अध्ययन, अध्यापन एवं अनुशीलन होता रहा है। भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में अनेक ऐसे व्यासपीठ विद्यमान थे, जहां वर्ष के बारह महीने पुराणों के प्रवचन होते रहते थे। देश की जनता में भक्ति, कर्म, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार तथा धार्मिक भावनाओं को जागृत एवं स्थापित करने में पुराण-साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। परमात्मा, वेद, शास्त्र, स्वर्ग, नर्क, पुनर्जन्म, आत्मा की अमरता, धर्म, कर्म, वर्णाश्रम व्यवस्था आदि विषय जितनी सतर्कता से पुराण-साहित्य में विवेचित हुए हैं, उतने अन्यत्र नहीं। हमारी संस्कृति, सभ्यता, संस्कार, आचार, व्यवहार आदि सब पर अन्य धार्मिक ग्रन्थों की अपेक्षा पुराणों का अधिक प्रभाव है। पुराणों में जिन आदर्श और उदात्त चरित्रों का चित्रण हुआ है, वे आज भी हमारे लिए प्रेरणा स्रोत हैं। सतीधर्म के आदर्श, इन्द्रियों का नियमन, शूरवीरता, दृढ़ता, रण क्षेत्र में निर्भयता पूर्वक प्राण त्याग की भावना, देश, धर्म, जाति अथवा समाज के लिए बलिदान की प्रेरणा अधिकतर पुराण-साहित्य से ही मिलती रही है। हमारे देश की व्यावहारिक और दार्शनिक जीवन पद्धति को पुराणों ने विशेष रूप से प्रभावित एवं संचालित किया है। यही कारण है कि हमारे यहां वेदों के बाद पुराणों का ही सब से अधिक सम्मान है।

पुराण-साहित्य का विवेचन करने से पूर्व पुराण के स्वरूप पर विचार कर लेना उचित होगा। पुराण का सामान्य रूप में अर्थ है—पुराना। जिसमें पुरानी बातों का संकलन हो, वह पुराण है। संस्कृत साहित्य के कोशकारों[1] एवं अन्य विद्वानों ने पुराण शब्द का यही अर्थ लिया है। ऋग्वेद के अनुसार पुराण शब्द का अर्थ प्राचीन काल में होने वाला है[2]। यास्क मुनि ने अपने

1. पुराणं पुरा भवम् —पद्मचन्द्र कोश
2. ऋग्वेद : ३/५/४/९; ३/४८/६; १०/१३०/६

प्रसिद्ध ग्रन्थ निरुक्त में पुराण शब्द का निर्वचन करते हुए लिखा है कि जो प्राचीन होकर नवीन जैसा लगे वह 'पुराण' है[1]। अमरकोश की व्याख्या करने वाले भानुदीक्षित कहते हैं कि 'पुराण' वह होता है जो पूर्व काल में हुआ हो, प्राचीन होकर भी नवीन जैसा लगे[2]।

स्वयं पुराणों में भी पुराण शब्द की परिभाषाएं उपलब्ध होती हैं। पद्मपुराण की परिभाषा के अनुसार—पुराण वह है जो प्राचीनता की कामना करता है[3]। वायु पुराण के मत में जो प्राचीन काल में जीवित था, वही पुराण है[4]। ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार—प्राचीन काल की घटनाओं का वर्णन करने वाली रचना को पुराण कहा जाता है[5]।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि जहां पुरानी बातों का संकलन हो, वह पुराण है और ये पुरानी बातें ऐसी हों जो प्रत्येक पढ़ने वाले को नई लगें, अर्थात् उस रचना को जितनी बार पढ़ा जाए, उस में कुछ न कुछ नवीन की अनुभूति हो। जिस पर समय और स्थान का व्यवधान कोई प्रभाव न डाल सके। जो प्राचीन होता हुआ भी सदैव नवीनता से आपूर्ण रहे, वही पुराण है।

पुराण की प्राचीनता के सम्बन्ध में मत्स्य पुराण, अथर्ववेद, छान्दोग्य उपनिषद्, शतपथ ब्राह्मण, वृहदारण्यकोपनिषद् आदि में अनेक प्रसंग मिलते हैं। मत्स्य पुराण में कहा गया है कि ब्रह्मा जी ने सब शास्त्रों से पहले पुराण का स्मरण किया तत्पश्चात् उन के मुखों से वेद प्रकट हुए[6]। इस कथन से स्पष्ट होता है कि कि पुराण नित्यसिद्ध हैं। उनका परम्परा से चिन्तन और प्रवचन किया जाता रहा है। जिन्हें हम पुराणकार कहते हैं वे केवल उनका संकलन करने वाले हैं, निर्माता नहीं। यही कारण है कि अपौरुषेय वैदिक साहित्य में भी पुराण की चर्चा करते हुए, उसे वेदों की भांति नित्य एवं प्रामाणिक बताया गया है। अथर्ववेद में लिखा है कि यज्ञ के उच्छिष्ट से यजुर्वेद, सहित ऋग्वेद,

---

1. पुराणं कस्मात् ? पुरा नवं भवति —निरुक्त : ३/१९/२४
2. पुरा भवम्। यद्वा पुरा अपि नवम् —अमरकोश : १/६/५
3. पुरा परम्परां वष्टि पुराणं तेन तत् स्मृतम् —पद्म पुराण : ५/१/५३
4. यस्मात् पुरा हि अनतीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम् —वायु पुराण : १/२०३
5. यस्मात् पुरा हि अभूच्चैतत् पुराणं तेन तत् स्मृतम्। —ब्रह्माण्ड पुराण : १/१/१७३
6. पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
   अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥ —मत्स्य पुराण : ५३/३

सामवेद, छन्द और पुराण प्रकट हुए[1]। छान्दोग्य उपनिषद् में सनत्कुमार से ब्रह्मविद्या सीखने के अवसर पर नारदमुनि ने स्वयं जिन विद्याओं की चर्चा की है, उनमें पुराण को पंचम वेद कहा गया है[2]। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि अध्वर्यु यज्ञ में कुछ पुराण-पाठ के लिए यह कह कर प्रेरणा देता है कि 'पुराण' वेद है, यह वही वेद है[3]। वृहदारण्यक में कहा गया है कि परमात्मा के निःश्वास से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या और उपनिषदों का जन्म हुआ है[4]। शतपथ ब्राह्मण स्पष्ट रूप से घोषणा करता है कि वेदादि की भांति पुराण इतिहास का भी नित्य स्वाध्याय होना चाहिए। इस से देवता तृप्त होकर स्वाध्याय करने वाले को भी तृप्ति प्रदान करते हैं[5]।

ऊपर की परिभाषाओं में अनेक स्थलों पर इतिहास और पुराण शब्द का एक साथ प्रयोग हुआ है। परन्तु यह दोनों एकार्थवाचक नहीं हैं। दोनों में पर्याप्त अन्तर है। इस अन्तर को वृहदारण्यक उपनिषद् के भाष्य में स्पष्ट करते हुए स्वामी शंकराचार्य ने लिखा है कि 'उर्वशी अप्सराः' इत्यादि ब्राह्मण भाग को इतिहास तथा 'असद् वा इदमग्र आसीत्' इत्यादि सृष्टि-प्रक्रिया-घटित वाक्यों को पुराण कहा है[6]। ऐतरेय ब्राह्मण में देवासुर संग्राम आदि प्रसंगों को इतिहास और सृष्टि प्रतिपादक वाक्य समूह को पुराण कहा गया है[7]। वात्स्यायन ऋषि ने न्यायदर्शन भाष्य में लिखा है कि मन्त्र तथा ब्राह्मण भाग के द्रष्टा और

---

1. ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिवि श्रिताः॥ —अथर्व वेद : ११/७/२४
2. स होवाच ऋग्वेदं भगमोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं -
चतुर्थमितिहास पुराणं पंचमं वेदानां वेदम्। —छांदोग्य : ७/१
3. अध्वर्युस्ताक्ष्र्यो वै पश्यतो राजेत्याह ... ... ।
तानुपदिशति पुराणम्। वेदः सोऽयमिति। किंचित् पुराणमाचक्षीत —
एवमेवाध्वर्युः सम्प्रेषति ... ... —शतपथ : १३/४/३१३
4. एवं वारेऽस्य महतोभूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो-
यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः।
—बृहदारण्यक : २/४/११
5. एवं विद्वान् वाकोवाक्यमितिहासः पुराणमित्यहरहः स्वाध्यायमधीते —
त एवं तृप्तास्तर्पयन्ति सर्वैः कामैः सर्वैः भागैः। —शतपथ : ११/३/८/४
6. इतिहास इत्युर्वशीपुरुरवसोःसंवादादिरुर्वशी हाप्सरा इत्यादि
ब्राह्मणमेव। पुराणमसद् वा इदमग्र आसीदित्यादि। —वृहदारण्यक भाष्य : ४/२
7. देवासुराः संयत्ता आसन्नित्यादय इतिहासा इदं वा अग्रे
नैव किंचिदासीदित्यादिकं जगतः प्रागवस्थामुपक्रम्य सर्ग प्रदिपादकं
वाक्यजातं पुराणम्। —ऐतरेय ब्राह्मणोपक्रम-सायणाचार्य, (वेदभाष्य)

प्रवचन कर्ता ऋषि ही इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्र के भी प्रवर्तक हैं। इन सब का अलग-अलग क्षेत्र है। अपने अपने विषय में सभी प्रामाणिक स्वीकार किए जाते हैं। यज्ञ मन्त्र ब्राह्मण भाग का विषय है, लोकवृत्त, इतिहास और पुराण का तथा लोक व्यवहार की स्थापना धर्मशास्त्र का विषय है[1]। वाल्मीकि रचित रामायण में उल्लेख है कि पुराणों में भूतकाल, भविष्यत्काल और वर्तमानकाल—इन तीनों की प्रमुख घटनाओं का वर्णन हुआ करता है। सूत, सुमन्त ने महाराजा दशरथ को पहले ही अवगत कर दिया था कि किस प्रकार उन्हें सन्तान की प्राप्ति होगी। इस बात का पता सुमन्त को पुराणों की कथा सुन कर ही चला था[2]। महाभारत में भी स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पुराणों में आदि वंशों के वर्णन होते हैं[3]। ऊपर कहे गए प्रमाणों के आधार पर ही पुराण के सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित ये पांच लक्षण स्थिर किए गए हैं। जिसमें यह पांचों विशेषताएं विद्यमान होंगी, वही पुराण कहा जाएगा[4]। पुराण विषयक यह परिभाषा विष्णु, अग्नि, भविष्य, मार्कण्डेय, ब्रह्मवैवर्त, वराह, स्कन्द, कूर्म, मत्स्य, गरुड, ब्रह्माण्ड तथा शिव पुराण में न्यूनाधिक शब्दभेद से उपलब्ध होती है। पुराण के लक्षणरूप प्रस्तुत पांच विषय भी पांच-पांच प्रकार से भिन्न हैं :

१. सर्ग

१. सृष्टि क्रम,
२. सृष्टि के विषय में भिन्न-भिन्न मत,
३. अवतार,
४. आयति,
५. ब्रह्माण्ड।

२. प्रति सर्ग

१. शास्त्रावतरण,

---

1. य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहास पुराणस्थ धर्मशास्त्रस्य चेति विषय व्यवस्थापनाच्च यथा विषयं प्रामाण्यं यज्ञो मन्त्र ब्राह्मणस्य, लोकवृत्तमितिहास पुराणस्य, लोकव्यवहार व्यवस्थापनं-धर्मशास्त्रस्य, विषयः
—न्यायदर्शन : सूत्र ४/२/६२
2. एतत् श्रुत्वा रहः सूतो राजानमिदमब्रवीत्।
श्रूयतां यत् पुरावृत्तं पुराणेषु मया श्रुतम्॥ —वाल्मीकि रामायण : बालकाण्ड, सर्ग ९, श्लोक १
3. पुराणे हि कथा दिव्या आदि वंशाश्च धीमताम् —महाभारत : आदिपर्व, ५/२
4. सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च।
बंशानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम्॥ —मत्स्य पुराण : ५३/६४; अग्निपुराण : १/१४

२. कल्पशुद्धि,
३. सृष्टिसंहार,
४. ज्योतिश्चक्र,
५. भूगोल ।

३. वंश

१. ऋषि-वंश,
२. पितृवंश,
३. सूर्यवंश,
४. चन्द्रवंश,
५. अग्निवंश ।

४. मन्वन्तर

१. युग,
२. दिव्य युग,
३. नित्यकल्प,
४. सप्तकल्प,
५. त्रिंशत् कल्प ।

५. वंशानुचरित

१. ऋषिचरित,
२. देवयोनि चरित,
३. सूर्यादि वंश चरित,
४. देववंश चरित,
५. असुरवंश चरित ।

श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में पुराण के दस लक्षण बताए गए हैं जो इस प्रकार हैं :

१. सर्ग,
२. विसर्ग,
३. वृत्ति,
४. रक्षा,
५. अन्तर,
६. वंश,
७. वंशानुचरित,
८. संस्था,

९. हेतु,
१०. अपाश्रय[1]।

किन्तु ये दस लक्षण पुराण के पांच लक्षणों का ही विस्तृत रूप हैं। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—ये पांच लक्षण भागवत के बारहवें स्कन्ध में हैं। बाकी के पांच लक्षणों का समावेश भी इन्हीं पांच लक्षणों में किया जा सकता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पुराण के तो पांच ही लक्षण है और दस लक्षण केवल भागवत पुराण की निजी विशेषता है जिसे महापुराण कहा जाता है। जिस प्रकार काव्यशास्त्र में पांच अंक वाले को नाटक और दस अंक वाले को महानाटक कहते हैं, ठीक उसी प्रकार पंचलक्षण-युक्त रचना को 'पुराण' तथा दसलक्षण युक्त को 'महापुराण' कहा जा सकता है।

पुराण की प्राचीनता

शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र भाष्य में कहा है कि इतिहास और पुराण को भी पौरुषेय के जैसा प्रमाणान्तर मूलता (अर्थात् वेद के बाद गौण प्रमाण के जैसा) स्वीकार करना होगा[2]। अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण, वृहदारण्यक, छांदोग्योपनिषद्, तैत्तिरीय उपनिषद्, आरण्यक, आश्वलायन गृह्यसूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, मनु-संहिता, रामायण, महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध पौराणिक प्रसंगों से यही स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में भी पुराण साहित्य प्रचलित था और हिन्दू समाज में उसे विशेष सम्मान प्राप्त था। इसी कारण उसे पांचवां वेद माना गया था। भगवान के अयत्न से जिस प्रकार चारों वेदों का उदय हुआ था, पुराण की उत्पत्ति भी उसी रूप में स्वीकार की गई है। राय कृष्णदास अपने 'पुराण और साहित्य' नामक लेख में पुराण साहित्य की सत्ता वैदिक काल से ही स्वीकार करते हैं[3]। किन्तु उस युग में पुराण कोई रचना-विशेष न हो कर 'पुराणविद्या' के रूप में मौखिक परम्परा के रूप में ही प्रचलित था और वह शताब्दियों तक चलता रहा। उस युग में पुराण का अर्थ था—लोक प्रचलित परन्तु अव्यवस्थित इधर उधर बिखरी हुई लोक कथाओं वाली विशेष विद्या। आचार्य बलदेव उपाध्याय का भी मत है कि "भारतीय साहित्य के इतिहास में पुराण का उदय वैदिक युग में हुआ और उसका अभ्युदय महाभागवत गुप्तों के

---

1. सर्गश्चाथ विसर्गश्च वृत्ति रक्षान्तराणि च।
   वंशो वंश्यानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः॥ —भागवत पुराण : १२/७/९
2. इतिहास पुराणमपि पौरुषेयत्वात् प्रामाणन्तरमूलतामाकांक्षते
   —ब्रह्म सूत्र भाष्य : १/३/३२
3. राय कृष्ण दास, पुराण और साहित्य : वेंकटेश्वर समाचार दीपावली अंक

साम्राज्यकाल में सम्पन्न हुग्रा[1]।

पुराण ग्रपने ग्रारम्भिक जीवन में केवल विद्या विशेष का वोधक था। ग्रन्थ के रूप में इसका कोई ग्रस्तित्व न था। यह मौखिक रूप में ही जनता में प्रचलित था। ग्राज के युग में भी ग्राम जनता में ग्रसंख्य कथाएं ऐसी हैं जिनके कर्ता का कहीं कोई पता नहीं चलता। ये कथाएं एक वक्ता के मुख से दूसरे वक्ता के पास पहुंचती हैं ग्रौर इसी रूप में सदियों तक जीवित रहती हैं। वैदिक युग में पुराण की भी यही स्थिति थी। वह एक विद्या के रूप में था जिस का प्रवचन किसी ग्रन्थ से नहीं ग्रपितु मौखिक रूप से ही किया जाता था। परन्तु ग्राज पुराण का जो विकसित ग्रौर परिवर्तित रूप दिखाई देता है, वह निश्चय ही वैदिक कालीन पुराण से भिन्न है। श्रीरामदास गौड़ ग्रपने 'हिन्दुत्व' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं—"वैदिक साहित्य में पुराणों के उल्लेख से इस भ्रम में न पड़ना चाहिए कि इन का ग्रभिप्राय ग्राजकल के १८ पुराणों से है। जिन पुराणों का उल्लेख वैदिक साहित्य में है, वह पुराण ग्राजकल उपलब्ध नहीं हैं[2]। ग्राधुनिक पुराण साहित्य में जिस ढंग से वेद-स्मृति की व्याख्या उपलब्ध होती है, उससे भी यही निष्कर्ष निकलता है कि ये पुराण वेद के समान प्राचीन ग्रथवा समकालीन नहीं कहे जा सकते[3]। डा० विण्टर नित्ज तथा ग्रन्य पाश्चात्य विद्वान इन पुराणों को एक हजार वर्ष से ग्रधिक प्राचीन स्वीकार नहीं करते। कुछ ग्रंग्रेज विद्वान तो पुराणों को 'गप', 'नानी की कहानी' ग्रौर बच्चों की बातें कहते थे[4]। पुराणों में भारत को विश्व की समस्त ग्रार्यजाति के धर्म, ग्रर्थ, भाषा, संस्कृति ग्रादि की उद्‌गमभूमि ग्रथवा मूल स्थान बतलाया गया था। इन में भारतियों की दिग्विजयों की शौर्यगाथा भरी थी, सच्चा इतिहास था। भला पाश्चात्य लोग इसे कैसे सहन करते? भारतीय पुरातत्वविद विद्वानों का मत पाश्चात्य विद्वानों से नहीं मिलता। न तो पुराणों के रचनाकाल के सम्बन्ध में ग्रौर न ही विषयवस्तु के सम्बन्ध में।

वर्तमान पुराण साहित्य के सर्जन की प्रक्रिया तव ग्रारम्भ हुई जब व्यास जी ने पुराण-साहित्य की रचना करके पुराण को व्यवस्थित रूप में प्रतिष्ठित

---

1. बलदेव उपाध्याय, पुराण-विमर्श : पृ० ३६
2. श्रीरामदास गौड़, हिन्दुत्व : पृ० १६१
3. डा० विश्वनाथ शुक्ल, हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पर श्रीमद्‌भागवत् का प्रभाव : पृ० ७
4. The Puranas are folk-tales, childish legends, without an order and any value and the Hindoos do not possess any historical sense.
   J. Rogar Revier –Western Orientlism : Page 27.

किया[1]। पुराण-संहिता की रचना से पुराण विषयक अव्यवस्था का अन्त हो गया। मौखिक परम्परा समाप्त हो गई। पुराण ने ग्रन्थ का रूप ले लिया। सामान्यतया सभी पुराण इस विषय में एक मत हैं कि व्यास ने पुराण-साहित्य का प्रणयन कर उसे अपने शिष्य लोमहर्षण नामक सूत को पढ़ाया और उसके प्रचार का साधन भी उसी को बनाया। यह कार्य उन्हों ने उस समय किया जब उन्होंने वेद का चार संहिताओं में विभाजन करके चार विशेष शिष्यों को इन का अध्ययन करवा कर, इनके प्रचार का आदेश दिया[2]। इन्हों ने ही सौ करोड़ श्लोकों वाले पुराण को चार लाख श्लोकों में उपस्थित किया[2]। लोमहर्षण के पौराणिक प्रवचन सुन कर जनता के हर्षातिरेक से रोंगटे खड़े हो जाते थे[3]। महाराज वेन के पुत्र महाराज पृथु द्वारा यज्ञ के अग्निकुण्ड से उनका जन्म हुआ था[4]। अग्निकुण्ड से सूत (उत्पन्न) होने के कारण, उनका उपनाम सूत पड़ गया था। इनके पुत्र उग्रश्रवा भी पुराण और इतिहास के कुशल वक्ता थे जिन्होंने परीक्षित के पुत्र जनमेजय को महाभारत का कुछ परिशिष्ट (हरिवंश) सुनाया था। इन्हीं लोमहर्षण के ६ शिष्य हुए। (१) सुमति (२) अग्निवर्चा (३) मित्रायु (४) शांसपायन (५) अकृतव्रण और (६) सावर्णि[5]। इन में से अकृतव्रण, सावर्णी और शांसपायन ने भी अपनी-अपनी संहितायें बनाईं जो रोमहर्षण की संहिता से मिल कर चार हो गईं। विष्णु पुराण इन चारों पुराण संहिताओं का सार है[6]। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि वेद व्यास तथा

1. पुराण संहिता चक्रे पुराणार्थ विशारदः —विष्णु पुराण : ३/६/१५
2. संक्षिप्य स पुनर्वेदान् चतुर्धा कृतवान् मुनि।
   व्यस्तवेद तया लोके वेद व्यास इति श्रुतः॥
   पुराणमपि संक्षिप्तं चतुर्लक्ष प्रमाणतः।
   अद्यापि देव लोके तत् शतकोटि प्रविस्तरम्॥
   —शिव पुराण : वायवी संहिता, प्रथम अ०, श्लोक ३३/३४
3. (क) प्रख्यातो व्यासशिष्योऽभूत सूतो वै रोम हर्षणः।
   पुराण संहितां तस्मै ददौ व्यासो महामतिः॥ —विष्णु पुराण ३/६/१६
   (ख) लोमानि हर्षयांचक्रे श्रोतृणां यत्सुभाषितैः।
   कर्मणः प्रथितस्तेन लोकेऽस्मिन् लोमहर्षणः॥
   —वायु पुराण : अ० १, श्लोक १३
4. वैन्यस्य तु पृथोर्यज्ञे वर्तमाने महात्मनः।
   सुत्ययाम् भवत् सूतः प्रथमं वर्ण वैकृतम्॥ —वायु पुराण : अ० १, श्लोक ३३
5. सुमतिश्चाग्नि वर्चाश्च मित्रायुश्शांस पायनः।
   अकृतव्रण सावर्णी षट शिष्यास्तस्य चा भवन्॥ —विष्णु पुराण : ३/६/१७
6. काश्यपः संहिताकर्ता सावर्णी शांसपायनः।
   रोमहर्षणिका चान्या तिसृणां मूल संहिता॥ —वही, ३/६/१८

उनके शिष्यानुशिष्यों द्वारा प्रवर्तित पुराण संहिताओं की सहायता से ही वर्तमान पुराण की रचना हुई है। क्योंकि ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, धर्मसूत्र और प्राचीन स्मृतियों में सब जगह पुराण शब्द का ही प्रयोग किया गया है, 'पुराण-संहिता' शब्द का नहीं। इससे प्रमाणित है कि व्यास के पहले पुराण, 'पुराण-संहिता' की तरह व्यवस्थित नहीं था। व्यास के समय पुराणों की जो लोक-वृत्तात्मक वहुविध सामग्री परम्पराओं में सुरक्षित थी, व्यास ने उन सभी प्राचीन विषयों के साथ-साथ आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि आदि नवीन विषयों को जोड़कर 'पुराण संहिता' का निर्माण किया, जिस का एक निश्चित आकार भी था। इसके पहिले न तो पुराण का कोई निश्चित रूप था और न ही उस की कोई निश्चित विषयवस्तु। जो भी पुरातन लोकवृत्त विभिन्न परम्पराओं में विद्यमान थे, वही पुराण के वर्ण्यविषय समझे जाते थे।

वायु पुराण और मत्स्य पुराण में कहा गया है कि ब्रह्मा ने सब शास्त्रों के पहले पुराण का ही स्मरण किया और बाद में उनके मुख से वेद निःसृत हुए[1]। पुराण के अवतरण से सम्बन्धित सभी प्रसंगों में 'पुराण' शब्द ही प्रयुक्त मिलता है, 'पुराण संहिता' नहीं। दूसरा चिरकाल से प्रचलित इस पुराण के ही सर्गादि पांच मुख्य वर्ण्य-विषय थे, यह भी कहीं स्पष्टतया नहीं कहा गया। इस के अतिरिक्त 'शतकोटि प्रविस्तरम्' शब्द भी वैदिक पुराण के अनिश्चित और अव्यवस्थित रूप का ही द्योतक है। स्पष्ट है कि व्यासदेव से पहले पुराण का कोई स्पष्ट रूप नहीं था। आम जनता में यह लौकिक शास्त्र के रूप में प्रचलित था, अतः समाज की रुचि और परिवर्तन के साथ-साथ पुराण का रूप भी परिवर्तित होता रहा। आचार्यों के वेद को 'अकृत्रिम' और पुराण को 'कृत्रिम' कहने में भी यही रहस्य है[2]। पुराण की "पुरापि नवं भवति पुराणम्" यह परिभाषा भी यही संकेत देती है कि समाज में प्रचलित परम्परागत विविध लोक-वृत्त ही 'पुराण' नाम से प्रचलित थे।

भगवान् व्यास ने केवल एक 'पुराण-संहिता' की रचना की। उस एक से 'लोमहर्षण' के तीन शिष्यों ने तीन संहिताओं का निर्माण किया। पहले केवल यही चार पुराण संहिताएं प्रचलित थीं। इन्हीं चारों से १८ पुराण और उसके बहुत समय बाद अनेक उपपुराण संकलित हुए थे। इस सम्बन्ध में शिव पुराण के रेवा महात्म्य में लिखा है :

---

1. पुराण सर्वं शास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
   नित्यं शब्दमयं पुण्यं शत कोटि प्रविस्तरम्।
   अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदा स्तस्य विनिःसृताः॥ —मत्स्य पुराण : ३/३४
2. तन्त्र वार्त्तिक : १/३३

कल्पान्तर में पुराण एक ही था जो सौ करोड़ श्लोकों में विस्तृत था। ब्रह्मा जी ने स्मरण करके मुनियों को उसका उपदेश दिया था। समयानुसार इस वृहत् पुराण साहित्य का जब लोगों के लिए ग्रहण करना असंभव हो जाता है, तब भगवान, व्यास रूप धारण करके, प्रत्येक द्वापर में उसका संक्षेप किया करते हैं। उस समय उसकी श्लोक संख्या कुल चार लाख रह जाती है। उस समय एक ही पुराण को वे अठारह भागों में बांट देते हैं। अतीत द्वापर में ऐसा ही हुआ। अतः पुराणों की संख्या एक से बढ़ कर अठारह हो गई[1]।

विष्णु पुराण में यथा क्रम जो १८ पुराणों के नाम हैं, वे इस प्रकार हैं[2] :

१. ब्रह्म पुराण,
२. पद्म पुराण,
३. विष्णु पुराण,
४. शिव पुराण,
५. भागवत पुराण
६. नारद पुराण,
७. मार्कण्डेय पुराण,
८. अग्नि पुराण,
९. भविष्य पुराण,
१०. ब्रह्मवैवर्त पुराण,
११. लिंग पुराण,
१२. वराह पुराण,
१३. स्कन्द पुराण,
१४. वामन पुराण,
१५. कूर्म पुराण,
१६. मत्स्य पुराण,
१७. गरुड़ पुराण,
१८. ब्रह्माण्ड पुराण।

---

1. शिव पुराण : रेवा माहात्म्य, १/२३–३०
2. ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा।
तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्॥
आग्नेयमष्टमं चैव भविष्यन्नवम स्मृतमं।
दशमं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमैकादशं स्मृतम्॥
वाराहं द्वादशं चैव स्कान्दं चात्र त्रयोदशम्।
चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पंशदशं तथा॥
मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः परम्।
महापुराणान्येतानि हि अष्टादश महामुनेः॥ —विष्णु पुराण : ३/६/२१–२४

इन सब पुराणों में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित कथित हुए हैं। विष्णु पुराण में लिखा है—"हे मैत्रेय जिस पुराण को मैं तुम्हें सुना रहा हूं, वह पद्म पुराण के अनन्तर कहा हुआ वैष्णव नामक महापुराण है[1]"।

विष्णु पुराण के उक्त कथन से प्रमाणित होता है कि एक ही समय १८ पुराण संकलित नहीं हुए। इनका संकलन क्रमशः हुआ है। सर्वप्रथम ब्रह्मपुराण, फिर पद्म, फिर विष्णु। इस प्रकार से अठारह पुराणों का संकलन और प्रचार हुआ है।

कुछ लोग इस बात पर कि सत्यवती के पुत्र व्यास ही अठारह पुराणों के वाचक हैं[2], यह शंका करते हैं कि यदि सब पुराण केवल एक व्यास के ही बनाए हैं तो उन में एक ही बात बार-बार क्यों कही गई है? उन की रचना में भाव, भाषा तथा वर्णन शैली में इतना अन्तर क्यों है? विभिन्न पुराणों में विभिन्न देवताओं को सर्वश्रेष्ठ बताने का क्या कारण है? क्या एक ही लेखक अपने विभिन्न ग्रन्थों में परस्पर विरुद्ध मत की स्थापना कर सकता है?

पुराणों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सभी पुराणों के लेखक अलग २ हैं। व्यास शब्द किसी एक व्यक्ति का नाम न होकर एक पदाधिकारी का नाम है। वर्तमान युगीन व्यास के अतिरिक्त जो पराशर के पुत्र थे, पहले २७ व्यास और हो चुके हैं। इन सब का वर्णन विष्णु पुराण और देवीभागवत में उपलब्ध है[3]। सभी पुराणों के वक्ता और श्रोता भिन्न २ हैं और वे पुराण भिन्न २

---

1. यदेतत्तव मैत्रेय पुराणं कथ्यते मया।
एतद् वैष्णवं संज्ञं वै पाद्मस्य समनन्तरम्॥ —विष्णु पुराण : ३/६/२६
2. अष्टादश पुराणानां वक्ता सत्यवती सुतः। —स्कन्द पुराण : रेवा खण्ड।
—पद्म पुराण : सृष्टि खण्ड
—विष्णु पुराण : अंश ३

3. द्वापरे प्रथमेव्यस्तः स्वयं वेदः स्वयम्भुवा।
द्वितीये चापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः॥
तृतीये चोशना व्यासः चतुर्थे च बृहस्पतिः।
सविता पंचमे व्यासः षष्ठे मृत्युस्मृतः प्रभुः॥
सप्तमे च तथैवेन्द्रो वसिष्ठश्चाष्टमे स्मृतः।
सारस्वतश्च नवमे त्रिधामा दशमे स्मृतः॥
एकादशे तु त्रिशिखो भरद्वाजस्ततः परः।
त्रयोदशे चान्तरिक्षो वर्णी चापि चतुर्दशे॥
त्रय्यारुणः पंचदशे षोड़षे तु धनजयः।
ऋतुंजयः सप्तदशे तदूर्ध्वं च जयस्मृतः॥

देश काल में सुने तथा कहे गए हैं। यहां तक कि उन की कथाओं की अवतारणा भी विभिन्न कल्पों के सर्ग की प्रक्रिया तथा लोकवृत्त को ही लेकर हुई है। ऐसी दशा में यह नहीं कहा जा सकता कि सभी पुराण एक लेखक की रचनाएं हैं। जब वक्ता भिन्न-भिन्न हैं और विभिन्न देश-काल में उनके प्रवचन हुए हैं तब उनकी भाषा और वर्णन शैली में एकता कैसे हो सकती है? व्यास जी ने विभिन्न कालों के लोक प्रचलित प्रवचनों का संकलन मात्र किया है और उन्हें अठारह भागों में बांट कर अपना व्यास नाम सार्थक किया है। यदि व्यास का अर्थ विस्तार अभीष्ट हो तो एक पुराण को अठारह की संख्या में करके व्यास जी ने उनका विस्तार किया। इस प्रकार उनके द्वारा किया गया संक्षेप भी व्यास (विस्तार) के नाम से अभिहित हुआ। व्यास जी ने शतकोटि श्लोकों से छांट कर चार लाख श्लोकों में ही पुराणों का संकलन किया है। पुनरुक्तियों के लिए भी वही समाधान है। प्रवचनकर्ताओं के भाव, भाषा और वर्णन शैली को अविकल रूप से संकलित करने वाले व्यास जी उनकी पुनरुक्तियां कहां छोड़ देते? रह गई विभिन्न देवताओं या पंचदेवों की अलग-अलग उपासना की बात अथवा सर्वश्रेष्ठता के प्रतिपादन की बात सो वह भी उन वक्ताओं की दृष्टि से संगत ही है। विभिन्न कल्पों में जैसी मान्यता थी, जिस देवता की उपासना को प्रधानता प्राप्त हुई थी, उसका उनके प्रवचनों में प्रतिपादन हुआ। जब परब्रह्म परमात्मा एक है और ब्रह्मादि देवता उसी के वैभव का स्वरूप हैं तब किसी की भी श्रेष्ठता के प्रतिपादन से एक की ही श्रेष्ठता निरुपित होती है। लोक रुचि भिन्न है और सभी का उपासना में अधिकार है; अतः भगवान के विभिन्न रूपों और लीला-चरित्रों में से जिस में जिस अधिकारी की रुचि हो उसी में वह सर्वश्रेष्ठता की भावना करके, उपासना में प्रवृत्त हो, अपने कल्याण का साधन करे। यही उद्देश्य सामने रख कर पुराणों ने पंचदेवों की उपासना का प्रतिपादन किया है। इसी कारण दस पुराण शैव हैं, चार ब्रह्म, दो शाक्त और दो वैष्णव[1]। शिव, भविष्य, मार्कण्डेय, लिंग, वराह, स्कन्द, मत्स्य, कूर्म,

---

ततो व्यासो भरद्‌वाजो भरद्‌वाजाच्च गौतमः।
गौतमादुत्‌तरो व्यासो हर्यात्मा योऽभिधीयते॥
अथ हर्यात्मनोऽन्ते च स्मृतो वाजश्रवा मुनिः।
सोमशुष्मायणस्तस्मात् तृणविन्दु रिति स्मृतः॥
ऋक्षोऽभूद् भार्गवस्तस्माद् वाल्मीकि र्योऽभिधीयते।
तस्मादस्मत्पिता शक्ति व्यासिस्तस्मादहं मुनेः॥
जातुकर्णोऽभवभन्मत्तः कृष्णद्‌वैपायनस्ततः।
अष्टा विंशतिरित्येते वेदव्यासाः पुरातनाः॥

—विष्णु पुराण : ३/३/११–१९

1. अष्टादश पुराणेषु दशभिगीर्यते शिवः।

—स्कन्द पुराण : केदार खण्ड, अ०–१

वामन और ब्रह्माण्ड—ये दस पुराण शैव हैं। विष्णु, भागवत, नारद और गरुड़—ये चार वैष्णव हैं। ब्रह्म और पद्म—ये दो ब्रह्मा के पुराण हैं। अग्नि पुराण अग्नि का है और ब्रह्म वैवर्त पुराण सूर्य की महिमा का गान करता है। विष्णु से संबंधित पुराणों में शिव और विष्णु की समानता प्रतिपादित है। ब्रह्मा की अपेक्षा विष्णु को बड़ा बताया गया है। ब्रह्म पुराण में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन तीनों की समानता बताते हुए भी, ब्रह्मा की श्रेष्ठता स्थापित की गई है। शैव पुराणों में भगवान शिव को ब्रह्मा और विष्णु का कर्ता, वैष्णव पुराणों में विष्णु को शिव और ब्रह्मा का स्रष्टा, शाक्त पुराणों में शक्ति को, इन तीनों की जनयित्री माना जाता है तथा सौर सम्प्रदाय वाले सूर्य को ही इन सब का जनक मानते हैं। इस प्रकार इन पुराणों का प्रमुख उद्देश्य पंच देवों की उपासना है। इन पांच में से एक को प्रमुख और शेष को गौण मान कर उपासना करने का प्रचार है। परमात्मा के ये अलग-अलग पांच सगुण रूप हैं, जिन का सृष्टि में अलग-अलग कार्य-विभाग है।

पुराण परिचय

हम ने पहले लिखा है कि सभी पुराणों की कुल मिला कर श्लोक संख्या चार लाख है और कोई भी पुराण ऐसा नहीं है, जिस की श्लोक संख्या नौ हजार से कम हो। इन हजारों श्लोकों के एक-एक पुराण में जो कुछ वर्णित है, उस का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

ब्रह्म पुराण

यह सर्व-प्रथम पुराण है, जिस में पुराणसम्मत सभी विषयों का व्यापक वर्णन मिलता है। इस में देवताओं की उत्पत्ति, सृष्टि की उत्पत्ति, सूर्यवंश, सोमवंश का संक्षिप्त वर्णन, सूर्यपूजा माहात्म्य, रुद्रमहिमा आदि के वर्णन के साथ पूरे दस अध्यायों में पार्वती के आख्यान का वर्णन है। मार्कण्डेय आख्यान कावर्णन करने के उपरान्त, गौतमी आख्यान एवं उसके अन्तर्गत गौतमी गंगा, वाराह तीर्थ, कृत्तिका तीर्थ, चक्र तीर्थ, पुत्र तीर्थ, यम तीर्थ, नाग तीर्थ, मातृ तीर्थ, विष्णु तीर्थ आदि अनेक तीर्थों का विस्तृत वर्णन है। भागवत पुराण के दशम स्कन्ध के अनुरूप ही इस पुराण में भी श्रीकृष्ण के चरित्र का वर्णन अत्यन्त विस्तार के साथ किया गया है। अनेक अध्यायों में मृत्यु के पश्चात् होने वाली अवस्था का वर्णन है। छः अध्यायों में भगवान सूर्य की महिमा तथा उन के महान प्रभाव का चित्रण है। उत्कल प्रदेश में स्थित जगन्नाथ स्वामी के माहात्म्य का वर्णन इस पुराण का उद्देश्य प्रतीत होता है।

सांख्य योग की समीक्षा की दृष्टि से इस पुराण का विशेष महत्व है। पूरे

दस अध्यायों में सांख्य योग के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। पुराण में वर्णित सांख्य में ईश्वरवाद के अतिरिक्त ज्ञान और भक्ति का भी पुट है। जिन पुराणों के कुछ अध्याय एवं श्लोक महाभारत के कुछ अध्यायों और श्लोकों से मिलते हैं, उन में ब्रह्मपुराण की भी गणना की जा सकती है, क्योंकि इस पुराण के कुछ अध्याय महाभारत के शान्तिपर्व के कुछ अध्यायों के साथ पूर्णतः मेल खाते हैं।

पद्म पुराण

यह एक विशालकाय पुराण है जो आकार की दृष्टि से केवल स्कन्द पुराण से छोटा है जिस की श्लोक संख्या ८१ हजार है। पद्म पुराण निम्नलिखित् पांच खण्डों में विभाजित है :

१. सृष्टि खण्ड,
२. भूमि खण्ड,
३. स्वर्ग खण्ड,
४. पाताल खण्ड एवं
५. उत्तर खण्ड।

यह एक वैष्णव पुराण है जिसमें अनेक आख्यानों द्वारा विष्णु की उपासना करने का उपदेश दिया गया है। पद्म पुराण की एक प्रमुख विशेषता यह है क इस में तीर्थ एवं व्रत सम्बन्धी आख्यानों के साथ-साथ प्राचीन राजाओं एवं महापुरुषों से सम्बन्धित आख्यान भी प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक आख्यान इस में नए रूप में वर्णित हैं। आख्यानों की अधिकता, रोचकता और रूप वैभिन्य की दृष्टि से पद्म पुराण का अपना अलग महत्व है। कुछ आख्यान तो ऐसे हैं जो पद्म पुराण के अतिरिक्त अन्य किसी पुराण में दृष्टिगोचर नहीं होते। इन आख्यानों में—

१. नन्दा धेनु व्याघ्र आख्यान,
२. इक्ष्वाकु-शूकर युद्ध,
३. गणेश द्वारा त्रैपुरी वध,
४. राजा वेन का जैन धर्म ग्रहण,
५. विद्युन्माली और शत्रुघ्न का युद्ध,
६. अर्जुन और नारद का स्त्री रूप होना,
७. शनिदेव पर दशरथ का अभियान

आदि की गणना की जा सकती है। पद्म पुराण के आख्यान अत्यन्त विस्तार से लिखे गये है। यद्यपि अन्य पुराणों की भांति इस में भी व्रत, उपवास, पर्व, तीर्थ आदि का माहात्म्य एवं दानादि की चर्चा है किन्तु इसमें ऐसे वर्णन अन्य पुराणों की तुलना में अपेक्षाकृत कम हैं। इस पुराण की प्रमुख विशेषता

आख्यानों की मौलिकता, आध्यात्मिक एवं धार्मिक विषयों की विवेचना है। इस पुराण के पांचों खण्डों में जिन विषयों का वर्णन हुआ है, उन का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

सृष्टि खण्ड :

इस खण्ड में मन्वन्तरादि परिमाण कथन, नवधासृष्टि, समुद्रमन्थन, दक्षयज्ञ विध्वंस, देव, दानव, गन्धर्व, उरग, राक्षसादि की कथा, पृथुयज्ञ कथा, अर्जुन और कर्ण की उत्पत्ति तथा वैर का कारण, पुष्कर तथा नाथ तीर्थों की उत्पत्ति, इन्द्र-वृत्रासुर संग्राम, वामनावतार, कार्त्तिकेय की उत्पत्ति और विजय, तारकासुर वध, हिरण्यकशिपुबध, रामचरित, गंगा, तुलसी व सूर्य का माहात्म्य, पितृसेवा माहात्म्य और सदाचार की महिमा का वर्णन है। सृष्टि खण्ड के आख्यानों में नन्दाधेनु-व्याघ्र आख्यान एवं गणेश द्वारा त्रैपुरीवध का आख्यान अन्य पुराणों में नहीं मिलता।

भूमि खण्ड :

इस खण्ड में प्रहलाद का जन्मान्तर, विष्णु शर्मा की कथा, वृत्रासुर का आख्यान, राजा पृथु, नहुष, वेन और ययाति के आख्यान, वाराणसी आदि तीर्थ स्थान माहात्म्य वर्णन, स्वर्ग वर्णन, सती सुकला के पातिव्रत धर्म आदि का वर्णन, दान काल कथन, पाप-पुण्य विवेचन, आत्मा के स्वरूप का वर्णन, वेन का वैदिक धर्म परित्याग, सुदेवा का चरित्र वर्णन तथा मेरू पर्वत में महाराजा इक्ष्वाकु के सैनिकों का शूकर के साथ युद्ध का वर्णन है। इन आख्यानों में इक्ष्वाकु-शूकर युद्ध, वेन का जैन धर्म ग्रहण नामक आख्यान अन्य पुराणों भें उपलब्ध नहीं होते।

स्वर्ग खण्ड :

इस खण्ड में दुष्यन्त शकुन्तला आख्यान, सूर्यलोक वर्णन, कुबेर और रावण की उत्पत्ति, भगीरथ जन्म तथा गंगा नयन, धुन्धुमार चरित, मरुत, दिवोदास और हरिश्चन्द्र चरित, दक्षयज्ञ, सती का देहत्याग, परलोक वर्णन और राजधर्म का निरूपण है। इन विषयों के अतिरिक्त शरीरोत्पत्ति वर्णन, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, द्वीप विभाग, भारतवर्ष के पर्वत एवं नदियों का वर्णन, वर्णाश्रम के सामान्य धर्म तथा गृहस्थधर्म निरूपण के साथ-साथ अनेक तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन हुआ है।

पाताल खण्ड :

इस खण्ड में प्रमुख रूप से श्री राम से सम्बन्धित अनेक कथाओं की चर्चा की गई है। रावणवध के उपरान्त राम द्वारा संपादित अश्वमेध यज्ञ से सम्बन्धित प्राय: सभी प्रमुख घटनाओं का वर्णन मिलता है। राम की आज्ञा

से शत्रुघ्न का गमन, विद्युन्माली राक्षस द्वारा अश्वमेध के अश्व का अपहरण, वाल्मीकिआश्रम में लव द्वारा अश्व का बन्धन, शत्रुघ्न के सेनापति कालजीत और लव का युद्ध, शत्रुघ्न तथा लव का युद्ध, लव की मूर्छा, सीता का शोक, अश्व के साथ शत्रुघ्न का अयोध्या आगमन, श्रीराम और वाल्मीकि का संवाद तथा लक्ष्मण के साथ सीता के यज्ञभूमि में आगमन का वर्णन है। अन्य विषयों में अर्जुन का स्त्रीत्व को प्राप्त होना, नारद का स्त्री रूप होना तथा कुछ व्रतों के माहात्म्य का वर्णन है। श्रीकृष्ण के चरित वर्णन के साथ-साथ मथुरा, वृन्दावन आदि की महिमा का वर्णन हुआ है। माधवमास व्रतविधि, वैशाख स्नान माहात्म्य, पुराण श्रवण महिमा तथा पौराणिक पूजाविधि का भी वर्णन है। शालग्राम निर्णय, शालिग्राम महिमा, वैष्णवों की तिलकविधि और उनके विविध नियमों का निरूपण किया गया है।

उत्तर खण्ड :

इस खण्ड में जालंधर आख्यान, मधुकैटभ आख्यान, सत्यभामा और शंखासुर आख्यान, तीर्थ एवं व्रत माहात्म्य, विभिन्न एकादशियों का माहात्म्य, चातुर्मास्य व्रतविधि, विष्णुसहस्रनाम महिमा, कार्तिक माहात्म्य, तुलसी, गीता गंगा तथा चन्द्रभागा माहात्म्य, यमपुरी वृत्तान्त, गृहस्थाश्रम तथा पातिव्रत धर्म, मार्कण्डेय की उत्पत्ति, शिवरात्रि तथा दीपावली माहात्म्य, माघस्नान माहात्म्य तथा दशावतारों का वर्णन है। हरि पूजाविधि वर्णन, युगधर्म निरूपण तथा पुराण माहात्म्य का वर्णन भी उपलब्ध होता है। इस खण्ड में जालंधर आख्यान का वर्णन अत्यन्त विस्तार के साथ हुआ है।

विष्णु पुराण

यह तीसरा पुराण है जो छः अंशों में विभक्त है। इसके प्रथम अंश में सृष्टिप्रक्रिया, समुद्रमन्थन, इन्द्र को दुर्वासा का शाप, ध्रुवचरित, ध्रुववंश, राजा वेण और राजा पृथु की कथा, प्रचेता की समुद्र के जल में तपस्या, प्रहलाद चरित्र, हिरण्यकशिपु वध तथा विष्णु की विभूति का वर्णन है।

दूसरे अंश में भारतवर्ष निरूपण, विविध द्वीपों का वर्णन, सप्त पाताल कथन, लोक वर्णन, वृष्टिकारण निर्देश, जडभरत की कथा, ऋभुनिदाघ संवाद आदि का वर्णन है।

तीसरे अंश में मन्वन्तर, कल्पपरिमाण, वेदव्यास के २८ नाम, कृष्ण द्वैपायन माहात्म्य, निरुक्त कथन, पुराण चर्चा, यमगीता, गृहस्थाश्रम विविधाचार एवं श्राद्ध संबंधी नियमों का उल्लेख है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद की शाखाओं, पुराणों और चौदह विद्याओं का वर्णन है।

चौथे अंश में ऐतिहासिक वंशों की विस्तार से चर्चा है। इश्वाकु, सगर, पुरुरवा, नहुष, ऋष्टु, यदु, तुर्वसु, अणु, पाण्डु आदि वंशों का वर्णन है।

पांचवें अंश में कृष्ण की सभी लीलाओं का निरूपण किया गया है। वसुदेव-देवकी विवाह से लेकर श्रीकृष्ण के कलेवर त्याग तक की सभी घटनाओं का चित्रण इस अंश में हुआ है। अंत में अर्जुन द्वारा यादवों का सत्कार, कलि का आगमन, आभीरों द्वारा अर्जुन पर आक्रमण, अर्जुन को व्यास का उपदेश तथा परीक्षित के अभिषेक का वर्णन है।

छठे अंश में कलि का स्वरूप, कलि धर्म, कल्प, प्रलय तथा भक्ति का वर्णन किया गया है।

शिव पुराण

इस पुराण में शिव की भक्ति का प्रतिपादन किया गया है। प्रायः सभी पुराणों में भगवान शिव परम त्यागी, तपस्वी, परोपकारी और करुणा के सागर के रूप में चित्रित किए गए हैं। पुराणों में अन्य देवता अत्यन्त ऐश्वर्यमय रूप वाले वर्णित किए गए हैं जबकि भगवान शिव त्यागी, श्मशानवासी होने पर भी लोकमंगल करने वाले हैं। इस पुराण के सात खण्ड हैं :

१. विद्येश्वर संहिता,
२. रुद्र संहिता,
३. शतरुद्र संहिता,
४. कोटिरुद्र संहिता,
५. उमा संहिता,
६. कैलाश संहिता,
७. वायु संहिता।

विद्येश्वर संहिता :

इसमें सर्व प्रथम कलियुग के प्रभाव से किए जाने वाले पापों से बुद्धि तथा आचार-विचार के नाश होने का वर्णन करने के उपरांत इनसे मुक्तिलाभ के लिए भगवान शिव की भक्ति का उपदेश है। तदुपरान्त शिव द्वारा ब्रह्मा और विष्णु को पंचकृत्य तथा ओंकार का उपदेश, शिवलिंग का स्थापन, पूजन और माहात्म्य, पंचाक्षर मन्त्र का माहात्म्य, शिव नाम का माहात्म्य, भस्म का माहात्म्य तथा रुद्राक्ष की महिमा का वर्णन हुआ है।

रुद्र संहिता :

इस संहिता के पांच खण्ड हैं :

१. सृष्टि खण्ड,

२. सती खण्ड,
३. पार्वती खण्ड,
४. कुमार खण्ड,
५. युद्ध खण्ड ।

रुद्र संहिता में शिव परिवार सम्बन्धी आख्यान व्यापक रूप से वर्णित हैं। इस के पांचों खण्डों में शिव एवं उनके परिवार के सदस्यों से सम्बन्धित घटनाओं की चर्चा है।

सृष्टि खण्ड :

इस खण्ड में संसार के मूल कारण निर्गुण ब्रह्म का वर्णन, उसी ब्रह्म से साकार शिव तथा शक्ति का आविर्भाव, फिर शिव से विष्णु की तथा विष्णु से ब्रह्मा की उत्पत्ति का वर्णन है।

शिव को प्रमुख और प्रधान देवता बता कर उन्हें ही पूजा और उपासना का एक मात्र पात्र बताया गया है। इस खण्ड में मुख्यतः नारद का अहंकार, विष्णु की माया से मोहित नारद का शिव गणों को शाप, विष्णु की उत्पत्ति, ओंकार से ब्रह्म की उत्पत्ति, शिव और विष्णु की एकता, शिवपूजनविधि, लिंगपूजा विधान एवं विशेष पुष्पों से शिवपूजन के फल का वर्णन है।

सती खण्ड :

इस खण्ड में दक्षसुता सती काजन्म, शिव के साथ विवाह और दक्ष के यज्ञ मे आत्मदाह करने की विस्तृत कथा है। हिमालय पर शिव और सती का विहार, शिव द्वारा सती को मोक्षशास्त्र का उपदेश, दक्ष और शिव के विरोध का कारण, दक्ष द्वारा शिव को आमन्त्रित न करने पर भी सती का पिता के यज्ञ में जाने का आग्रह, दक्ष द्वारा सती का तिरस्कार, यज्ञ-स्थल में सती का आत्मदाह, सती की मृत्यु से क्रोधित शिव का वीरभद्र को उत्पन्न करना, देवताओं का वीरभद्र से युद्ध और पराजय, दक्ष का शिरच्छेदन आदि प्रसंगों का विस्तृत वणंन किया गया है।

पार्वती खण्ड :

इस खण्ड में पार्वती द्वारा शिव की तपस्या और फिर शिव को पति रूप में पाने की कथा है। इन्द्र का कामदेव को शिव की तपस्या भंग करने भेजना, कामदहन, नारद का पार्वती को उपदेश, पार्वती की तपस्या, विष्णु और ब्रह्मा के आग्रह से शिव का विवाहार्थ सहमत होना, शिव का बारात ले कर पार्वती से विवाह करना तथा अन्त में द्विजपत्नी द्वारा पार्वती को पतिव्रत धर्म के उपदेश का वर्णन है।

कुमार खण्ड :

इस खण्ड में कुमार स्कन्द के जन्म तथा उनके पालन-पोषण की कथा है। शिव और पार्वती के विवाह में देवताओं का उद्देश्य एक ऐसा पुत्र प्राप्त करना था जो देवशत्रु तारकासुर का वध कर सके। स्कन्द ने तारकासुर का वध करके देवताओं की कामना पूर्ण की। इसके अतिरिक्त गणेश को प्रथम पूज्य पद दिए जाने और उनके विवाह की कथा है।

युद्ध खण्ड :

इस खण्ड में भगवान शिव के हाथों से अनेक दैत्यों के वध के प्रसंग हैं। यद्यपि यह दैत्य उनके भक्त थे पर अन्यायी एवं अत्याचारी होने के कारण शिव उनसे संसार को मुक्ति दिलाते रहे। इन आख्यानों में शिव और शंखचूड का आख्यान विस्तार पूर्वक वर्णित है।

शतरुद्र संहिता :

इस भाग में अनेक बार अवतार लेकर शिव द्वारा लीला करने का चित्रण है। हनुमान भी शिव के अवतार थे, यक्षेश्वर भी। महाभारत युद्ध के एक प्रमुख पात्र द्रोणाचार्य के घर में शिव ही अश्वत्थामा के रूप में उत्पन्न हुए थे। इस संहिता में द्रोणाचार्य को पुत्र-प्राप्ति के लिए शिव की तपस्या, शिव का प्रसन्न हो कर द्रोणाचार्य को वरदान एवं अंश रूप में अश्वत्थामा के रूप में अवतार लेने की कथा का वर्णन है। इसके साथ ही भगवान शिव के द्वादश 'ज्योतिलिंगावतारों' का भी उल्लेख है।

कोटिरुद्र संहिता :

इस भाग में श्री सोमनाथ, मल्लिकार्जुन, महाकाल, अमरेश्वर, केदार, भीमशंकर, विश्वनाथ, त्रयम्बक, वैद्यनाथ, नागेश, रामेश्वर तथा घुश्मेश इन द्वादश ज्योतिर्लिंगों का माहात्म्य वर्णित है। दूसरे प्रसंगों में विष्णु द्वारा शिव के सहस्रनाम का कीर्तन, उस का फल, शिवरात्रि व्रत का माहात्म्य, शिव के सगुण व निर्गुण रूप का वर्णन है।

उमा संहिता :

इस भाग में पाप कर्मों तथा उन के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाले नरकों का विस्तृत वर्णन है। इन पापों से मुक्ति तप द्वारा ही कही गई है। पाप वर्णन, नरक लोक के मार्ग तथा यमदूतों के स्वरूप का वर्णन, नरक भेद, नरक-यातना, तथा नरकों के विशेष कष्टों का वर्णन करते हुए यह बताया गया है कि मानव किस पाप से कौन से नरक में जाता है। इसके बाद मनुष्य जन्म की श्रेष्ठता, तप से शिवलोक की प्राप्ति तथा भगवती की महिमा का वर्णन है।

कैलाश संहिता :

इस भाग में योगशास्त्र के आसन-प्राणायाम आदि के अभ्यास से आत्मज्ञान प्राप्त करके संसार के सम्बन्धों से मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग दर्शन है। ओंकार को वेद का आदि, तीनों गुणों से परे, सर्वज्ञ एवं सब का कर्ता माना गया है। यही एक अक्षर सम्पूर्ण ब्रह्मज्ञान का साधक है। इसी ओंकार से शिव सर्वप्रथम जगत् का निर्माण करते हैं, अतः 'ओंकार' तत्व का ध्यान संसार-सागर से मुक्ति का सुलभ साधन है। इसके अतिरिक्त विधानपूर्वक शिवपूजा वर्णन, शिव के आठों नामों का अर्थ और लिंग पूजाविधि, नन्दीश्राद्ध तथा ब्रह्मयज्ञ आदि की विधि का वर्णन है।

वायु संहिता :

इस संहिता के दो भाग हैं—पूर्व भाग और उत्तर भाग। इन में शिव के परब्रह्म रूप का विस्तृत वर्णन हुआ है। पूर्व भाग में शिवतत्व का वर्णन, पशुपति शब्द पर ऋषियों का विवाद, शिव द्वारा काल स्वरूप शक्ति का कथन, लीला के रूप में जगत् का निर्माण, ब्रह्माण्ड का स्वरूप वर्णन, मोक्षसाधन में शिव ज्ञान की प्रधानता, पाशुपत व्रत तथा भस्म महिमा का वर्णन है।

उत्तर भाग में भी समस्त जगत को शिवमय मानकर जीव के पशु और शिव के जगतपति होने का कथन है। विभिन्न युगों में शिव के योगावतारों का वर्णन करते हुए, शिव, ध्यान, योग और उसके रूप का वर्णन है। इसके अतिरिक्त पंचाक्षर मन्त्र का जप-विधान, सूर्यपूजा, पंचयज्ञ, योगमार्ग और उसमें आने वाले विघ्नों का वर्णन किया गया है।

भागवत पुराण

पुराण साहित्य में भागवत पुराण का विशेष स्थान है। भक्ति-शास्त्र का जैसा सांगोपांग वर्णन इस पुराण में प्राप्त होता है वैसा अम्यत्र नहीं। यही कारण है कि वाद में प्रचलित वल्लभ सम्प्रदाय, चैतन्य संप्रदाय आदि इस पुराण से अत्यधिक प्रभावित हुए। इस पुराण पर अनेक आचार्यों तथा विद्वानों द्वारा टीकाएं और भाष्य लिखे गए हैं।

इस पुराण में अद्वैतवाद और विशुद्ध भक्ति का विशद चित्रण हुआ है। विष्णु के २२ अवतारों का वर्णन करते हुए भगवान कृष्ण की विशेष रूप से चर्चा की गई है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश—तीनों को एक बताया गया है। भगवान को प्राप्त करने का सब से सरल उपाय भक्ति है। इसी भक्ति तत्व का निरूपण करना भागवत का प्रमुख उद्देश्य है। ज्ञान और कर्म भी भक्ति के उदय होने से ही सार्थक होते हैं। इसलिए मुक्तिलाभ के लिए भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

भागवतपुराण की विषयवस्तु द्वादश स्कन्धों में विभाजित है, जिसके दशम स्कन्ध ने परवर्ती साहित्य को विशेष रूप से प्रभावित किया। इस पुराण के दार्शनिक सिद्धान्तों और विशुद्ध भक्ति के आख्यानों द्वारा हिन्दी का कृष्ण काव्य अत्यधिक प्रभावित हुआ।

नारद पुराण

इस पुराण में पूर्व और उत्तर नाम से दो खण्ड हैं। पूर्व खण्ड में १२५ और उत्तर खण्ड में ८२ अध्याय हैं। पूर्व खण्ड में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, वर्ण और आश्रमों के आचार, पातक, प्रायश्चित आदि का वर्णन है। व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द आदि शास्त्रों का वर्णन एक-एक अध्याय में किया गया है। विष्णु, राम, कृष्ण, हनुमान,शिव, काली आदि के मन्त्रों का कथन है। इसके वाद सभी पुराणों के विषयानुक्रम का निरूपण किया गया है।

उत्तर भाग में एकादशी माहात्म्य, राजा रुक्मांगद तथा मोहिनी का आख्यान, गंगा माहात्म्य वर्णन, गयाश्राद्ध, कुरुक्षेत्र माहात्म्य तथा अनेक तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन हुआ है। यह पुराण विष्णु की भक्ति को सर्वश्रेष्ठ बताता है।

इतिहास की दृष्टि से इस पुराण का विशेष महत्व है। अठारह पुराणों में जिन-जिन विषयों का वर्णन हुआ है, उन सब की अनुक्रमणिका इसके पूर्व भाग के अठारह अध्यायों में दी गई है जिसकी सहायता से इस बात का निर्णय बड़ी सरलता से किया जा सकता है कि पुराणों में प्रक्षिप्त अंश कौन-कौन से हैं।

मार्कण्डेय पुराण

इस पुराण में प्रमुखतः धर्म, नीति और सदाचार के प्रतिपादन का ही व्यापक वर्णन हुआ है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश में से किसी एक को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए दूसरे की हीनता नहीं दिखाई गई है। अग्नि, सरस्वती, सूर्य आदि की भी समान श्रद्धाभाव से स्तुति की गई है। इस दृष्टिकोण से यह पुराण हिन्दू धर्म की समन्वयवादी विचारधारा का एक उत्तम निदर्शन है, जिसमें भिन्न-भिन्न संप्रदायों के भेदभाव को मिटाने का प्रयत्न करते हुए, सब देवताओं की एकता पर बल दिया गया है। केवल हिन्दू सम्प्रदायों के प्रति ही नहीं अपितु बौद्ध और जैन मतों के प्रति भी भेद-भाव नहीं रखा गया है। इस पुराण में अन्य पुराणों की तरह पूजा पाठ और यज्ञ हवन को ही धर्म का साधन न मानकर देवत्व, इन्द्रत्व और ब्रह्मत्व तक की प्राप्ति को कर्म का फल बताया गया है। यह पुराण कर्म को प्रधानता देता है, परन्तु कर्म का तात्पर्य पूजा-पाठ, व्रत-कीर्तन आदि न होकर परोपकार और दुःखी प्राणियों के दुःख निवारण से है।

इसके अतिरिक्त इस पुराण में गृहस्थ धर्म के प्रतिपादन के साथ-साथ नारी को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के क्षेत्र में तथा सामाजिक जीवन में उचित स्थान देने का समर्थन किया गया है।

इस पुराण के मुख्य विषयों एवं बहुचर्चित प्रसंगों में धर्म पक्षियों के आख्यान, निर्गुण और सगुण ब्रह्म तथा अवतार, द्रौपदी के पांच पति और पंचेन्द्र उपाख्यान, हरिश्चन्द्र उपाख्यान, नरकों का स्वरूप और विवरण, महामानव के लक्षण, पातिव्रत धर्म की लोकोत्तर महिमा, मदालसा का उपाख्यान, राजधर्म और राजनीति का आदर्श, गृहस्थ धर्म की विशेषता, अनासक्त भाव की श्रेष्ठता, सृष्टिरचना और उसका विकास, समाज का निर्माण और विकास, रुद्रसृष्टि अथवा अग्नितत्व की व्याख्या, मन्वन्तर और सप्तद्वीप वर्णन, सूर्य का तात्विक विवेचन, शक्ति के दो रूप आदि की गणना की जा सकती है। उपर्युक्त प्रसंगों में हरिश्चन्द्र और देवी का वह आख्यान जो 'दुर्गासप्तशती' के नाम से ख्यात् है, विशेष प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त प्राणियों की उत्पत्ति और कर्म विपाक ओंकार की महिमा, ब्रह्मा, विष्णु व शिव की एकता, ब्रह्मा से सात्विक, राजस, तामस नर नारियों की उत्पत्ति और मार्कण्डेय ऋषि की उत्पत्ति का वर्णन है।

अग्नि पुराण

इस पुराण में अनेक विषयों का विवरण है। समुद्रमंथन, रामायण, महाभारत के आख्यान तथा चार धार्मिक अवतारों का वर्णन है। मन्दिर निर्माण कला, मूर्ति प्रतिष्ठा, तीर्थ माहात्म्य, व्रत आदि के निरूपण के साथ-साथ ज्योतिष, आयुर्वेद, पशुवैद्यक, स्वप्न फल, शकुनविचार, रत्न परीक्षा, मन्त्र यन्त्र, तन्त्र, पूजा, उपासना, काव्य, नाटक, व्याकरण, राजनीति, युद्धविद्या आदि सभी विषयों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें अद्वैत वेदांत के सिद्धांतों का निरूपण तथा गीता का सार भी दिया गया है।

भविष्य पुराण

इस पुराण में भविष्य में होने वाली अधिक संख्यक घटनाओं का वर्णन है। भविष्यपुराण की सर्वप्रमुख विशेषता उसके द्वारा वर्णव्यवस्था का आधार, मानव के चरित्र को स्वीकार करना है, जन्म को नहीं। इसमें स्पष्ट कहा गया है कि वर्ण और जाति का अन्तर जन्म से नहीं अपितु कर्म, गुणों और आचार, व्यवहार से है। जो शूद्र जाति में जन्म लेने पर भी शुद्ध, पवित्र और उच्च विचार रखता है, परोपकारी है, वह ब्राह्मण ही है और उसे वेद पढ़ने का भी अधिकार है अर्थात् ब्राह्मणत्व की परख केवल वेदाध्ययन ही नहीं है। जब शरीर, वर्ण, आकृति, सुख-दुःख की अनुभूति, रक्त त्वचा, मांस, मेद और अस्थि की दृष्टि से सब एक समान हैं तब इनमें भेद कैसा ?

देवता कौन है ? इस सम्बन्ध में इस पुराण में कहा गया है कि देवता वही है जो परोपकारी, दाता और मंगलमय मार्ग पर चलने में सहायक हो। सूर्य में यह सभी विशेषताएं हैं और वह प्रत्यक्ष है। अतः वही देवता है।

इस पुराण में नये-नये वृक्ष लगाने का बड़ा फल लिखा है। सम्भव है इसी पुराण से भारत सरकार को वन महोत्सव मनाने की प्रेरणा मिली है।

भविष्य पुराण में भारत के मध्यकालीन इतिहास की झलक भी मिलती है। कुछ नाम भेद के साथ पृथ्वीराज चौहान, जयचन्द तथा आल्हा-ऊदल की कथा का विस्तृत वर्णन हुआ है। पृथ्वीराज को महीराज, आल्हा को आह्लाद, महोवा की महावती आदि नामों से लिखा है। कुछ विद्वान् ऐसे प्रसंगों को प्रक्षिप्तांश स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार के प्रसंगों में शंकरचार्य के गोत्र में उत्पन्न प्रयागवासी तपस्वी मुकुन्द ब्रह्मचारी का अकबर के रूप में अवतरित होना लिखा है। मुकुन्द के पूर्व जन्म के कुछ शिष्य ही मानसिंह, बीरबल, तानसेन, बैजू बाबरा, हरिदास आदि के रूप में उसके सहायक बने। इसके साथ ही इस में कबीर, तुलसी, सूरदास और शंकराचार्य आदि के पूर्व जन्मों की चर्चा है।

एक देववाद का प्रतिपादन इस पुराण में प्रमुखता से हुआ है। सूर्य भगवान को परब्रह्म रूप में स्वीकार करके अनेक कथाओं का वर्णन करते हुए उनका संबन्ध सूर्यपूजा से स्थापित कर दिया गया है। सूर्यपूजा के विधान का वर्णन करना ही इस पुराण का प्रधान लक्ष्य प्रतीत होता है।

अन्य प्रसंगों में व्रतों और पर्वों का वर्णन, विभिन्न तिथियों में दान देने के फल का वर्णन, आदित्यवार का माहात्म्य, यज्ञविधि वर्णन, त्रेता, द्वापर के नृपों का वर्णन तथा भारत के अनेक अन्य राजवंशों का व्यापक वर्णन है। पुराणकार ने वर्तमान युग का वर्णन भारत में अंगरेजों के आगमन तक कर दिया है। अजमेर के तोमर, दिल्ली के म्लेच्छ राजाओं तथा अन्य शासकों का वर्णन भी किया गया है। पुराण के अन्तिम भाग में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एवं सांसारिक जीवन के दोषों का वर्णन करने के उपरान्त, अर्धम, पाप, शुभाशुभ गति एवं पाप कर्मों के परिणाम रूप में प्राप्त होने वाली यम-यातना का वर्णन है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण

भक्तिरस की दृष्टि से इस पुराण का विशेष स्थान है। इस पुराण में वर्णित अनेक कथाएं नवीनता लिए हुए हैं तथा कुछ प्रसंग तो ऐसे हैं जो अन्य पुराणों में नहीं मिलते। गणेशजन्म से सम्बन्धित कथा इसी प्रकार की है। अन्य पुराणों में जहां अव्यक्त परमब्रह्म को ही सृष्टि का निमित्त बताया गया है और उसी से मूल प्रकृति, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं की उत्पत्ति बताई गई

है, वहां इस पुराण में सबका मूलस्रोत श्रीकृष्ण को माना गया है। विश्व के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए इसमें लिखा है कि विश्व असंख्य हैं। प्रत्येक विश्व में ब्रह्मा, विष्णु और शिव होते हैं। पाताल से ब्रह्मलोक के अन्त तक एक ब्रह्माण्ड होता है। उसके ऊपर वैकुण्ठ लोक है, जो ब्रह्माण्ड से बाहर है। उस के भी ऊपर 'गोलोक' है जो श्रीकृष्ण जी का वासस्थान है। इस पुराण में राधा का भी व्यापक वर्णन हुआ है। राधा के शृंगार वर्णन में यद्यपि कहीं-कहीं अश्लीलता भासित होती है परन्तु विवेचनोपरान्त वह भगवान की निराकार शक्ति ही प्रतीत होती है, जिसके नाम का जप करने से मनुष्य मुक्तिपद प्राप्त कर सकता है।

इस पुराण में गणेश जन्म से सम्बन्धित अनेक रोचक कथा प्रसंग हैं। दूसरे विशेष प्रसंगों में राधा के चरित्रचित्रण में शृंगार रस का आधिक्य एवं ब्रह्मतत्व का विवेचन समझा जा सकता है। राधा की उपासना को विशेष महत्व प्रदान करने के कारण एवं कृष्ण को सम्पूर्ण देवी-देवताओं का अधीश्वर स्वीकार करने के कारण इस पुराण को वैष्णव सम्प्रदाय का विशिष्ट ग्रन्थ स्वीकार किया जा सकता है। इस पुराण में कृष्ण से संबन्धित अनेक ऐसे प्रसंग हैं जो अन्य पुराणों में नहीं मिलते। पूतना आख्यान, कुब्जा आख्यान, जाम्बवन्ती आख्यान तथा कृष्ण के गोलोक जाने का आख्यान इसी प्रकार के हैं।

इस पुराण के चार खण्ड हैं :

१. ब्रह्म खण्ड,
२. प्रकृति खण्ड,
३. गणपति खण्ड,
४. श्री कृष्णजन्म खण्ड।

ब्रह्म खण्ड :

इस खण्ड में परमात्मा के महान उज्वल तेजपुंज का वर्णन, वैकुण्ठलोक और शिव लोक की स्थिति, गोलोक में श्रीकृष्ण के परात्पर स्वरूप का निरूपण, श्रीकृष्ण से सृष्टि आरम्भ, श्रीकृष्ण के वामपार्श्व से श्री राधा का प्रादुर्भाव, ब्रह्मा द्वारा पर्वत, समुद्र, पाताल, स्वर्ग आदि की रचना, सावित्री से वेद आदि की सृष्टि, मरीच आदि ब्रह्मकुमारों तथा दक्षकन्याओं की संतति का वर्णन, ब्रह्मा जी की अपूज्यता का कारण तथा परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप का वर्णन किया गया है।

प्रकृति खण्ड :

इस खण्ड में पंचदेवीरूपा प्रकृति तथा उनके अंश, कला और कलांश का

विशद वर्णन प्राप्त होता है। शक्ति के विविध नाम और रूपों से संवन्धित आख्यानों की चर्चा के साथ-साथ दुर्गा की उत्पत्ति, उसके अन्य नामों की व्याख्या तथा सुरथ और समाधि नामक वैश्य पर देवी की कृपा और वरदान का वर्णन है। अन्य प्रमुख प्रसंगों में गंगा की उत्पत्ति, गंगा के विष्णुपत्नी होने की कथा, तुलसी आख्यान के वर्णन प्रसंग में राजा वृषध्वज का वर्णन, वेदवती की कथा, सती और द्रौपदी के पूर्वजन्म का वृत्तान्त तथा सावित्री आख्यान की गणना की जा सकती है।

गणपति खण्ड :

इस खण्ड में गणेश चरित्र से सम्वन्ति घटनाओं की विशेष चर्चा की गई है। शिवपार्वती विवाह, स्कन्द और गणेश की उत्पत्ति, स्कन्द का अभिषेक, गणेश के सिर काटे जाने तथा एक दांत टूटने की कथाओं का विशद वर्णन हुआ है। अन्य मुख्य आख्यानों में जमदग्नि और कार्तवीर्य युद्ध, परशुराम द्वारा कार्तवीर्य तथा अनेक क्षत्रियों का संहार तथा कैलाश में गणेश और परशुराम के युद्ध सम्बन्धी आख्यानों को लिया जा सकता है।

श्रीकृष्णजन्म खण्ड :

इस खण्ड में श्रीराधा और श्रीकृष्ण के गोकुल में अवतार लेने का कारण, श्रीकृष्ण जन्म वृत्तान्त, कंस आख्यान, पूतना आख्यान, बकासुर आख्यान, प्रलम्बासुर आख्यान, केशी आख्यान, विश्वकर्मा द्वारा नन्दभवन का, वृन्दावन के भीतर रासमण्डल का तथा मधुवन के पास रत्नमन्डप के निर्माण का वर्णन हुआ है। दूसरे प्रमुख प्रसंगों में कालियदमन, ब्रह्मामोह, गोवर्धनपूजा, सती, पार्वती, अहल्या और वृत्रासुर के आख्यान, सूर्य, अग्नि और धनवन्तरि के दर्पभंग की कथाएं, श्रीराधा नाम के प्रथम उच्चारण का कारण तथा श्रीकृष्ण के मथुरा-गमन से लेकर परमधाम गमन तक की लीलाओं का वर्णन है। अन्त में श्रीकृष्ण की महत्ता एवं प्रभाव की चर्चा करते हुए श्रीकृष्ण द्वारा राधा को आध्यात्मिक योग का उपदेश दिए जाने का वर्णन है।

लिंग पुराण

शैव-सिद्धान्तों के बोधगम्य शैली में वर्णन की दृष्टि से लिंगपुराण विशेष स्थान रखता है। भगवान शिव को शब्दब्रह्म शरीर वाला कह कर उन्हें 'व्यक्त', 'अव्यक्त' तथा 'व्यक्ताव्यक्त' भगवान की तरह अलिंग (निराकार), लिंग (साकार) तथा लिंगालिंगी (साकार-निराकार) स्वीकार किया गया है।

सृष्टि के आधारभूत, पृथ्वी, जल, वायु, तेज और आकाश—इन पांच तत्वों का इस पुराण में गूढ़ विवेचन किया गया है। चारों युगों के सच्चे

स्वरूप का वर्णन करते हुए सतयुग, त्रेता, द्वापर आदि के मानव समाज की सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। भविष्य पुराण की तरह इस पुराण में भी सूर्य के स्वरूप और महत्व पर प्रकाश डालते हुए सूर्य को तीनों लोकों का स्वामी, मूलाधार और परमदेवता स्वीकार किया गया है। सूर्य से ही सब कुछ उत्पन होता है और सूर्य में ही सब कुछ विलीन हो जाता है। संसार में भगवान सूर्य के बिना किसी की भी निष्पत्ति असंभवहै।

लिंग पुराण में नागे (नंगे) साधुओं की प्रशंसा की गई है। ज्ञान को दुःखों से निवृत्त करने वाले साधन के रूप में स्वीकार करके कहा गया है कि सब पापों को ज्ञान रूपी अग्नि सूखे ईंधन की तरह जला देती है। ज्ञान के सदृश पवित्र करने वाला और कुछ भी नहीं। मोक्ष का हेतु भी ज्ञान ही है। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए लिंगपुराण में योग-मार्ग का उपदेश दिया गया है। योग-मार्ग का यह उपदेश गीता के आध्यात्मिक सिद्धान्तों के अनुरूप है। इस में मन्त्रयोग, स्पर्शयोग, भावयोग, अभावयोग एवं महायोग नाम से पांच प्रकार के योगमार्गों का विवेचन किया गया है। योग का अर्थ 'आत्मा और परमात्मा' का संमिलन है।

इस पुराण में इस विश्व के परम कारण को शिव का नाम देकर उनके अनेक रूपों के द्वारा संसार की उत्पत्ति, विकास और विनाश का वर्णन किया गया है। यद्यपि दूसरे अनेक देवी-देवता भी हैं किन्तु उन सब का मूल एक शिव ही हैं। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवता शिव की स्तुति करते हुए कहते हैं कि—सभी देवता, सभी नक्षत्र, सभी काल, पंचभूत आदि समस्त विश्व भगवान शिव का ही स्वरूप हैं।

शैव सिद्धान्तों के वर्णन के अतिरिक्त इस में जिन कथा प्रसंगों का वर्णन है, उनमें दधीच-क्षुप आख्यान, ध्रुव आख्यान, जालंधर आख्यान, दक्ष-यज्ञ-विध्वंस, मदनदाह उमास्वयंवर, अम्बरीष चरित्र एवं त्रिपुरवध विशेष हैं। अन्य विषयों में लिंगोद्भव प्रतिज्ञा, रुद्रोत्पत्ति, गायत्री महिमा, नन्दिकेश्वरोत्पत्ति, शिव का विराट रूप, शिव का अद्वैत स्वरूप एवं विभिन्न कल्पों में शिव के १२८ अवतारों का वर्णन है। शैवव्रतों एवं शैव तीर्थों का वर्णन, युगवर्णन, सप्तद्वीप वर्णन, ग्रह एवं उनकी गति का वर्णन, सूर्यवंश और चन्द्रवंश का वर्णन कृष्णावतार, पाशुपत योग माहात्म्य, दान माहात्म्य, अघोरमन्त्र के फल आदि का वर्णन है। भगवान शिव की इस पुराण में लिंग रूप में उपासना होने के कारण इसे 'लिंग पुराण' कहा गया है।

वाराह पुराण

विष्णु ने वाराह का अवतार लेकर पृथ्वी का पाताल लोक ले उद्धार किया

था। इस आख्यान से मुख्यतः सम्बन्ध रखने के कारण इस पुराण को वराह पुरान कहा गया है।

इसके आरम्भ में पृथ्वी और वराह का शुभ संवाद है। पृथ्वी के प्रश्नों के उत्तर में वराह रूपी भगवान विष्णु ने अनेक विषयों पर प्रकाश डालते हुए प्रसंगानुसार अनेक अख्यानों की भी चर्चा की है। इन आख्यानों में महातपा, सत्यतपा, गौरी, गणेश, कार्त्तिकेय, वृष, आदित्य, अश्विनीकुमार, दक्षयज्ञ-विध्वंस, पार्वतीजन्म, अन्धकासुर, वृत्रासुर, चन्द्र को दक्ष का शाप, वैष्णवी एवं महिषासुर का युद्ध, रुरू दैत्य, गृध्र और शृगाली के आख्यान विशेष है।

अन्य प्रसंगों में सृष्टि वर्णन, द्वीप वर्णन, अनेक राजाओं का वर्णन, गोदान माहात्म्य, मथुरा क्षेत्र के समस्त तीर्थों का वर्णन, अगस्तगीता, रुद्रगीता, द्वादशी व्रत विवेचन, श्राद्ध आदि की विधि, यमलोक वर्णन, कर्म-विपाक, विष्णु-व्रत, विष्णु-पूजा, अनेक प्रकार के दान का फल, तिथि माहात्म्य, गोकर्णेश्वर, नन्दि-केश्वर, जलेश्वर एवं शृंगेश्वर का माहात्म्य वर्णन है।

इस पुराण में डुग्गर देश की गंगा मानी जाने वाली देविका नदी का भी चामत्कारिक वर्णन है। इसके सर्वाधिक महत्वपूर्ण माने जाने वाले अंशों में मथुरा माहात्म्य एवं नाचिकेतोपाख्यान की गणना की जाती है।

स्कन्द पुराण

इकयासी हजार एक सौ श्लोकों वाला यह पुराण एक विशालकाय रचना है, जिसमें कार्त्तिकेय ने शैव तत्वों का निरूपण किया है। अतः इसे उनके नाम पर 'स्कन्दपुराण' की संज्ञा दी गई है।

इस पुराण का मुख्य उद्देश्य भारतवर्ष के प्रमुख वैष्णव एवं शैव तीर्थों का परिचयात्मक वर्णन करना है। इन्हीं तीर्थों के वर्णन में प्रसंगवश अनेक प्रसिद्ध पौराणिक आख्यानों की चर्चा भी की गई है। यद्यपि स्कन्द पुराण एक प्रमुख शैव पुराण है किन्तु इसके 'वैष्णव खण्ड' में वैष्णव तीर्थों के वर्णन प्रसंग में विष्णु की बहुत प्रशंसा की गई है। 'काशीखण्ड' में भी विष्णु को शिव के बराबर ही समझा गया है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी देवताओं की महिमा भी समान रूप से वर्णित है। भगवान के सच्चे भक्तों के लक्षण बता कर इसमें ज्ञान योग और निष्काम कर्म के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। सत्य की प्रतिष्ठा, अहिंसा, धर्म की महानता, सदाचार की महिमा, राम नाम का माहात्म्य तथा शिव नाम की महिमा से सम्बन्धित अनेक आख्यान इस पुराण में दिए गए हैं। स्कन्द पुराण की सर्वप्रमुख विशेषता इसमें भारत के तीर्थों का व्यापक वर्णन है।

इस पुराण की विषयवस्तु सात खण्डों में विभाजित है :

१. माहेश्वर खण्ड,
२. वैष्णव खण्ड,
३. ब्रह्म खण्ड,
४. काशी खण्ड,
५. रेवा खण्ड,
६. तापी खण्ड,
७. प्रभास खण्ड।

माहेश्वर खण्ड :

इस में शिव और पार्वती द्वारा की गई अनेक लीलाओं के विस्तृत वर्णन के साथ-साथ दक्ष का वृत्तान्त, लिंगप्रतिष्ठा, रावण का आख्यान, अमृत विभाजन एवं विविध शिव क्षेत्रों का शक्ति सहित वर्णन हुआ है।

वैष्णव खण्ड :

इसमें वेंकटाचल, जगन्नाथ पुरी, बद्रीनारायण आदि तीर्थों के वर्णन के साथ-साथ उनके पूजा विधान, प्रतिष्ठा तथा उनसे सम्बन्धित अनेक कथाओं की चर्चा है। अन्य प्रसंगों में रथ-यात्रामहोत्सव विधि, भगवतशयनोत्सव विधि तथा ज्ञान के स्वरूप एवं वैराग्य भक्ति का निरूपण है।

ब्रह्म खण्ड :

इस खण्ड में ब्रह्मकुण्ड प्रशंसा, लक्ष्मी, गायत्री, सरस्वती तीर्थ प्रशंसा, धर्मारण्य माहात्म्य, सदाचार वर्णन, कलिधर्म वर्णन, चतुर्मासस्नान महत्व का वर्णन तथा हयग्रीव आख्यान का वर्णन है।

काशी खण्ड :

इस में काशी की महिमा और विशेषता का वर्णन है। इस स्थान के दशाश्वमेध, मणिकर्णिका, ज्ञानवापी, कपालमोचन, त्रिलोचन आदि तीर्थों का वर्णन हुआ है। इसके साथ-साथ गायत्रीमहत्व, गंगामहिमा और योग की महत्ता का वर्णन है।

रेवा खण्ड :

वर्तमान उज्जैन भी भारत के प्रमुख तीर्थों में गिना जाता है। इस खण्ड में इस क्षेत्र के महाकालेश्वर, कोटीश्वर, कपालमोचन, सोमेश्वर, वाल्मीकेश्वर, अखन्डेश्वर, गंगेश्वर, पुंचागेश्वर, रामेश्वर आदि अनेक तीर्थों के वर्णन करते हुए गणेश, शिप्रानदी, गयातीर्थ, नागतीर्थ आदि के माहात्म्य की चर्चा की गई

है। अन्य प्रसंगों में महाकालवन प्रशंसा, अग्नि का आविर्भाव तथा महाकाल-वन निवास विधि का वर्णन है।

तापी खण्ड :

इस में पुराण संहिता का वर्णन करने के उपरांत रेवा, नर्मदा, कावेरी आदि नदियों के तटों पर विद्यमान तीर्थों का वर्णन है। इसी खण्ड में सत्य-नारायण व्रत की कथा भी है।

प्रभास खण्ड :

इस खण्ड में प्रभासक्षेत्र का व्यापक वर्णन है जिसमें इस क्षेत्र के तीर्थों के वर्णन के साथ-साथ द्वारिका के पाश्ववर्ती प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

इस पुराण में छः संहिताएं हैं :

१. सनत्कुमार संहिता,
२. सूत संहिता,
३. शंकर संहिता,
४. वैष्णव संहिता,
५. ब्रह्म संहिता,
६. सौर संहिता।

वामन पुराण

बलि और वामन के आख्यान के आधार पर पुराण का नाम वामनपुराण रखा गया है। वामनपुराण में प्राप्त अनेक आख्यानों में दूसरे पुराणों से भिन्नता है। शैव पुराण होने पर भी इसमें साम्प्रदायिक भेदभाव की गंध नहीं। कहीं भी विष्णु की निन्दा नहीं की गई अपितु कई बार संकट की स्थिति में शिव विष्णु की सहायता करते हैं।

इस पुराण में जो आख्यान अन्य पुराणों की अपेक्षा भिन्नता लिए हुए हैं उनमें दक्षयज्ञ और सती की कथा, कामदहन की कथा, भारतवर्ष का भौगोलिक वर्णन, सदाचार की महिमा, कृतघ्नता की निन्दा, आत्मज्ञान की श्रेष्ठता दूषित कर्मों का परित्याग, साम्प्रदायिक सद्भावना आदि विशेष हैं। अन्य प्रसंगों में कामदहन, देवासुर युद्ध, पार्वती की उत्पत्ति और विवाह, बलिचरित्र, देवी माहात्म्य, तीर्थ माहात्म्य, गणेश उत्पत्ति, चण्ड, मुण्ड, शुम्भ, निशुम्भ, एवं मुर दानव का वध, महिषासुर, अन्धकासुर, कालनेमि तथा प्रहलाद चरित, धुन्धु पराजय, पुरुरवा की कथा, जलोदभव का वध, प्रहलाद की तीर्थ यात्रा, गजेंद्र मोक्ष, वेन चरित्र, वामन का जन्म, राजा वलि का बन्धन और वामन के प्रकट होने का वर्णन है।

कूर्म पुराण

यह पुराण धार्मिक विषयों का उत्कृष्ट रूप में वर्णन करता है। इसकी रचना में समन्वय बुद्धि से काम लिया गया है। यद्यपि यह एक शैव पुराण है और इसमें सर्वत्र भगवान शिव की प्रधानता दिखाई गई है तो भी ब्रह्मा और विष्णु को भी उच्च पद दिया गया है। विष्णु भगवान ने इन्द्रद्युम्न नामक विष्णु भक्त राजा को कूर्म अवतार धारण कर उपदेश दिया था, अतः इसका नामकरण कूर्म पुराण किया गया। इस पुराण के दो भाग हैं :

१. पूर्व भाग
२. उत्तर भाग

यह दोनों भाग चार संहिताओं में विभाजित थे। इनके नाम हैं :

१. ब्राह्मी संहिता,
२. भागवती संहिता,
३. सौरी संहिता,
४. वैष्णवी संहिता।

कहते हैं इन चारों संहिताओं में १७००० श्लोक थे, परन्तु आजकल केवल ब्राह्मी संहिता ही उपलब्ध है, जिसमें ६००० श्लोक हैं। इन चारों संहिताओं का उद्देश्य मानव को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति करवाना है। यह एक उत्तम पुराण स्वीकार किया गया है, जिसके विशेष वर्णनों में सृष्टि वर्णन, कलियुग वर्णन, विभिन्न सम्प्रदायों में एकता, ईश्वरगीता, भगवद्गीता, वेदान्त के सिद्धांत, स्वच्छता और स्वास्थ्य के नियम, सद्व्यवहार और सत्य का पालन, गायत्री महिमा, भगवान की निर्गुण और सगुण भक्ति आदि को लिया जा सकता है। अन्य प्रसंगों में वर्णाश्रम धर्म वर्णन, सृष्टि की उत्पत्ति, ब्रह्मा जी का उद्भव, देवी अवतार वर्णन, दक्ष का वंश विस्तार, यदुवंश वर्णन, श्रीकृष्ण का स्वधाम गमन तथा प्रयाग आदि अनेक तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन हुआ है।

इस पुराण के उत्तर भाग में ईश्वर को चराचर सृष्टि का कारण बताते हुए, ईश्वरज्ञान का निरूपण है। इस भाग में ईश्वरगीता और व्यासगीता का समावेश है, जिस का उद्देश्य भगवान शिव को संसार की सबसे महान एवं संचालक शक्ति सिद्ध करना है। इस की रचना भगवद्गीता के अनुकरण पर हुई प्रतीत होती है क्योंकि वर्णन शैली में समानता के साथ-साथ कई श्लोक भी साम्य रखते हैं। ईश्वर गीता में आध्यात्मिक ज्ञान की चर्चा है और व्यास गीता में सांसारिक कर्मों को धर्मपूर्वक पालन करने का मार्ग बताया गया है। इसी भाग में अनेक तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन तथा भगवान के साकार और निराकार रूप की उपासना का विवेचन किया गया है।

मत्स्य पुराण

इस पुराण में सर्वप्रथम भगवान के मत्स्यावतार धारण करने का कारण बताते हुए मत्स्यावतार का वर्णन किया गया है। इसलिए इसे मत्स्यपुराण की संज्ञा दी गई है। इस पुराण के वर्ण्यविषय को देख कर स्पष्ट हो जाता है कि इस पुराण में एक तरफ तो पर्वों और तीर्थों पर दान करने का उपदेश दिया गया है, वहां दूसरी तरफ राजधर्म, शासन व्यवस्था, गृह निर्माण आदि अनेक मानव जीवन के लिए उपयोगी विषयों का वर्णन हुआ है। हमारे देश में अत्यन्त प्रसिद्ध सावित्री-सत्यवान का आख्यान इस पुराण में अत्यन्त विस्तृत रूप में वर्णित है। इसके अतिरिक्त प्रकृति के मुग्धकारी रूप का चित्रण जैसा इस पुराण में हुआ है, वैसा अन्यत्र नहीं। इस पुराण में वर्णित विशेष प्रसंगों में राजधर्म वर्णन, न्यायप्रिय, कर्मशील कर्मचारियों की चयन विधि, पुरूषार्थ की महत्ता, भारतीय गृह निर्माण कला आदि की गणना की जा सकती है।

अन्य विषयों में सरस्वती चरित्र, आदित्याख्यान, ययाति चरित्र, यदु, पुरु, कुरु तथा अग्निवंश का वर्णन, कर्मयोग, विभिन्न तिथियों सम्बन्धी व्रतों का वर्णन, नृसिह एवं वराह अवतारों का वर्णन, ब्रह्मा के चार मुख होने का कारण, देव, दानव, गन्धर्व आदि की उत्पत्ति का वर्णन, सूर्यवंश, चन्द्रवंश, पौरववंश एवं ययाति की कथा का विस्तार से वर्णन है। शंकर-त्रिपुर युद्ध, मत्स्यावतार, भृगु, अंगिरा, अत्रि, विश्वामित्र, कश्यप, वशिष्ठ, पराशर, अगत्स्य आदि ऋषियों के वंशों का वर्णन है। भवन निर्माण, प्रतिमा निर्माण तथा देवप्रतिष्ठा विधि के साथ-साथ अनेक प्रकार के दान का माहात्म्य वर्णन भी पुराण के अन्तिम पृष्ठों में हुआ है।

मत्स्यपुराण अपने संतुलित आकार की दृिष्ट से ही नहीं, मानव जीवनोपयोगी विद्याओं और कलाओं के वर्णन की दृष्टि से भी पुराणसाहित्य में विशिष्ट स्थान रखता है।

गरुड़ पुराण

गरुड़ नामक कल्प में ब्रह्मा से गरुड़ की उत्पत्ति के विषय को विष्णु द्वारा वर्णित किए जाने से इसे 'गरुड़पुराण' की संज्ञा दी गई में। हिन्दू समाज में अन्य पुराणों की अपेक्षा यह पुराण अधिक लोकप्रिय है। मृत्यु से संबन्धित इसका पाठ प्रायः सभी हिन्दु सुनते हैं और इसे पुण्यप्रद मानते हैं। इसके दो खण्ड हैं:

१. पूर्व खण्ड,

२. उत्तर खण्ड।

पूर्व खण्ड में भगवान विष्णु और उनके अवतारों का माहात्म्य, मोती, पद्मराग, स्फटिक आदि की परीक्षा, राजनीति, आयुर्वेद द्वारा किए जाने वाले उपचार

तथा औषधिओं का वर्णन, पशुचिकित्सा, सांख्ययोग और छन्द-शास्त्र का वर्णन है।

उत्तर खण्ड में मृत्यु के उपरान्त मानव की गति, मनुष्य के योनि विशेष में उत्पन्न होने का कारण मनुष्य की गर्भावस्था, प्रेतयोनि, प्रेतश्राद्ध, यमलोक, यमयातना, नरकों आदि का विशेष वर्णन हुआ है। सपिण्डीकरण की विधि तथा वृषोत्सर्ग विधान आदि का वितृस्त विवेचन है। भूलोक वर्णन, सप्त अधोलोक वर्णन तथा ब्रह्माड की स्थिति का विस्तृत वर्णन है।

ब्रह्माण्ड पुराण

इस पुराण में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का वर्णन है, अतः इसे ब्रह्माडपुराण कहा जाता है। इसके चार पाद हैं :

१. प्रक्रिया,
२. अनुषंग,
३. उपोद्घात्,
४. उपसंहार।

इस पुराण में सारे संसार का वर्णन है। कल्प, मन्वन्तर, मानसी सृष्टि, रुद्रप्रसव वर्णन, पृथ्वी वर्णन, जम्बू आदि सप्त द्वीपों का वर्णन, अधोलोक एवं ऊर्ध्वलोकों का वर्णन, आदित्य व्यूह कथन, युगतत्व निरूपण, ऋषिवंश निरूपण, पितृकल्प एवं श्राद्धकल्प कथन अनेक राजवंशों का कथन, कलियुग में होने वाले राजाओं का चरित वर्णन भविष्य में होने वाले मनुओं का वर्णन, कल्प, प्रलय तथा कालमान का निर्देश, चतुर्दश लोकों का वर्णन, नरक वर्णन, त्रिविध गुण सम्बन्ध से जन्तुओं की गति, अनेक द्वीपों, नदियों, ग्रहों, नक्षत्रों और युगों का वर्णन है। विश्व के भौगोलिक वर्णन की दृष्टि से इस पुराण का महत्वपूर्ण स्थान है। यह पुराण विश्व में भारत को सर्वश्रेष्ठ देश स्वीकार करता है।

पौराणिक आख्यान

'आख्यान' शब्द का अर्थ है—'कथन, बोली, कथा कहानी, उपन्यास विशेष' इसमें आख्याता ही अपने मुख से सब बात कहता है, पात्र के बोलने का कोई काम नहीं[1]। आचार्य विश्वनाथ ने आख्यान की परिभाषा करते हुए उसे पूर्व वृत्तान्त कहने वाला कहा है[2]। कुल्लूक भट्ट ने मनुस्मृति की टीका करते हुए प्राचीन कथाओं को आख्यान की संज्ञा दी है[3]। महाभारत आदि कथा

1. हिन्दी विश्वकोश।
2. आख्यान पूर्ववृत्तोक्तिः : साहित्य दर्णण, ६/२३७
3. मन्वर्थ मुक्तावली : ३/२३२

प्रधान इतिहास ग्रन्थों को भी ग्राख्यान के नाम से ग्रभिहित किया गया है[1]।

इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन समय से ही ग्राख्यान शब्द का प्रयोग प्राचीन वृत्तान्त कहने के ग्रर्थ में होता रहा है। ग्राख्यान शब्द का मूल ग्रभिप्राय है किसी वृत्त विशेष ग्रथवा स्थिति विशेष का प्रतिपादन।

हिन्दी में पुराणों के ग्रंशभूत कथा विशेष को ग्राख्यान कहा जाता है[2]। स्कन्द पुराण के ग्रनुसार पुराण में सर्ग, प्रति सर्ग, वंश, मन्वन्तर ग्रौर वंशानुचरित इन पांच के वर्णन के साथ-साथ ग्राख्यान का वर्णन भी ग्रावश्यक बताया गया है[3]। इससे स्पष्ट है कि ग्राख्यान पुराणों के ग्रावश्यक ग्रंग के रूप में विकसित हुए हैं तथा ईश्वर धर्म ग्रौर धार्मिक ग्राचार-विचारों के प्रचार ग्रौर प्रसार के साधन माने जाते रहे हैं। यद्यपि इन ग्राख्यानों में सत्य, ग्रर्धसत्य ग्रौर काल्पनिक वृत्तों की बहुसंख्या है, घटनाग्रों ग्रौर पात्रों का ग्रतिरंजित वर्णन है तो भी उनमें धर्म की प्रेरणा देने का मूल स्वर सर्वत्र विद्यमान है।

वैदिक युग से लेकर ग्राज तक यह ग्राख्यान हमारे सामाजिक जीवन का ग्रंग रहे हैं। यद्यपि ऋग्वेद में ग्राख्यानों का केवल संकेत मात्र है, वर्णनात्मक रूप नहीं ग्रर्थात् ऋग्वेद में राजा, पुरोहित, ऋषि, सुर, ग्रसुर ग्रादि की जो ग्रनेक संवादात्मक कथाएं ग्राई हैं, वही कालान्तर में पौराणिक ग्राख्यानों का का ग्राधार बनीं, डा० उमापतिराय चन्देल का मत है कि "पुराण-कथाग्रों के जो बीज वेदों में हैं, वे कालक्रम से पुराणों के पूर्वज ही हुए। उन्हीं में पुराणों से बहुत पहले से लोक प्रचलित कथाग्रों के संकेत हैं[4]"। ऋग्वेद में ब्रह्म की जो नराकार रूप में स्तुति हुई है, वही ग्रागे चल कर ग्रवतारवाद का ग्राधार बनी[5]। डा० सत्येंद्र ने ऋग्वेद के ग्रन्तर्गत इन्द्र ग्रादि देवताग्रों की व्यक्तिगत गाथाग्रों के ग्रतिरिक्त उनतीस प्रमुख कथाग्रों का उल्लेख किया है। डा० बलदेव उपाध्याय ने ऋग्वेद में तीस ग्राख्यान माने हैं जिन में :

१. सरमा (१/६/६५),
२. शुनः शेप (१/२४/१),
६. ग्रगस्त्य तथा लोपामुद्रा (१/१७९),
४. वशिष्ठ तथा विश्वामित्र (३/५३),
५. विष्णु के तीन पद (६/६९)।

---

1. ग्रनाश्रित्येदमाख्यानं कथा भुवि न विद्यते। —महाभारत : ग्रादि पर्व, २/३७
2. राणा प्रसाद शर्मा : —पौराणिक कोश
3. पंचांगानि पुराणस्य चाख्यानमितरम् स्मृतम्। —स्कन्द पुराण : प्रभास खण्ड, २/८४
4. मध्य युगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक ग्रध्ययन, पृ०, १४०
5. विष्णु इन वेदाज़ : दाण्डेकर, पृ०, ३३

६. वृहस्पति जन्म (६/७१),
७. नहुष (७/९५),
८. उर्वशी और पुरुरुवा (१०/९५),
९. देवापि तथा शान्तनु (१०/९८),
१०. नचिकेतस (१०/१३५) आदि प्रमुख हैं।

इसी प्रकार अथर्ववेद में वामदेव (१८/३/१५–१६), यमयमी (३/२८) आदि आख्यानों के साथ-साथ अगस्त्य उत्पत्ति, वशिष्ठ-विश्वामित्र द्वेष, पृथु, नारद, मरुतों की उत्पत्ति तथा राहु द्वारा चन्द्रमा को ग्रसित करने की कथा सर्वप्रथम अथर्ववेद में ही मिलती है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी परंपरागत आख्यानों का दृष्टान्त रूप में प्रयोग मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में च्यवन-सुकन्या (४/१/५/३), यम-यमी (७/२/१/१०), पुरुरुवा उर्वशी (११/५/१) आदि आख्यानों के साथ-साथ इन्द्र वृत्रासुर वध, ध्रुव, पृथु, वशिष्ठ, विश्वामित्र, इन्द्र और अहल्या की कथा तथा जलप्रलय की कथा का वर्णन भी मिलता है। उपनिषद् ग्रन्थों में भी आध्यात्मिक भावनाओं के स्पष्टीकरण के लिए अनेक आख्यानों का आधार लिया गया है जिन में याज्ञवल्क्य-गार्गी, कण्व और प्रगाध, पृथु, हरिश्चन्द्र आदि के आख्यान विशेष हैं। वैदिक संहिताओं के विधि सूत्र ग्रन्थों में हरिश्चन्द्र, इन्द्र-अहल्या, नारद, पृथु आदि के आख्यानों का प्रयोग सांकेतिक रूप में मिलता है। बाद में निरुक्त में यास्क मुनि ने उन आख्यानों का विस्तृत वर्णन किया है, जिन का ऋग्वेद में सांकेतिक वर्णन मिलता है। निरुक्त में च्यवन सुकन्या (४/१९) देवापि (२/१०) आदि आख्यानों का वर्णन हुआ है। शौनक मुनि रचित 'वृहद् देवता' नामक ग्रन्थ में वैदिक कालीन आख्यानों का वर्णन है। जिनमें इन्द्र, मरुद्गण, अगस्त्य (४/४६/५५), लोपामुद्रा-अगस्त्य (४/५७/६१)। भृगु-अंगिरस और अत्रि जन्म (५/१९७–२०३), वशिष्ठ (६/११), नहुष (६/२०), पुरुरुवा-उर्वशी (१/१२४/१/१२८) इत्यादि विशेष आख्यान हैं जिनका परवर्ती साहित्य में व्यापक रूप से उपयोग किया गया है।

ऊपर हमने जो कुछ लिखा है उस का तात्पर्य इतना ही है कि वैदिक साहित्य में प्रसंगवश विभिन्न देवताओं के स्वरूप विवेचन में जिन आख्यानों का सांकेतिक वर्णन हुआ है, पुराण में उन का वर्णन पर्याप्त विस्तार से किया गया है। उदाहरण के लिए प्रजापति की मत्स्यरूप धारण करने की कथा शतपथ ब्राह्मण[1] में संक्षिप्त रूप से कही गई है, उसे भागवत[2], अग्नि[3], गरुड़[4], पद्म[5]

---

1. शतपथ ब्राह्मण : २/८/१/१
2. भागवत पुराण : १/३/१५
3. अग्नि पुराण : २/४९
4. गरुड़ पुराण : १/१/४२
5. पद्म पुराण : ५/४/७३

और मत्स्य पुराण तथा महाभारत[1] में विस्तार से वर्णित किया गया है। कूर्म की कथा तैत्तिरीय आरण्यक, शतपथब्राह्मण तथा जैमिनीयब्राह्मण में संक्षिप्त रूप से कही गई है, जब कि भागवत पुराण, कूर्म पुराण, गरुड़ पुराण, एवं विष्णु पुराण में इस कथा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है[2]। प्रजापति के वराह रूप धारण करने की कथा का संकेत ऋग्वेद[3] में उपलब्ध होता है। इस कथा का व्यापक वर्णन वराह अवतार के प्रसंग में पुराणों में हुआ है। भागवत तथा विष्णु पुराण में यह प्रसंग अनेक बार आया है। शतपथ ब्राह्मण[4] में विष्णु के वामन रूप से सम्बन्धित कथा है, जिसका विस्तृत रूप वामन पुराण में मिलता है। ऋग्वेद[5] के पुरुरवा- उर्वशी नामक आख्यान को विष्णु पुराण[6] और भागवत[7] में अत्यन्त विस्तार से वर्णित किया गया है। तात्पर्य यह है कि जो तत्व वैदिक मन्त्रों में सांकेतिक रूप में कहे गए हैं, वही तत्व पुराणों में अत्यन्त विस्तृत और सुगम रूप में आम जनता के उपदेश के लिए रोचक ढंग से प्रकट किए गए और उन्हीं तत्वों ने अपनी रोचकता और लोकप्रियता के कारण पौराणिक आख्यानों का रूप धारण कर लिया और परवर्ती साहित्य को प्रभावित कियां। पर एक बात स्मरणीय है कि यह आख्यान सीधे वेदों से पुराणों में नहीं आए हैं। पहले यह लोक-वार्ताओं के रूप में प्रचलित थे, मुख परम्परा में इनका निरन्तर विकास होता रहा। परिणाम स्वरूप उन में समय-समय पर व्यक्ति विशेष की रुचि तथा सांप्रदायिक आग्रह के कारण परिवर्तन भी होता रहा। यही कारण है कि एक ही आख्यान विभिन्न ग्रन्थों में अलग-अलग रूपों में उपलब्ध होता है। कालान्तर में वही लोक वार्ताएं जिन्हों ने अपने वीज वैदिक साहित्य से लिए थे, पौराणिक आख्यानों के रूप में परिवर्तित हो गईं। इन आख्यानों का विषयक्षेत्र अत्यन्त व्यापक और विस्तृत है।

---

1. महाभारत : शान्ति पर्व
2. (क) तैत्तिरीय आरण्यक : १/२३/३
   (ख) शतपथ : ७/५/१/५
   (ग) भागवत पुराण : ८/७
   (घ) कूर्म पुराण : २/१६/७७
   (ङ) अग्नि पुराण : ४/४९
3. विश्वेत् ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्वेशितः।
   शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम्॥ —ऋग्वेद, ८/७७/१०
4. शतपथ : १/२/५/१
5. ऋग्वेद : १०/९५
6. विष्णु पुराण : ४/६
7. भागवत पुराण : ९/१४

यद्यपि मुख्य वर्ण्यविषय सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित है, किन्तु इनके विस्तृत विवरण के साथ-साथ भूगोल, राजनीति, धर्म, दर्शन, अर्थनीति, व्रत, तीर्थमाहात्म्य, दान, श्राद्ध, राजधर्म आदि से सम्बन्ध रखने वाले अनेक आख्यान मिलते हैं। जीवन के साथ सम्बन्ध रखने वाले प्राय: सभी विषयों से सम्बन्धित आख्यान प्राप्त होते हैं। अवतारवाद, भक्ति, व्रत और तीर्थों से सम्बन्धित आख्यानों की संख्या अधिक है।

विषयभेद से इन आख्यानों के अनेक भेद किए जा सकते हैं। प्रमुखत: दो भेद किए जाते हैं :

१. धार्मिक आख्यान,
२. लौकिक आख्यान।

धार्मिक आख्यानों के भीतर विष्णु द्वारा जो अनेक अवतार धारण किए गए हैं उनके साथ सम्बन्ध रखने वाली कथाएं वर्णित हैं जबकि लौकिक आख्यानों में किसी विशेष राजा का चरित, किसी ऋषि का चरित अथवा किसी दिव्य लोकरंजक प्रणय कथा का संक्षिप्त अथवा विस्तृत वर्णन हुआ है। डा० सत्येंद्र ने इन आख्यानों के तीन भाग किए हैं[1] :

(क) पौराणिक आख्यान,
(ख) ऐतिहासिक आख्यान,
(ग) काल्पनिक आख्यान।

कई अन्य विद्वान् प्रचलित आख्यानों के आधार पर कथाओं के मूलस्रोत की दृष्टि से उन्हें सात भागों में विभाजित करते हैं :

१. पौराणिक आख्यान,
२. निजन्धरी आख्यान,
३. ऐतिहासिक आख्यान,
४. अध्यात्मपरक आख्यान,
५. काल्पनिक आख्यान,
६. प्रेमाख्यान,
७. लोकाख्यान।

कुछ दूसरे विद्वान् सभी पौराणिक आख्यानों को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित करते हैं :

१. दैवी आख्यान,
२. दानवाख्यान,

---

1. हिन्दी कविता में युगान्तर : पृ० ११७

३. मानवाख्यान।

परन्तु पौराणिक आख्यानों में वर्णित विषयवस्तु की दृष्टि से इनका निम्नलिखित रूप से वर्गीकरण उपयुक्त होगा :

१. अवतार सम्बन्धी आख्यान,
२. देवता सम्बन्धी आख्यान,
३. ऋषि और मुनि सम्बन्धी आख्यान,
४. राजा सम्बन्धी आख्यान,
५. दानव सम्बन्धी आख्यान,
६. तीर्थ सम्बन्धी आख्यान।

अवतार सम्बन्धी आख्यान :

पुराणों में दस अवतारों से लेकर चौबीस अवतारों तक का उल्लेख मिलता है। भागवत पुराण तो भगवान के असंख्य अवतार बताता है। पुराणों में अवतारवाद की पुष्टि में अनेक आख्यान हैं। मुख्य रूप से सनतकुमार, वराह, नारद, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञनाभ, ऋषभ, पृथु, मत्स्य, कच्छप, धनवन्तरी, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, वेदव्यास, राम, वलराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध और भविष्य में होने वाले कल्कि अवतार—इन २२ अवतारों सम्वन्धी अनेक आख्यान प्राप्त होते हैं। अधिकतम आख्यानों का सम्बन्ध मत्स्यावतार, कूर्मावतार, वराहावतार, नृसिहावतार, वामनावतार, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि—इन दस अवतारों से हैं।

देवता सम्वन्धी आख्यान :

पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अश्विनीकुमार, इन्द्र, सूर्य एवं शक्ति से सम्बन्धित अनेक आख्यान हैं। शिव और पार्वती तथा शक्ति ने नवदुर्गा रूप में जो अनेक लीलाएं कीं उन सबका व्यापक चित्रण पुराणों में हुआ है। वैदिक साहित्य में देवताओं की संख्या थोड़ी थी तथा उनका सम्बन्ध स्वर्ग भूलोक एवं जलवायु आदि तत्वों से स्थापित किया गया था। पुराण युग में भिन्न-भिन्न उपासना पद्धतियों के कारण वृहस्पति, विष्णु, रुद्र आदि नए देवताओं का सृजन हुआ। कुछ पुराने देवता समाप्त हो गए।

ऋषि और मुनि सम्वन्धी आख्यान :

ऋषि और मुनियों सम्बन्धी आख्यानों के बीज वैदिक साहित्य में भी थे। च्यवन, अगस्त्य, भृगु, अंगिरस, अत्रि, कण्व, मार्कण्डेय, दुर्वासा, लोमश, पराशर, विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि से सम्बन्धित अनेक प्रसंग ऋग्वेद एवं परवर्ती वैदिक साहित्य में उपलब्ध होते हैं। वंशवर्णन पुराण का आवश्यक लक्षण होने के कारण पुराणों में ऋषियों का वर्णन हुआ है तथा वंशानुचरित के अंतर्गत ऋषिचरित को मुख्य स्थान दिया गाय है।

राजा सम्बन्धी आख्यान :

पुराणों का वर्ण्यविषय वंश और वंशानुचरित है। इस सम्बन्ध में अनेक राजवंशों और उनसे सम्बन्ध रखने वाले राजाओं का वर्णन हुआ है। विशेष रूप से सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओं के चरित्र की चर्चा की गई है। पुरुरवा ययाति, नहुष, पृथु, वेन, नृग, भगीरथ, दुष्यन्त, भरत, शिवि, उशीनर, हरिश्चन्द्र आदि अनेक राजाओं और उनके वंशजों का वर्णन अनेक पुराणों में हुआ है। नहुष, ययाति, राम, कृष्ण कौरव तथा पाण्डवों से सम्बन्धित आख्यान अधिक संख्या में मिलते हैं। इनमें इन राजाओं का चरित्रचित्रण एवं उनके जोवन से सम्बन्ध रखने वाली धटनाओं का विस्तार से वर्णन हुआ है।

दानव सम्बन्धी आख्यान :

मानव जाति का अपकार करने वाले व्यक्तियों को असुर, राक्षस, दानव और दैत्य की संज्ञा दी गई है। इनके जीवन का उद्देश्य अन्याय एवं अत्याचार की अनीति पर चलना था। इनका सदैव देवताओं और ऋषियों से संघर्ष होता था और ये सदा इनके शत्रु ही बने रहे। ये मानव समाज में अपने आचरण से आतंक फैलाए रखते थे। फलस्वरूप इनका नाश करने के लिए कोई न कोई अवतार होता था। प्रायः सभी अवतारों के साथ किसी न किसी दैत्य अथवा दानव का नाम जुड़ा हुआ है। विष्णु ने राम और कृष्ण के अवतार के रूप में अनेक दैत्यों और दुष्टों का संहार किया था। वृत्रासुर, कालेय, महिषासुर, मधु, कैटभ, तारकासुर, हिरण्यकश्यप, अन्धकासुर, दुर्मुख, हिरण्याक्ष, अरिष्टासुर, केशी, रावण, कंस आदि से सम्बन्धित अनेक आख्यान पुराणों में बिखरे पड़े हैं। इस प्रकार के सभी आख्यानों में दुष्टों और दानवों के शक्तिशाली होने पर भी अन्त में उनकी पराजय दिखा कर धर्म की अधर्म पर विजय बताई गई है।

तीर्थ सम्बन्धी आख्यान :

प्रायः सारा पुराण साहित्य तीर्थों के माहात्म्य और तत्सम्बन्धी आख्यानों से भरा पड़ा है। भारतपर्ष में असंख्य तीर्थ हैं उनमें से आज कुछ लुप्त भी हो गए हैं, किन्तु भारत की जनता जितनी इन तीर्थों के माहात्म्य से प्रभावित है उतनी पुराणों की अन्य किसी भी विषयवस्तु से नहीं। आज के वैज्ञानिक युग में भी हर वर्ष लाखों यात्री प्रमुख तीर्थस्थानों की यात्रा करते हैं। देश की अनेक धार्मिक संस्थाएं चारधाम की यात्रा के लिए विशेष बसों का प्रबन्ध करती हैं। भारत सरकार भी विशेष रेलगाड़ियां इस कार्य के लिए प्रदान करती है। कुम्भ के पर्वों पर देश के विभिन्न प्रदेशों से लाखों यात्रियों का निर्दिष्ट तीर्थस्थान पर एकत्रित होना तोर्थों के माहात्म्य का साक्षात् प्रमाण है। भारतभूमि के यह पावन तीर्थ हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग हैं। जिनके लिए प्रत्येक

आस्तिक भारतीय हिन्दू के हृदय में श्रद्धा और विश्वास है।

ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण, स्कन्द पुराण, वराह पुराण, अग्नि पुराण, वायु पुराण एवं नारद पुराण में तीर्थों एवं तत्सम्बन्धी आख्यानों का व्यापक वर्णन हुआ है। अग्नि तीर्थ, रुद्र तीर्थ, जम्बू तीर्थ, सोम तीर्थ, गोतीर्थ, काश्यप तीर्थ, गाणपत्य तीर्थ, वराह तीर्थ, संगम तीर्थ, आदित्य तीर्थ, नीलकण्ठ तीर्थ, आदि का वर्णन पद्म पुराण में मिलता है। इसी प्रकार अन्य पुराणों में उत्तर मानस तीर्थ, गायत्री तीर्थ, नर्मदा, प्रयाग, पुष्कर और सरस्वती तीर्थ, गंगा, काशी, गया, मथुरा एवं कोकामुख तीर्थ, सौकरक्षेत्र तीर्थ, भृगु तीर्थ, रुद्रकोटि तीर्थ, आदि का वर्णन है। ब्रह्मपुराण और वराहपुराण तीर्थ सम्बन्धी आख्यानों से भरे पड़े हैं जिनमें:

१. आत्म तीर्थ और दत्ताख्यान,
२. नाग तीर्थ और शूरसेन राजा का आख्यान,
३. अश्वत्थ तीर्थ तथा पिप्पल नामक आख्यान,
४. पुत्र तीर्थ तथा परमेष्ठि पुत्राख्यान,
५. देव तीर्थ और आष्टिषेण नृपाख्यान,
६. यम तीर्थ और सरमाख्यान,
७. विष्णु तीर्थ वर्णन और मौदगल्याख्यान,
८. चक्र तीर्थाख्यान,
९. शुक्ल तीर्थाख्यान,
१०. लक्ष्मी तीर्थ एवं लक्ष्मी दरिद्राख्यान,
११. आत्रेय तीर्थ और आत्रेय ऋषि का आख्यान,
१२. पैशाच तीर्थ और अजीगर्ताख्यान,
१३. अग्नि तीर्थ-कुकर्दम राजा की कथा,
१४. साभ्रमती संगम माण्डव्याख्यान,
१५. खड़गतीर्थ एवं चण्डकिराताख्यान,
१६. धौलेश्वर तीर्थ एवं किराताख्यान,
१७. सोम तीर्थ एवं श्रृगाली गृध्राख्यान,

आदि विशेष रूप से दर्शनीय हैं।

आख्यानों के उपर्युक्त भेदों के अतिरिक्त पतिव्रत धर्म एवं भक्ति संबन्धी अनेक आख्यान हैं, जिनमें मदालसा, सावित्री, गरुड़, गजेंद्र, जटायु, ध्रुव, प्रहलाद आदि का नाम लिया जा सकता है। कुछ आख्यान ऐसे भी हैं जिनमें स्वर्गलोक की अप्सराओं तथा पृथ्वीलोक के राजाओं एवं ऋषियों के प्रेम प्रसंगों का वर्णन है। सामान्य रूप से इन अप्सराओं को देवराज इन्द्र कभी किसी की तपस्या भंग के लिए अथवा अपने किसी अन्य लक्ष्य की सिद्धि के

लिए भेजा रकता था। उर्वशी-पुरुरवा, नहुष-शची, विश्वामित्र-मेनका आदि ऐसे ही आख्यान हैं, जिन्हें दिव्यादिव्य आख्यान कहा जा सकता है[1]।

ऊपर हमने जिन आख्यानों की चर्चा की है, यही कालान्तर में पुराणों से होते हुए रामायण आदि ऐतिहासिक काव्यों में भी आवश्यकता के अनुसार प्रयुक्त किए गए। वैदिकसाहित्य और पुराणसाहित्य की अपेक्षा ऐतिहासिक महाकाव्यों में उनके रूप में और भी निखार लाया गया। उनकी लोकप्रियता में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई और उन्होंने परवर्ती हिन्दी एवं भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य को प्रभावित किया। वाल्मीकि ने रामायण नामक जो ऐतिहासिक महाकाव्य लिखा, उस में वशिष्ठ-विश्वामित्र-द्वेष, वामनावतार, इन्द्र-अहल्या प्रसंग, शुनःशेप, सप्तमरुतों के जन्म की कथा, वशिष्ठ और अगस्त्य की उत्पत्ति, पुरुरवा-उर्वशी प्रसंग, ययाति, वृत्रासुर वध, बालि, सुग्रीव और हनुमान की उत्पत्ति, ताड़का का राक्षसी होना, कार्त्तिकेय जन्म, सगरपुत्रों की गंगा द्वारा मुक्ति, नल और कबन्ध की कथा, कैकेयी के वरों की कथा, धोबी की कथा आदि सभी आख्यान उन्होंने वैदिक एवं पुराण साहित्य से ही लिए हैं। इन्हीं आख्यानों का प्रयोग बाद में विभिन्न भाषाओं के कवियों ने अपनी-अपनी रचनाओं में किया। भक्ति-काल के प्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदास ने जब साहित्य रचा तो उसके पहले वे काशी में लम्बे समय तक रह कर निगम, आगम पुराण एवं वाल्मीकि रामायण का गहन अध्ययन एवं मनन कर चुके थे। अपनो रचनाओं में वह जो बार-बार पुराणों की दुहाई देते हैं उससे यही प्रमाणित होता है कि तुलसीदास अन्य रचनाओं की अपेक्षा पुराणसाहित्य से ही अधिकतम प्रभावित थे। संभवतः यही कारण था कि अपनी सर्वप्रमुख एवं सर्वोत्तम रचना 'रामचरितमानस' की विषयवस्तु के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है :

नानापुराणनिगमागम सम्मतं यद्,
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा,
भाषा निबन्धमतिमंजुलमातनोति[2]॥

रामचरितमानस की विषय-वस्तु के परिचायक इस पद्य में तुलसीदास ने अन्य शास्त्रों की अपेक्षा पुराणों को सर्वप्रथम रखा है। इसी आधार पर हम अग्रिम अध्यायों में यह विचार करेंगे कि गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य का पौराणिक आधार क्या है और उसमें पौराणिक आख्यानों के विनियोग का स्वरूप किस प्रकार का है।

---

1. पद्म पुराण : स्वर्ग खंड, वायु पुराण : अ० ५३
   मत्स्य पुराण : ११/१२, भागवत पुराण : १/३/२०
2. रामचरितमानस : बालकाण्ड, श्लोक ७

द्वितीय अध्याय

तुलसी साहित्य और उसका पौराणिक आधार

द्वितीय अध्याय

गोस्वामी तुलसी दास के व्यक्तित्व और कृतित्व पर इतना अधिक लिखा जा चुका है कि अब उनका कर्म और काव्य सामान्य रूप से अज्ञात नहीं रहा। ख्यात् इतिहासकार वी० ए० स्मिथ ने लिखा है कि—"तुलसीदास अपने युग में भारतवर्ष के सब से महान् व्यक्ति थे, अकबर से भी बढ़ कर, इस बात में कि करोड़ों नरनारियों के हृदय और मन पर प्राप्त की हुई कवि की विजय, सम्राट की एक या समस्त विजयों की अपेक्षा असंख्यगुणी अधिक चिरस्थायी और महत्वपूर्ण थी[1]। तुलसी के समकालीन विद्वान् मधुसूदन सरस्वती ने तुलसी के कवित्व की विशेष प्रशंसा की है[2]। विख्यात् कवि रहीम के मत में तुलसी का 'रामचरितमानस' हिन्दू जाति के लिए वेद और पुराणों से कम महत्व नहीं रखता[3]। जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा है कि तुलसी एक महान् विद्वान् लेखक थे और समस्त भारतीय साहित्य में सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति हुए हैं[4]। अपनी एक दूसरी रचना में ग्रियर्सन लिखते हैं कि भारत के करोड़ों व्यक्ति धर्म और चरित्र के सम्बन्ध में तुलसी साहित्य से प्रभावित हैं। प्रभाव की दृष्टि से तुलसी एशिया के तीन अथवा चार महान् लेखकों में अपना स्थान रखते हैं[5]। एक दूसरे विद्वान् रेवेरेण्ड एडविन ग्रीब्स ने 'मानस' के सम्बन्ध में लिखा है कि—"समस्त हिन्दी साहित्य में ऐसी कोई भी पुस्तक नहीं जिसका राजप्रासाद से लेकर एक निर्धन की कुटिया तक इतना अधिक प्रसार हो"[6]। डा० के० के०

1. वी० ए० स्मिथ, हिस्ट्री आफ् एनिशिएन्ट इण्डिया : पृ० ४०१
2. आनन्द कानने कश्चित् तुलसी जंगमस्तरुः।
   कविता मंजरी यस्य राम भ्रमर भूषिता॥ —मधुसूदन सरस्वती
3. रामचरित मानस विमल संतन जीवन प्राण।
   हिन्दुवान को वेद सम जनमहि प्रकट पुराण॥ —रहीम, कल्याण रामायणांक
4. ग्रियर्सन, नोटस आन तुलसीदास : पृष्ठ १
5. ग्रियर्सन, लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया : भाग ५, पृ० १३
6. कल्याण : रामायणांक, पृ० ३४२

के मत में हिन्दी साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास जी का स्थान निस्सन्देह सर्वोच्च है[1]। रूस के हिन्दी भाषा और साहित्य के विद्वान् एवं कवि वारन्निकोव ने भी अपने 'मानस' के रूसी पद्यानुवाद ग्रन्थ में तुलसी को महान् लेखक बताया है।

भारतीय महापुरुषों में महात्मा गान्धी तथा विनोबा जी ने तुलसी की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। गान्धी जी कहते हैं—"तुलसीदास की रामायण मुझे अत्यन्त प्रिय है और उसे मैं अद्वितीय ग्रन्थ मानता हूं। गीता और तुलसीदास की रामायण की संगति से जो स्फूर्ति और उत्तेजना मुझे मिलती है, वैसी और किसी से नहीं[2]"। विनोबा भावे का मत है—"भारतीय साहित्य के इतिहास में तुलसीदास की 'रामायण' का एक स्वतन्त्र स्थान है। हिन्दी रष्ट्रभाषा है और भाषा का यह सर्वोत्तम ग्रन्थ है, अतः राष्ट्रीय दृष्टि से इस ग्रन्थ का स्थान अद्वित्तीय है ही, पर भारत के सात-आठ करोड़ लोग इसे वेद तुल्य प्रामाणिक मानते हैं। यह नित्य परिचित तथा धर्म जागृति का एकमात्र आधार है, अतः धर्म दृष्टि से भी इसे अद्वितीय स्थान प्राप्त हुआ[3]"।

स्पष्ट है कि तुलसी अपने साहित्य के कारण एक महान् और श्रेष्ठ कवि के रूप में सदियों से प्रतिष्ठित हो चुके हैं। हिन्दी में उन पर लिखे गए अनेक ग्रन्थ हैं जिनमें रामनरेश त्रिपाठी का 'तुलसी और उनका काव्य', डा० माता प्रसाद गुप्त का 'तुलसीदास', यज्ञदत्त शर्मा का 'तुलसी साहित्य और सिद्धान्त', राजेन्द्रसिंह गौड़ का 'तुलसीदास', नागरी प्रचारिणी सभा की 'तुलसीग्रन्थावली' आदि कृतियां विशेष महत्वपूर्ण हैं। इन समस्त ग्रन्थों की अपनी-अपनी विशेषताएं हैं। इनमें तुलसी के जीवन और कृतित्व पर व्यापक रूप से चर्चा की गई है। तुलसी की कितनी और कौन सी कृतियां प्रामाणिक हैं और कौन सी अप्रामाणिक, इस पर भी पर्याप्त मात्रा में लिखा जा चुका है। बाबा वेणीमाधव दास, शिवसिंह सेंगर, जार्ज ग्रियर्सन, डा० रामकुमार वर्मा, मिश्रवन्धु आदि ने इस विषय पर विस्तार से लिखा है, किन्तु जार्ज ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'इनसाईकलोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स' में तुलसी के जो बारह ग्रन्थ लिखे हैं, उन्हें ही वन्दनपाठक, महादेव प्रसाद, रामगुलाम द्विवेदी आदि प्रामाणिक मानते हैं। पं० रामगुलाम द्विवेदी द्वारा रचित निम्नांकित छन्द में तुलसी की समस्त प्रामाणिक रचनाओं का उल्लेख इस प्रकार हुआ है :

रामलला नहछू त्यों विराग संदीपणी हूं,
बरवै बनाइ चिरमाइ मति सांई की।

---

1. डा० के० के०, हिन्दी लिटरेचर : पृ० ४७
2. गान्धी जी, —नवजीवन
3. विनोबा भावे, कल्याण रामायणांक : पृ० ५९३

पारवती जानकी के मंगल ललित गाय,
रम्य राम आज्ञा रची कामधेनु नाईं की।
दोहा औ कवित्त गीतबन्ध कृष्ण राम कथा,
रामायण बिनै मांहि बात सब ठाई की।
जग में सोहानी जगदीश हू के मन भानी,
संत सुखदाती वानी तुलसी गुसाईं की।

नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा कराई गई खोज-रिपोर्टों में तुलसी के नाम से लगभग ३५ ग्रन्थों के नाम दिए गए हैं, किन्तु तुलसी ग्रन्थावली के दोनों खण्डों में उपर्युक्त छन्द में वर्णित बारह ग्रन्थों को ही प्रामाणिक स्वीकार किया गया है। यह ग्रन्थ इस प्रकार हैं:

१. रामचरितमानस,
२. रामलला नहछू,
३. वैराग्य संदीपनी,
४. बरवै रामायण,
५. पार्वतीमंगल,
६. जानकीमंगल,
७. रामाज्ञाप्रश्न,
८. दोहावली,
९. कवितावली,
१०. गीतावली,
११. कृष्णगीतावली,
१२. विनयपत्रिका।

यही ग्रन्थ आजकल विद्वानों और हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकार किए गए हैं। इन ग्रथों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:

रामचरितमानस

'रामचरितमानस' तुलसी की सबसे उत्तम रचना है जिसमें राम को नर और नारायण के समन्वित रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। राम की कथा वाल काण्ड, अयोध्या काण्ड, अरण्य काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दर काण्ड, लंका काण्ड और उत्तर काण्ड नामक सात काण्डों में वर्णित है। इस कथा के आधारभूत ग्रन्थों में नाना पुराण, निगम, आगम, वाल्मीकि रामायण, अध्यातम रामायण आदि की कवि ने स्वयं गणना की है। इस रचना में मुख्यत: राम चरित का वर्णन है। अन्य पात्रों में भरत, लक्ष्मण, सीता, रावण, सुग्रीव,

हनुमान, विभीषण आदि का विशेषरूप में चरित-वर्णन हुआ है। मानस का प्रधान रस शान्त है परन्तु शृंगार, वीर, करुण, हास्य, भयानक, वीभत्स, रौद्र आदि रसों का सुन्दर चित्रण भी अनेक स्थलों पर हुआ है। शृंगार रस का मर्यादापूर्ण चित्रण मानस की विशेष विशेषता है।

'रामचरितमानस' एक महाकाव्य है परन्तु इसमें पुराण और नाटक की विशेषताएं भी उपलब्ध होती हैं। इसकी शैली कहीं पौराणिक है, कहीं नाटकीय तथा कहीं पर महाकाव्य जैसी। इसका आरम्भ पुराण की तरह है, घटनाओं का संगठन और उनका क्रमिक विकास महाकाव्य जैसा है, संवाद तथा चरित्र-चित्रण नाटकीयता से पूर्ण हैं।

'रामचरितमानस' मानव जीवन का महाकाव्य है, जिस में मानव की भौतिक और आध्यात्मिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया गया है। राम, सीता, भरत, दशरथ, कौशल्या, लक्ष्मण, हनुमान आदि के चरित्र चित्रण द्वारा तुलसी ने हमें कर्तव्यपालन का संदेश दिया है। भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का समन्वय करके, सगुण और निर्गुण का भेद समाप्त करते हुए उन्होंने भक्ति का मार्ग बताया। वहुदेवोपासना की जगह एक देवोपासना को प्रतिष्ठित किया, शिव और राम की अन्योन्याश्रित भक्ति का निरूपण कर शैव और वैष्णव जनता के मतभेदों को मिटाया। तुलसी ने ऐसे धर्ममार्ग का निरूपण किया जो श्रुतिसम्मत भी था तथा व्यवहारोपयोगी भी।

संक्षेप में 'रामचरितमानस' में तुलसी का प्रमुख लक्ष्य है रामभक्ति को प्रतिष्ठित करना। इसी कारण उन्होंने स्थान-स्थान पर राम का ईश्वरत्व प्रतिपादित किया है। राम के ईश्वरत्व का प्रतिपादन ही प्रमुख है, अन्य काव्य सम्बन्धी बातों का उनके लिए विशेष महत्व नहीं। तुलसी की इस रचना का प्रचार भारत के प्रत्येक प्रदेश में है और इसकी लोकप्रियता की समता करने वाला भारतीय भाषाओं में कोई अन्य ग्रन्थ नहीं।

रामलला नहछू

यह वीस छन्दों की एक अल्पकाय रचना है जिसमें कथानक का अभाव है। इस में सोहर नामक छन्द में एक उपसंस्कार का वर्णन किया गया है जो यज्ञोपवीत संस्कार और विवाह संस्कार के साथ होता है। इस रचना में जिन विषयों का वर्णन हुआ है, उनसे यही स्पष्ट होता है कि इस की रचना केवल विवाह संस्कार के लिए ही की गई है। 'रामलला नहछू' में शृंगार रस की प्राधनता है। इसी कारण इसमें युवा स्त्रियों के रूप, सौन्दर्य, अंगों, चेष्टाओं मुखों और नेत्रों का उत्तेजक वर्णन है।

राम का यह नहछू नामक संस्कार तब हुआ था जब वे विवाह के पश्चात् सीता को लेकर अयोध्या में आए थे। वातावरण और परिस्थिति के अनुसार तुलसी ने इस में खुला शृंगार वर्णन किया है, जिसे देख कुछ लोग इसे तुलसी जैसे मर्यादाशील भक्त कवि की रचना स्वीकार करने में संकोच करते हैं, परन्तु यह लोग इस बात का ध्यान नहीं रखते कि प्रत्येक कवि प्रसंग के अनुसार ही वर्णन करता है। इसी कारण 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' में शृंगार का कोई चित्र नहीं। यह ग्रन्थ भक्तिरस के हैं और भक्तों के लिए लिखे गए हैं जबकि 'नहछू' स्त्रियों के लिए लिखा गया है। अतः इस में शृंगारवर्णन को अनुचित नहीं कहा जा सकता। काव्यत्व की दृष्टि से यह एक सफल रचना है जो तुलसी के व्यावहारिक ज्ञान का परिचय देती है।

वैराग्य संदीपनी

यह भी तुलसी की एक अल्पकाय रचना है, जिस में वासठ छन्दों में लोगों के मन में वैराग्य की भावना के संदीपन का प्रयास है। कवि ने मंगलाचरण के उपरान्त सन्तस्वभाव, सन्तमहिमा, शान्ति आदि का वर्णन किया है। ज्ञान भक्ति और वैराग्य का इसमें मार्मिक चित्रण हुआ है। 'वैराग्य संदीपनी' के अध्ययन से ऐसा संकेत मिलता है कि इसकी रचना के समय तुलसी सन्तमत से प्रभावित रहे होंगे, क्योंकि सन्तों ने अपने काव्य के द्वारा जो संदेश दिया था, इस रचना में तुलसी भी वैसा ही सन्देश देते हैं।

बरवै रामायण

तुलसी ने समय-समय पर स्वतन्त्र रूप में रामचरित पर जो छन्द लिखे थे, उनका संकलन इस रचना में किया गया है। उनासी छन्दों को सात काण्डों में विभक्त किया गया है। बाल काण्ड में जनकपुरी में सीता और राम के सौंदर्य वर्णन के अतिरिक्त धनुषभंग की घटना का चित्रण है। अयोध्या कांड में रामवनगमन तथा वाल्मीकि मिलन का प्रसंग वर्णित है। अरण्य काण्ड में शूर्पणखा प्रसंग, हेममृग प्रसंग तथा सीता हरण के उपरांत राम की व्याकुलता का वर्णन है। किष्किन्धा कांड में हनुमान मिलन, सुन्दर कांड में अशोक वाटिका में हनुमान की सीता से भेंट तथा वार्तालाप और लंका काण्ड में राम की सेना का सांकेतिक वर्णन है। उत्तर काण्ड में राम से संबन्धित भक्ति के पदों और सिद्धांतों की चर्चा है।

इस रचना में तुलसी ने दैवी मर्यादा की भावना का परित्याग करके सीता के नखशिख का वर्णन भी किया है और साथ ही उसकी विलासक्रीड़ा की चर्चा भी की है। सीता की वियोगजन्य अवस्था का भी मार्मिक चित्रण हुआ है।

इस लघुकाव्य की रचना बरवै नामक छन्द में हुई है। मुगल सम्राट अकबर के प्रधानमन्त्री अब्दुर्रहीम खानखाना ने इस छन्द का प्रचार किया था[1]।

पार्वती मंगल

'पार्वतीमंगल' पूर्वी अवधी में लिखी गई शिव और पार्वती के विवाह से सम्बन्धित एक रचना है, जिसमें तुलसी ने प्रमुखत: सोहर नामक छन्दों में शिव और पार्वती के विवाह की कथा का वर्णन किया है। मंगलाचरण से आरंभ होकर स्वस्तिवचन से इसकी समाप्ति हुई है। इस रचना में तुलसी ने विवाह के समय होने वाले रीति-रिवाजों की चर्चा विस्तारपूर्वक की है[2]। 'रामचरित-मानस' और 'पार्वतीमंगल' की कथा में कुछ अन्तर है। 'रामचरितमानस' में शिव के लिए तपस्या करती हुई पार्वती के प्रेम की परीक्षा सप्तर्षियों द्वारा हुई है, जबकि पार्वती मंगल में ब्रह्मचारी के वेश में शिव द्वारा। 'रामचरितमानस' में कामदहन का विस्तृत वर्णन है, 'पार्वतीमंगल' में केवल एक छन्द में यह प्रसंग वर्णित है[3]। 'रामचरितमानस' में शिव का विवाह उनके वास्तविक रूप में ही होता है, जबकि इस रचना में शिव अपना रूप सुन्दर बना लेते हैं।

जानकी मंगल

इस रचना में राम के साथ जानकी के विवाह का वर्णन है जो 'वाल्मीकि रामायण' के आधार पर किया गया है। इसी कारणवश 'रामचरितमानस' और 'जानकीमंगल' की कथा के कुछ प्रसंगों में अन्तर है। इसमें एक तो पुष्पवाटिका के प्रसंग का अभाव है। धनुषयज्ञ से ही वर्णन आरम्भ होता है तथा राम और सीता वहीं पर प्रथम बार एक दूसरे को देखते हैं। 'मानस' में पुष्पवाटिका प्रसंग विस्तार से वर्णित है। 'मानस' में जब अन्य नृपगण धनुष को उठाने में असमर्थ हो जाते हैं तो जनक की फटकार पर लक्ष्मण क्रोधित हो उत्तर देते हैं तथा विश्वामित्र की प्रेरणा से राम धनुष तोड़ देते हैं। पर 'जानकी मंगल' में लक्ष्मण के क्रोध की कोई चर्चा नहीं। अन्य राजाओं के असफल होने पर विश्वामित्र जनक को परामर्श देते हैं कि वे राम से धनुष भंग के लिए कहें। जनक राम की अवस्था देख कर कहते हैं कि वह काम एक बालक के वश का

---

1. रामनरेश त्रिपाठी, तुलसी और उनका काव्य : पृ० २०४
2. मदनमत्त गज गवनि चलीं वर परिधन।
   दूलह दुलहिनि गे तब हास अवासहिं।
   जुवा खेलावत गारि देहिं गिरिनारिहिं। —पार्वती मंगल : पद १३२, १४८,
3. वामदेव सब काम वाम होइ बरतेउ।
   जप जग मद निदरेसी पायसि फर तेउ॥ —वही, २९

नहीं। फिर विश्वामित्र राम के पराक्रम का वर्णन कर, जनक का संदेह निवारण करते हैं। जनक लज्जित हो जाते हैं। राम विश्वामित्र के चरणस्पर्श करके धनुष को तोड़ देते हैं।

रामाज्ञा प्रश्न

यह भी एक छोटी सी रचना है जो सात सर्गों में विभक्त है और इसमें ३४५ छन्द हैं। इसमें वर्णित रामकथा 'वाल्मीकि रामायण' से प्रभावित है। इस कृति से तुलसी ने एक तरफ तो अपने गणितज्ञान का परिचय दिया है तथा दूसरी ओर जिज्ञासु को अपने प्रश्न का फल भी बताने का प्रयास किया है।

इस रचना में दोहा छन्द में संकेतात्मक रूप में सभी काण्डों की रामकथा वर्णित है। प्रथम सर्ग में बाल काण्ड, द्वितीय सर्ग में अयोध्या काण्ड और अरण्यकाण्ड की, तृतीय सर्ग में अरण्य काण्ड और किष्किन्धा काण्ड की, चतुर्थ सर्ग में फिर बाल काण्ड की, पंचम सर्ग में सुन्दर काण्ड और लंका काण्ड की, षष्ठ सर्ग में उत्तर काण्ड की घटनाओं का उल्लेख है। सप्तम सर्ग में स्फुट प्रसंगों का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में बाल काण्ड की पुनरावृत्ति रचना के मध्य में मंगलमय प्रसंग लाने की भावना से की गई है।

कहते हैं कि तुलसी ने इसकी रचना अपने एक मित्र गंगाराम ज्योतिषी के लिए की थी जो एक संकट में फंसे हुए थे। संभवत: इसी कारण से इस कृति में कवित्वपूर्ण दोहे अधिक मात्रा में नहीं मिलते। एक तो उन्हें इसकी रचना शीघ्रता में करनी पड़ी और दूसरा ज्योतिष के विषय का वर्णन इसका मूल उद्देश्य था। इसी कारण इसके दोहों में घटनाओं के केवल गूढ़ संकेत ही मिलते हैं।

दोहावली

तुलसी की इस रचना में कथावस्तु का अभाव है। नीति, भक्ति, नाम-माहात्म्य, राम की महिमा और उस काल की परिस्थितियों का वर्णन हुआ है। इसमें कुल ५७३ दोहे हैं जो कवि ने अपनी अन्य रचनाओं से लेकर इस में एकत्रित कर दिए हैं। इसमें ७५ दोहे 'रामचरितमानस' के, ३५ दोहे 'रामाज्ञा प्रश्न' के, १३२ दोहे 'तुलसी सतसई' के और सात दोहे 'वैराग्य संदीपनी' के हैं। इससे स्पष्ट है कि 'दोहावली' एक स्वतन्त्र रचना नहीं है, पर इतना अवश्य है कि 'दोहावली' में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, प्रेम, नीति आदि पर सुन्दर सरल और सरस दोहे एक ही स्थान पर प्राप्त हो जाते हैं। आकार की दृष्टि से यद्यपि यह रचना बहुत बड़ी नहीं है, किन्तु इसमें वर्णित विषयों की संख्या बहुत अधिक है। रामनाम का माहात्म्य, भक्ति का स्वरूप, राम भक्त

के लक्षण, ईश्वर महिमा, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, कौशल्या, सुमित्रा, सीता आदि की महिमा, सगुण और निर्गुण की चर्चा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया आदि की प्रबलता, सज्जन-असज्जन चर्चा, सतसंगति, असतसंगति वर्णन तथा अन्त में राम की दीनवन्धुता का वर्णन हुआ है।

कवितावली

तुलसीसाहित्य में 'कवितावली' का महत्वपूर्ण स्थान है। एक तो काव्यत्व की दृष्टि से यह एक श्रेष्ठ रचना है और दूसरा इसके कई पदों में तुलसी के जीवन तथा उस काल की घटनाओं का चित्रण है। तुलसी की यह रचना भी 'रामचरितमानस' और 'बरवै रामायण' की तरह सात काण्डों में विभक्त है, किन्तु इसके अरण्य और किष्किन्धा काण्ड में केवल एक-एक छन्द है।

कवितावली में तुलसी के छात्रजीवन से लेकर अन्त समय तक की रचनाओं का संग्रह है। इसके बाल काण्ड में बालरूप की झांकी, बाललीला, धनुर्यज्ञ, परशुराम-लक्ष्मण संवाद, अयोध्या कांड में वनगमन, केवट का पाद प्रक्षालन, वन के मार्ग में, अरण्य काण्ड में मारीचानुधावन, किष्किन्धा काण्ड में समुद्रोलंघन, सुन्दर काण्ड में अशोकवन, लंका दहन, सीता जी से विदाई, राम की उदारता, लंका काण्ड में राक्षसों की चिन्ता, समुद्रोत्तरण, अंगद का दूतत्व, राक्षस-वानर संग्राम, लक्ष्मण की मूर्छा और राम-रावण के युद्ध के अन्त का वर्णन है। उत्तर काण्ड में अधिकांश रूप में तुलसी की जीवनी का चित्रण हुआ है। कवि ने अनेक व्यक्तिगत बातों की चर्चा इस रचना में की है। तुलसी के आत्मचरित की दृष्टि से कवितावली का उत्तर काण्ड बहुत ही महत्वपूर्ण है।

गीतावली

'गीतावली' गीतिकाव्य की दृष्टि से अपना विशेष महत्व रखती है। पहले विद्यापति ने गीतिकाव्य रचा था। सूरदास ने भी सुन्दर गीतों में कृष्णकाव्य की रचना की थी। इसी कारण तुलसी ने भी गीतों में रामकथा की रचना की। तुलसी ने भी सूरदास की तरह वात्सल्य और शृंगार रस पूर्ण गीत लिखे हैं और कुछ पद 'सूरसागर' के पदों से समानता रखते हैं। जिस प्रकार सूरदास ने कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन किया है, उसी प्रकार राम का बाल वर्णन तुलसी ने 'गीतावली' में किया है। 'गीतावली' ही तुलसी दास की एक ऐसी रचना है, जिसमें राम की बालसुलभ क्रीड़ाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है।

कृष्ण के वियोग में जिस प्रकार के भावों की अभिव्यंजना यशोदा ने की है, वैसी ही स्थिति राम के वियोग में कौशल्या की चित्रित हुई है।

यशोदा और कौशल्या की वियोगदशा का वर्णन साम्य रखता है, क्योंकि कृष्ण के विरह में जो दशा गौओं की होती है, वही दशा राम के विरह में घोड़ों की। यद्यपि अपनी राम सम्बन्धी अन्य रचनाओं में तुलसी ने शृंगारपूर्ण घटनाओं का चित्रण नहीं किया है, परन्तु 'गीतावली' में कृष्णकाव्य के प्रभाव से कुछ ऐसे वर्णन प्राप्त होते हैं। राम का सौंदर्य और ऐश्वर्य वर्णन ही 'गीतावली' का उद्देश्य प्रतीत होता है, परन्तु उसमें वह स्वाभाविकता नहीं, जो सूरदास के काव्य में पाई जाती है।

'गीतावली' भी सात काण्डों में विभक्त है किन्तु इसमें कई प्रसंगों को पूर्ण रूप से छोड़ दिया गया है। उदाहरण के लिए कैकेई-दशरथ संवाद, राम-रावण युद्ध, लंका-दहन आदि प्रसंग लिए जा सकते हैं। इसके उत्तर काण्ड में राम का राज्याभिषेक, सीता वनवास, लव-कुश जन्म आदि का सुन्दर वर्णन हुआ है।

कृष्ण गीतावली

इस रचना में तुलसी ने कृष्ण के चरित्र की चर्चा की है। यह एक लघुकाय रचना है, जिमें केवल ६१ पद हैं। इसके आरम्भ में कवि ने मंगला-चरण किया है और अंत में मंगलकामना है। इसमें कोई काण्ड या स्कन्ध नहीं, सभी घटनाएं पदों में वर्णित हैं। इसमें कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित कुछ मुख्य घटनाओं का वर्णन है, जिनमें गोपीप्रेम, मथुरागमन, गोपीविरह, द्रौपदी चीर हरण आदि को लिया जा सकता है। कृष्ण की बाल-लीला और उनके सौन्दर्य का वर्णन भी हुआ है। संक्षेप में 'कृष्ण गीतावली' तुलसी का एक ऐसा लघुकाव्य है, जिस में बड़ी सरलता और मधुरता से कृष्ण-लीला का वर्णन हुआ है।

विनय पत्रिका

तुलसी की यह रचना 'रामचरितमानस' के समान ही एक प्रसिद्ध और श्रेष्ठ काव्य है। कलियुग की कुचाल से पीड़ित होकर तुलसी ने श्रीराम के दरबार में विनय की पत्रिका भेजी थी जो एक अर्जी अथवा प्रार्थनापत्र के रूप में है। इसमें सर्वप्रथम मंगलाचरण रूप में गणेश की वन्दना है। फिर सूर्य, शंकर, देवी, गंगा, यमुना, हनुमान, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता, राम, नर-नारायण और बिन्दु-माधव की स्तुतियां हैं। इसके उपरांत विनय के पद हैं और अन्त में भरत और लक्ष्मण के अनुरोध पर तथा सीता द्वारा स्मरण करवाने पर राम की स्वीकृति है।

'विनयपत्रिका' रामभक्तों में अत्यन्त लोकप्रिय है। इसमें तुलसी की

भक्तिभावना का स्पष्ट चित्रण हुआ है। भक्ति के विभिन्न भावों का इसमें स्वाभाविक वर्णन है। भावना की तीव्रता और एकाग्रता के कारण ही 'विनय पत्रिका' एक श्रेष्ठ गीतिकाव्य के रूप में स्वीकार की जाती है। दीनता, विश्वास, आत्मभर्त्सना, वैराग्य, हर्ष, गर्व, उपालम्भ, मोह, चिन्ता, विषाद, प्रेम आदि भावों का सुन्दर चित्रण इस रचना में मिलता है।

'विनयपत्रिका' में तुलसी ने किसी दार्शनिक वाद-विवाद में न पड़ कर, एक मात्र भक्तिमार्ग पर चलने का संदेश दिया है क्योंकि राम की भक्ति का मार्ग एक ऐसा राजमार्ग है, जिस पर चल कर किसी को भटकना नहीं पड़ता।

इस रचना में कथानक का अभाव है। तुलसी ने इसमें केवल आत्म-निवेदन मात्र किया है, जिसका उद्देश्य आत्मशुद्धि तथा अपना उद्धार है। यह आत्मनिवेदन छः प्रकार के विनय-पदों में हुआ है :

विनय के पद

इन पदों में आख्यानों और रूपकों द्वारा कवि गणेश से लेकर राम तक सब की स्तुति करता है।

स्थान वर्णन

कुछ पदों में कवि ने चित्रकूट, काशी, प्रयाग आदि पवित्र स्थानों का वर्णन किया है।

उद्‌बोधन सम्बन्धी पद

कुछ पदों में कवि ने मन को समझाने और उसे शन्ति प्रदान करने की बातें कही हैं।

ज्ञान के पद

इस में संसार की अनित्यता और असारता का वर्णन करके कवि ने मन को सांसारिक ममता से दूर रहने को कहा है।

वैराग्य सम्बन्धी पद

इन में वैराग्य का संदेश है तथा संसार की अनित्यता का वर्णन किया गया है।

आत्म चरित सम्बन्धी पद

इन पदों में एक तरफ तो तुलसी ने राम से भक्ति और मुक्ति के लिए प्रार्थना की है और दूसरी तरफ उनके नखशिख का वर्णन भी किया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि तुलसी ने सेवक-भावना से प्रेरित होकर

आत्मसमर्पण की भावना से विनय पत्रिका की रचना की है। हिन्दी साहित्य में यह एक मात्र ऐसी कृति है जो तुलसी की अध्यात्मभावना पर स्पष्ट रूप से प्रकाश डालती है।

तुलसी साहित्य के पौराणिक आधार के सम्बन्ध में तुलसी की मान्यता पर विवेचन करने से पूर्व इस सम्बन्ध में अन्य विद्वानों के विचार जान लेना उपयुक्त होगा। पुराण साहित्य का मुख्य उद्देश्य साधारण जन समाज में धार्मिक भावों का संचार करना था। हमारे देश के धार्मिक साहित्य में पुराणों का विशेष स्थान रहा है। यद्यपि वेद तथा उपनिषद भी धर्म के अद्वितीय ग्रन्थ माने गए हैं परन्तु लोकप्रियता की दृष्टि से पुराण साहित्य की कोई तुलना नहीं। पुराणों में सीधी-साधी धार्मिक कथाओं और दृष्टान्तों द्वारा जन सामान्य को उपासना, पूजा, भक्ति, नीति, सदाचार आदि की शिक्षा दी गई है।

तुलसी ने राम के धर्ममय वृत्त का आधार लेकर पुराणों की परम्परा को ही आगे बढ़ाया है। इस सम्बन्ध में रामनरेश त्रिपाठी[1], रामदास गौड़[2], डा० माताप्रसाद गुप्त,[3] यज्ञदत्त शर्मा[4], डा० भाग्यवती सिंह[5] आदि सभी एक मत हैं। विण्टर नित्ज[6], कामिल बुल्के[7] आदि विदेशी विद्वान् भी इसी मत के पोषक हैं।

बहि: साख्य के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी भक्ति भावना के क्षेत्र में पुराण साहित्य से प्रभावित थे। पुराणों में कर्मयोग, ज्ञान-योग और भक्तियोग—इन तीनों की शिक्षा होने पर भी भक्तियोग को विशेषता प्राप्त है, क्योंकि वह मनुष्य के लिए तत्काल कल्याणकारक है। भक्तिमार्ग का अनुसरण ब्राह्मण, शूद्र, नर-नारी सभी कर सकते हैं[8]। 'भागवत पुराण'

---

1. रामनरेश त्रिपाठी, तुलसी और उनका काव्य : पृ० १२४
2. रामदास गौड़, हिन्दुत्व : पृ० १४३
3. माताप्रसाद गुप्त, तुलसीदास : पृ० २८७
4. यज्ञदत्त शर्मा, तुलसी साहित्य और सिद्धातत : पृ० १६०
5. डा० भाग्यवती सिंह, तुलसी मानसरत्नाकर : पृ० ८५
6. विण्टर नित्ज, हिस्ट्री आफ् इण्डियन लिटरेचर भाग २ : पृ० ५७८
7. कामिल बुल्के, राम कथा : पृ० १४९
8. मार्गस्त्रयो मे विख्याता मोक्षप्राप्तौ नगाधिप।
   कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च सत्तम ॥
   त्रयाणामप्ययं योग्य: कर्त्तु शक्योस्ति सर्वथा
   सुलभत्वान्मानसत्वात् काय चित्राद्य पीड़नात् ॥ —देवी भागवत : ७/३७/२–३

में कृष्ण ने उद्धव से कहा है कि कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म तथा तीर्थयात्रा, व्रत आदि अन्य साधनों के द्वारा जो प्राप्त होता है, मेरा भक्त भक्तियोग से वह सब अनायास ही प्राप्त कर लेता है[1]। जो भगवान का नाम लेते हैं, वे चाण्डाल भी श्रेष्ठ हो जाते हैं। जिन्हों ने नाम जपा, उन्होंने तपस्या, तीर्थ, हवन, वेदाध्ययन सब कर लिया[2]।

पुराणों के भगवान केवल ज्ञेय ब्रह्म ही नहीं हैं, वे निर्गुण, निर्विकार, अद्वितीय चित्स्वरूप ही नहीं है, अपितु प्रत्यक्ष, भक्त के आराध्य, प्रेम और सौन्दर्य की मूर्ति तथा कल्याणकारी हैं। वे परमेश्वर होते हुए भी करुणा-निधान, पतितपावन और शरणागत रक्षक हैं। पुराणों के मत में ज्ञानमार्ग में निर्गुण ब्रह्म की उपासना जीव के लिए बड़ी कठिन है। जबतक देहात्मबोध दूर नहीं हो जाता, निर्गुण ब्रह्म में स्थिति नहीं होती। भक्तियोग में सगुण ईश्वर की उपासना साधारण जीव के लिए सुगम हैं। इसी कारण पुराण इस प्रकार की उपासना पर ही बल देते हैं। 'पद्मपुराण' की शिव गीता में यही बात कही गई है[3]।

पुराणों के अनुसार भक्तवत्सल भगवान साधु और भक्त साधकों की उपासना के निमित्त निराकार हो कर भी उनके उपास्य देवता के आकार में आविर्भूत होते हैं तथा उनके लिए उपकारक होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करते हैं[4]।

अवतारवाद पुराणों का एक प्रधान अंग है। इसे केन्द्र मानकर भक्तिधर्म और भक्तिसाधना ने परिपुष्टि प्राप्त की थी। पुराण विश्वातीत ब्रह्म को मृत्यु लोक में खींच लाए हैं और उस भगवान को मनुष्यों के बीच में पुत्र, भ्राता, सखा, प्रभु और गुरू के रूप में अवतरित कर भगवान और मनुष्य के बीच की दूरी को पाट दिया है। भगवान भक्तों के प्रति अनुग्रह प्रकट करने के लिए

---

1. यत कर्मभि र्यत्तपसा ज्ञान वैराग्यतश्च यत्।
   योगेन दान धर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि।
   सर्वं मद भक्तियोगेन मदभक्तो लभतेऽञ्जसा। —भागवत : ११/२०/३२
2. अहोबत श्वपचोऽतो गरीयान्
   यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्। —वही : ३/३३/७
3. पद्मपुराण : उत्तरखण्ड, शिवगीता, १४/५
4. साधूनामप्रमत्तानां साधूनां भक्तवत्सलः।
   उपकर्ता निराकारस्तदाकारेण जायते।
   कार्यार्थं साधकानां च चतुर्वर्ग फलप्रदः॥

   —पुराणों में भक्ति : कल्याण भक्ति अंक पृ० ५३

ही मनुष्य के रूप में अवतीर्ण होते हैं तथा इस प्रकार की लीलाएं करते हैं जिनका श्रवण और कीर्तन करके जीव सहज ही भगवत्परायण हो सकता है[1]। पुराण यह भी बताते हैं कि एक अद्वितीय ब्रह्मतत्व ही गुण और क्रिया भेद से अनन्त नाम और रूप धारण करता है।

विभिन्न पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु और शिव की महिमा का पृथक्-पृथक् वर्णन होते हुए भी यह घोषित किया गया है कि वे एक ही परम तत्व के त्रिविध प्रकाश हैं तथा स्वरूपतः अभिन्न है[2]।

पुराण साहित्य में उपलब्ध जिस भक्ति तत्व का हमने संक्षिप्त निरूपण किया है, उसकी प्रायः सभी विशेषताओं को तुलसीदास ने स्वीकार कर उन्हें अधिक सुन्दर और परिष्कृत रूप में प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि देशी और विदेशी विद्वान् एकमत से तुलसी साहित्य पर पुराणों के व्यापक प्रभाव को स्वीकार करते हैं।

तुलसी साहित्य के पौराणिक आधार के सम्बन्ध में यह देख लेना भी आवश्यक है कि इस सम्बन्ध में तुलसीदास का अपना क्या मत है? यद्यपि उन्होंने अपने प्रमुख एवं अमर ग्रन्थ 'रामचरितमानस' में स्पष्ट रूप से घोषणा की है कि उन की उस रचना का आधार अनेक पुराण, निगम, आगम, वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण तथा अन्य अनेक सूत्र हैं, परन्तु इस श्लोक में उन्हों ने सर्वप्रथम स्थान 'नानापुराण' को ही दिया है। 'रामचरितमानस' के अध्ययन करने से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि तुलसी ने नानापुराण का प्रयोग जानबूझ कर किया है, क्योंकि अन्य शास्त्रों की अपेक्षा 'रामचरित-मानस' में पौराणिक प्रसंगों की ही प्रधानता है। इस रचना की प्रधान एवं प्रायः सभी प्रासंगिक कथाओं को तुलसीदास ने पुराण साहित्य से लिया है। 'रामचरितमानस' की तो बात ही क्या तुलसीदास ने अपनी अन्य अल्प कलेवर रचनाओं में भी अपना मत प्रस्तुत करते समय पुराणों का बार-बार उल्लेख किया है। पुराण शब्द के साथ वेद शब्द का प्रयोग भी तुलसी बार-बार करते हैं। अपने मत के समर्थन में तुलसी वेद और पुराण की ही दुहाई देते हैं,

---

1. अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमाश्रितः ।
   भजते तादृशी क्रीड़ा या श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥ —भागवत पुराण, १०/३३/३७

2. (क) एको विष्णु त्रिधा भूत्वा सृजत्यत्ति च पाति च ।
   तस्माद् भेदो न कर्तव्यः स्त्रिषु देवेषु सत्तमैः ॥
   (ख) यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथा शिवः ।
   अन्तरं शिव विष्णोश्च मनागपि न विद्यते ॥
   —स्कन्द पुराण : काशीखण्ड, २३/४१

जिस से प्रतीत होता है कि तुलसी पुराण को वेद के समकक्ष मानते हैं। 'विनय-पत्रिका' में राम की महिमा का बखान करते हुए तुलसी कहते हैं कि जिसका यश वेद और पुराणों में वर्णित है[1]। वेद और पुराण जिसे उदार कहते हैं[2]। जिस का पुरुषार्थ वेद एवं पुराणों में प्रकट है[3]। पुराण, वेद पण्डित और शिव भी इस वात को कहते हैं[4]। वेद-पुराणों में जो वर्णित है[5] और जिस का यश वेद, पुराण, शिवजी और शुकदेव जी गाते हैं[6]। वेद-पुराण कहते है कि राम सब देशों और सब कालों में सदा पूर्ण रहते हैं[7]। राम की महत्ता के साखी वेद और पुराण हैं[8]।

इसी प्रकार 'बरवै रामायण' में भी तुलसी ने लिखा है कि राम का नाम चारों फल देने वाला है। इस वात की घोषणा वेद, पुराण और शिव ने स्वयं की है[9]। तन्त्रशास्त्र, वेद और पुराण निश्चयपूर्वक यह कहते हैं कि 'राम नाम' का स्मरण उत्तम है[10]।

'वैराग्य संदीपनी' की विषयवस्तु के सम्बन्ध में तुलसी का मत है कि वेद-पुराण और अन्य शास्त्रों के मत का प्रतिपादन करने वाली यह 'वैराग्य-संदीपनी' ज्ञान का सार है[11]।

'दोहावली में भी तुलसी ने आम तौर पर वेद और पुराण शब्द का साथ-साथ प्रयोग किया है, पर कहीं-कहीं केवल पुराण शब्द का ही प्रयोग है। परन्तु ऐसे पदों की संख्या नगण्य है। तुलसी पुराण के साथ वेद शब्द का व्यवहार करते हुए लिखते हैं—"वेद पुराण कहते हैं कि क्या हरि की भक्ति के बिना

---

1. वेद पुरान प्रगट जस जाकै। —विनय पत्रिका : पद २
2. वेद पुरान कहत उदार हर। —वही, पद ७
3. वेद पुरान प्रगट पुरुषारथ। —वही, पद ३१
4. कहत पुरान वेद पण्डित मुरारी रे। —वही, पद ६७
5. वेद पुरान वखान्यो। —वही, पद ८८
6. गावत वेद पुरान संभु सुक। —वही, पद ९९
7. देस काल पूरण सदा बद वेद पुरान। —वही : पद १०७
8. साखी वेद पुरान है। —वही, पद १५२
9. तुलसी सुमिरत राम सुलभ फल चारि।
   वेद पुरान पुकारत कहत पुरारि॥ —बरवै रामायण : पद ५६
10. आगम निगम पुरान कहत करि लीक।
    तुलसी राम नाम कर सुमिरन नीक॥ —वही, पद ६०
11. तुलसी वेद पुरान मत पूरन सास्त्र विचार।
    यह बिराग-संदीपनी अखिल ग्यान को सार॥ —वैराग्य संदीपनी : दोहा ७

सुख हो सकता है[1] ? सन्तों का संग मोक्ष का और विषयी पुरुषों का संग संसार बन्धन का मार्ग होता है। इस वात को संत, कवि, ज्ञान और वेद पुराणादि सद्ग्रन्थ कहते हैं[2]। कलियुग में भक्त लोग मनमानी साखी, शब्द, दोहा, कहानी, उपाख्यान कह कर भक्ति का निरूपण करते हैं और प्रामाणिक वेद, पुराणों की निन्दा करते हैं[3]। कलियुग में सब कुछ धर्म के विपरीत हो गया। नए-नए करोड़ों कल्पित कुमार्ग हो गए। इससे पुण्य तो पहाड़ों में भाग गया और पुराण आदि सद्ग्रन्थ वनों में जाकर छिप गए"। अर्थात् वनों पर्वतों में निवास करने वाले कुछ महात्माओं में ही पुण्य और सद्ग्रन्थों का पठन-पाठन रह गया है[4]। तुलसी ने 'कवितावली' में भी इसी परम्परा को वनाए रखा है। केवल कुछ एक पदों में वेद और पुराण के साथ निगम और आगम शब्द का भी प्रयोग किया है। तुलसी लिखते हैं—हमने अनेक विवाह देखे हैं तथा वेद-पुराण पढ़े हैं[5]। चाहे व्यक्ति वेद-शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करे और पुराणों का अध्ययन करे, पर राम के बिना उसका दुःख कौन दूर कर सकता है[6] ? मैं न तो वेद का, न पुराणों का गान करना जानता हूं[7]। जो आदमी पुराण पढ़ कर भी सुकर्म में रत नहीं होता, वह नष्ट हो जाता है[8]। अभिमान वड़ी बुरी वस्तु है और सारा संसार ही जानता है कि श्री गोविन्द को अभिमान अच्छा नहीं लगता[9]।

'गीतावली' में तुलसी ने कहीं-कहीं केवल वेद शब्द का प्रयोग किया है, परन्तु वेद-पुराण वाली परम्परा इस रचना में भी यथापूर्व है। विभीषण अपने भाई रावण को राम से युद्ध न करने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि राम के समान और कोई स्वामी दिखाई नहीं देता, जिनके विरद के वखान में वेद पुराण

---

1. गावहिं वेद पुरान सुखकि लहिय हरि भगति बिनु। —दोहावली : दोहा १३७
2. संत-संग अपवर्ग कर कामी भवकर पंथ।
   कहहि संत कवि कोविद श्रुति पुरान सद्ग्रन्थ॥ —वही, दोहा ३४०
3. साखी सबदी दोहरा कहि कहनी उपखान।
   भगति निरूपहिं भगत कवि निंदहिं वेद पुरान॥ —वही, दोहा ५५
4. सकल धरम विपरीत कलि कल्पित कोटि कुपंथ।
   पुन्य पराय पहार बन दुरे पुरान सुग्रन्थ॥ वही, दोहा ५६
5. देखे हैं अनेक व्याह सुने हैं पुरान बेद। —कवितावली : उत्तर काण्ड, पद १५
6. निगमागम ग्यान पुरान पढ़ै। वही, पद ५५
7. वेद न पुरान गान। —वही, पद ६२
8. जाय सो पंडित पढ़ि पुरान जो रत न सुकर्महि। —वही, पद ११६
9. वेद पुरान कहै जगु जान,
   गुमान गोबिन्दहि भावत नाहीं। —वही, पद, १३२

ग्रौर कवि रत रहते हैं[1]। इसी रचना के अन्तिम पद में राम के चरित्र का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है कि जब राम चौदह वर्ष के उपरान्त ग्रयोध्या में वापिस ग्रा गए तो उस समय वशिष्ठ जी ने वेद ग्रौर पुराण से विचार कर शुभ लग्न में भगवान राम का राज्याभिषेक किया[2]।

सब से ग्रधिक पुराण शब्द का प्रयोग तुलसी ने 'रामचरितमानस' में किया है। राम के ईश्वरत्व प्रतिपादन में, विभिन्न कथा प्रसंगों के वर्णन में तथा ग्रपने मत की स्थापना के समर्थन में, तुलसी ने ग्रपनी इस रचना के प्रत्येक काण्ड में पुराणों का ग्राधार लिया है। बाल काण्ड के ग्रारम्भ में—नानापुराण निगमागम—श्लोक द्वारा इस रचना के ग्राधार ग्रौर उद्देश्य पर प्रकाश डालने के तुरन्त बाद तुलसी लिखते हैं—वेद, इतिहास ग्रौर पुराण कहते हैं कि ब्रह्मा की यह सृष्टि गुणों-ग्रवगुणों से सनी हुई है[3]। इस संसार में समस्त पुण्यों का फल राम में स्नेह होता है[4]। मेरी इस रचना में श्री रघुनाथ जी का उदार नाम है, जो ग्रत्यन्त पवित्र है ग्रौर वेद-पुराणों का सार है[5]। सरस्वती, शेष, शिव, ब्रह्मा, शास्त्र, वेद ग्रौर पुराण नेति-नेति कह कर जिस का गुणगान किया करते हैं[6]। सन्तों, पुराणों ग्रौर उपनिषदों ने भी राम नाम के उस ग्रसीम प्रभाव का गान किया है[7]। राम पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं। वेद, पुराण, ग्रौर शास्त्र नेति-नेति कह कर उनका यश गाते हैं[8]। वे सगुण भी हैं ग्रौर निर्गुण भी।

---

1. दूसरो न देखतु साहिब सम रामै,
   बेदऊ पुरान, कवि-कोबिद बिरद-रत,
   जाको जस सुनत गावत गुन ग्रामै। —गीतावली : सुन्दर काण्ड, पद २५
2. बेद-पुरान बिचारि लगन सुभ
   महाराज ग्रभिषेक कियो। —वही, उत्तरकाण्ड, पद ३८
3. कहहिं बेद-इतिहास पुराना।
   बिधि प्रपंचु गुन ग्रवगुन नाना॥ —रामचरितमानस : बाल काण्ड, ५/२
4. बेद पुरान सन्त मत एहू।
   सकल सुकृत फल राम सनेहू॥ —वही, २६/१
5. एहि महं रघुपति नाम उदारा।
   ग्रति पावन पुरान श्रुति सारा॥ —वही, ९/१
6. सादर सेस महेस बिधि ग्रागम निगम पुरान।
   नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान॥ —वही, १२
7. राम नाम कर ग्रमित प्रभावा।
   सन्त पुरान उपनिषद गावा॥ —वही, ४५/१
8. कहि नेति निगम पुरान ग्रागम,
   जासु कीरति गावहीं। —वही, छन्द १

मुनि, पुराण, पण्डित और वेद सबका यह मत है कि भगवान के सगुण और निर्गुण रूप में कुछ भी भेद नहीं है[1] । वेद और पुराण जिसे माया, गुण और ज्ञान से परे तथा परिमाण रहित बताते हैं[2] । वे राम पूर्ण ब्रह्म हैं, जिनके अनेक प्रकार के सुन्दर रहस्य इतिहास और पुराणों में गुप्त और प्रकट हैं[3] । इन्हीं राम की भक्ति के बिना व्यक्ति को सुख उपलब्ध नहीं होता । श्रुति, पुराण और अन्य ग्रन्थ इस सम्बन्ध में एक मत हैं कि चाहे सब अनहोनी बातें क्यों न हो जाएं श्री राम से विमुख होकर जीव सुख नहीं पा सकता[4] ।

इसी प्रकार 'मानस' में जिन अनेक कथा प्रसंगों की चर्चा तुलसी ने की है, उन की संस्थापना के लिए तथा इन कथाओं के नायकों के चरित्र वर्णन के लिए कवि ने मुख्यतया पुराणों को ही आधार बनाया है। राम के अवतार लेने के प्रथम कारण की चर्चा करते हुए कवि लिखता है—स्वायम्भुव मनु और उनकी पत्नी शतरूपा से मनुष्यों की यह अनुपम सृष्टि हुई है। इस दम्पति का धर्म और आचरण बहुत श्रेष्ठ था । आज भी वेद, उनकी मर्यादा का गान करते हैं[5] । राजा उत्तानपाद उनके पुत्र थे , जिनके पुत्र प्रसिद्ध हरिभक्त ध्रुव हुए । मनु जी के छोटे लड़के का नाम प्रियव्रत था, जिसका यश वेदों और पुराणों में वर्णित है[6] । इन्हीं मनु जी ने तपस्या करके भगवान राम को पुत्र रूप में प्राप्त किया था। राम जन्म से पूर्व रावण का अत्याचार बहुत बढ़ गया था। राक्षसों द्वारा किए जाने वाले घोर अत्याचारों का वर्णन नहीं किया जा सकता। उनके डर से कहीं भी शुभ अनुष्ठान नहीं होते थे। देवता, ब्राह्मण और गुरू को कोई

---

1. सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा ।
   गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ।। —रामचरितमानस : बाल काण्ड, ११५/१
2. माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुराण भनंता । —वही, छन्द २
3. राम रहस्य ललित विधि नाना ।
   गुप्त प्रगट इतिहास पुराना ।। —वही, उत्तर काण्ड, ११३/१
4. श्रुति पुरान सब ग्रन्थ कहाहिं ।
   रघुपति भगति विना सुख नाहिं ।। —वही, १२१/७
5. स्वायंभू मनु अरु सतरूपा ।
   जिन्ह ते भइ नर सृष्टि अनूपा ।।
   दंपति धरम आचरन नीका ।
   अजहुं गाव श्रुति जिन्ह कै लीका ।। —वही, बाल काण्ड, १४१/१
6. नृप उत्तानपाद सुत तासू ।
   ध्रुव हरिभगत भयउ सुत जासू ।।
   लघु सुत नाम प्रियब्रत ताही ।
   बेद पुरान प्रसंसहिं जाही ।। —वही, १४१/२

नहीं मानता था। न हरि भक्ति थी, न यज्ञ, तप ग्रौर ज्ञान था। वेद ग्रौर पुराण तो स्वप्न में भी सुनने को नहीं मिलते थे[1]। रावण धर्म का इतना शत्रु हो गया था कि जो कोई वेद ग्रौर पुराण की बात करता, उसको वह ग्रनेक त्रास देता ग्रौर देश से निकाल देता [2]।

शिव ग्रौर पार्वती के विवाह की कथा कहने के उपरान्त कवि ने तारकासुर का संहार करने वाले कार्त्तिकेय के जन्म के सम्बन्ध में लिखा है कि—शिव-पार्वती विविध प्रकार से भोग-विलास करते हुए ग्रपने गणों सहित कैलाश पर्वत पर निवास करने लगे। तब छः मुख वाले पुत्र स्वामी कार्त्तिकेय का जन्म हुग्रा, जिन्हों ने बड़े होने पर युद्ध में तारकासुर का संहार किया। वेद, शास्त्र ग्रौर पुराणों में स्वामी कार्त्तिकेय के जन्म की कथा प्रसिद्ध है ग्रौर सारा जगत् उसे जानता है[3]।

दशरथ-कैकेयी के कथा-प्रसंग में जब कैकेयी दशरथ से यह कहती है "हे प्रियतम! ग्राप मांग मांग तो कहा करते हैं, पर देते लेते कभी कुछ नहीं। ग्रापने दो वरदान देने को कहा था, उनके भी मिलने में सन्देह है"। इस पर दशरथ ने हंसकर कहा कि उसपर झूठा दोषारोपण न किया जाए। रघुकुल में सदा सत्य का पालन किया जाता है, क्योंकि सत्य ही समस्त उत्तम ग्रौर पवित्र कर्मों की जड़ है। यह बात वेद-पुराणों में प्रसिद्ध है ग्रौर मनु जी ने भी यही कहा है[4]।

नारद-मोह कथा-प्रसंग में नारद ने श्रीराम जी से प्रश्न किया था "हे राम जी! जब ग्रापने ग्रपनी माया को प्रेरित करके मुझे मोहित किया था, तब मैं विवाह करना चाहता था। हे प्रभु! ग्रापने मुझे किस कारण विवाह नहीं करने दिया?" इस पर भगवान राम ने नारद को कहा था कि वे ग्रपने भक्तों की उसी प्रकार रक्षा करते हैं, जैसे माता बालक की रक्षा करती है। यद्यपि काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह ग्रादि बड़े प्रबल हैं, परन्तु इन सब में मायारूपिणी (माया की साक्षात् मूर्ति) स्त्री तो ग्रत्यन्त दारुण दुःख देने वाली

---

1. नहिं हरि भगति जग्य तप ग्याना।
   सपनेहुं सुनिग्र न वेद पुराना॥ —रामचरितमानस : बाल काण्ड, १८२/४
2. तेहि बहु विधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना। —१८२
3. ग्रागम निगम प्रसिद्ध पुराना।
   षन्मुख जन्म सकल जग जाना॥ —वही, १०२/४
4. सत्य मूल सब सुकृत सुहाए।
   बेद पुरान बिदित मनु गाए॥ —वही, ग्रयोध्या काण्ड, २७/३

है। पुराण, वेद और सन्त कहते हैं कि मोह रूपी वन को विकसित करने के लिए स्त्री बसन्त ऋतु के समान है[1]।

राम के अवतार धारण करने के दूसरे कारण से सम्बन्धित कथा की चर्चा करते हुए तुलसी लिखते हैं कि —कैकेय देश के राजा सत्यकेतु का पुत्र प्रतापभानु अत्यन्त तेजस्वी और श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न था। वेदों में राजाओं के जो धर्म बताए गए हैं, वह उन सब का आदरपूर्वक पालन करता था। वह राजा प्रतिदिन अनेक प्रकार के दान देता और उत्तम शास्त्र, वेद और पुराण सुनता[2]। वेद और पुराणों में जितने प्रकार के यज्ञ बताए गए हैं, राजा ने एक-एक करके उन सब यज्ञों को प्रेम सहित हजार-हजार बार किया[3]।

तुलसी जो बात स्वयं करते हैं, उसके समर्थन में वे वेद-पुराण का नाम अवश्य देते हैं। इसके साथ ही 'मानस' के पात्र भी अपने मत के समर्थन में पुराणों का बार-बार आधार लेते हैं। अयोध्या में प्रवाहित होने वाली सरयू नदी की पावनता का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—वेद-पुराण कहते हैं कि सरयू का दर्शन, स्पर्श, स्नान और जलपान पापों का नाश करने वाला है[3]। अत्रि की पत्नी अनुसूया सीता को पतिव्रत धर्म की शिक्षा देते समय कहती है—जगत् में चार प्रकार की पतिव्रताएं हैं। वेद-पुराण और सन्त इस बात के साक्षी हैं[4]। विभीषण ने पण्डितों, पुराणों और वेदों द्वारा सम्मत वाणी से नीति बखान करते हुए, रावण से कहा कि—हे नाथ! अच्छी बुद्धि और खोटी बुद्धि सब के हृदय में रहती है। जहां सुमति है, वहां सुख है और जहां

---

1. सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता।
   मोह बिपिन कहुं नारि बसंता॥ —रामचरितमानस : अरण्य काण्ड, ४३/१
2. भूप धरम जे बेद बखाने।
   सकल करइ सादर सुख माने॥
   दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना।
   सुनइ सास्त्र बर बेद पुराना॥ —वही, बाल काण्ड, १५४/३
3. जहं लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग।
   बार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग॥ —वही, १५५
4. दरस परस मज्जन अरु पाना।
   हरइ पाप कह बेद पुराना॥ —वही, ३४/१
5. जग पतिव्रता चारि बिधि अहहिं।
   बेद पुरान संत सब कहहिं॥ —वही, अरण्य काण्ड, ४/६

कुमति है वहां दुःख है। पुराण और वेदों में यही बात कही गई है[1]।

राम अपने भाईयों के साथ जब गुरू वशिष्ठ के पास विद्या अध्ययन के लिए जाते हैं, तो वे मन लगा कर वेद और पुराण पढ़ते हैं और फिर स्वयं छोटे भाईयों को समझा कर कहते हैं[2]। जब राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ वन में गए तथा राक्षसों को मार कर ब्राह्मणों को निर्भय कर दिया, तो भक्ति के कारण ब्राह्मणों ने उन्हें पुराणों की अनेक कथाएं कहीं[3]। वनवास के आदेश के उपरान्त जब सुमन्त राम को वन में घुमा कर वापिस अयोध्या नगरी में चलने को कहते हैं, तो राम उन्हें वेद और पुराण वर्णित सत्य पर दृढ़ रहने की बात कह कर समझाते हैं[4]।

जहां तक 'मानस' के उत्तर कांड का सम्बन्ध है, उसमें अन्य काण्डों की अपेक्षा वेद-पुराण की बहुत अधिक चर्चा है। अवधपुरी-वर्णन में, राम-राज्य, कलियुग के प्रभाव, सत्संग एवं सन्तों के गुणों की चर्चा के प्रसंग में वेद-पुराण निगम, श्रुति आदि की तुलसी ने बार-बार दुहाई दी है। लंका से पुष्पक विमान पर लौटते हुए, राम सुग्रीव आदि को यह मनोहर नगर दिखाते हुए कहते हैं—यद्यपि सबने वैकुण्ठ की प्रशंसा की है, परन्तु वेद-पुराणों में यह बात प्रसिद्ध है और लोग भी जानते है कि मुझे अवधपुरी के समान वह भी प्रिय नहीं है[5]। काकभुशुण्डि गरुड़ से कहते हैं कि अब मैंने अवध का प्रभाव जान लिया है। वेद, शास्त्र और पुराणों में कहा गया है कि किसी भी जन्म में जो कोई भी अयोध्या में निवास करता है, वह भगवान राम का सेवक बन

---

1. बुध पुरान श्रुति संमत बानी।
   कही बिभीषण नीति बखानी।।
   सुमति कुमति सब के उर रहहिं।
   नाथ पुरान निगम अस कहहिं।। —रामचरितमानस : सुन्दर काण्ड, ३९/३
2. वेद पुरान सुनहिं मन लाई।
   आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई।। —वही, बाल काण्ड, २०४/३
3. भगति हेतु बहु कथा पुराना।
   कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना।। —वही, २०९/४
4. धरम न दूसर सत्य समाना।
   आगम निगम पुरान बखाना।। —वही, अयोध्या काण्ड, ९४/३
5. यद्यपि सब वैकुण्ठ बखाना।
   वेद पुरान विदित जग जाना।। —वही, उत्तर काण्ड, ३/२

जाता है[1]। रामराज्य में तो पुराणों का महत्व और भी बढ़ गया था। राजा राम प्रातःकाल सरयू में स्नान करके ब्राह्मणों और सज्जनों के साथ सभा में बैठते हैं, वशिष्ठ जी वेद और पुराणों की कथाएं वर्णित करते हैं और श्रीराम जी सुनते हैं, यद्यपि वे सब जानते हैं[2]। अयोध्या निवासियों के घर-घर में पुराणों और अनेक प्रकार के पवित्र राम चरित्रों की कथा होती है[3]। सनकादि मुनि जब अयोध्या में राम-दर्शन के लिए आए तो श्रीराम ने उनका बहुत प्रकार से स्वागत करते हुए कहा कि आज उनका जन्म सफल हुआ। बड़े ही भाग्य से सत्संग की प्राप्ति होती है। संत का संग मोक्ष का और कामी का संग जन्म-मृत्यु के बंधन में डालने वाला है। सन्त, कवि और पण्डित तथा वेद-पुराण आदि सभी सद्ग्रन्थ ऐसा कहते हैं[4]।

सनकादि मुनि ब्रह्मलोक चले गए तो भरत ने श्रीराम से कहा कि यद्यपि वेद-पुराणों ने संतों की महिमा बहुत प्रकार से गाई है फिर भी वे सन्त और असंत के भेद को अलग-अलग रूप में सुनना चाहते हैं। श्रीराम ने उन्हें समझाते हुए कहा कि—सन्तों के गुण असंख्य हैं जो वेद और पुराणों में प्रसिद्ध हैं[5]।

कलियुग के प्रभाव का वर्णन करते हुए तुलसी लिखते हैं कि कलिकाल बड़ा दारुण है। उस में सभी नर-नारी पापों में लिप्त रहते हैं और वेद-पुराण का विरोध करते हैं। ब्राह्मण वेदों को वेचने वाले और राजा प्रजा के भक्षक होते हैं। वेद और पुराण की आज्ञा कोई नहीं मानता। शूद्र नाना प्रकार के जप, तप और व्रत करते हैं तथा व्यासगद्दी पर बैठ कर पुराण कहते हैं[6]। वेदसम्मत तथा वैराग्य और ज्ञान से युक्त जो हरि भक्ति का मार्ग है, मोहवश मनुष्य उस

---

1. अब जाना मैं अवध प्रभावा।
   निगमागम पुरान अस गावा।।
   कवनेहुं जन्म अवध बस जोई।
   राम परायन सो परि होई।। —रामचरितमानस : उत्तर काण्ड, ९६/३
2. वेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं।
   सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं।। —वही, उत्तर काण्ड, २५/१
3. सब के गृह गृह होहिं पुराना।
   राम चरित पावन बिधि नाना।। —वही, २५/४
4. संत संग अपवर्ग कर कामी भव कर पंथ।
   कहहिं संत कवि कोबिद श्रुति पुरान सद्ग्रन्थ।। —वही, ३३
5. संतन्ह कै महिमा रघुराई।
   बहु बिधि वेद पुरानन्ह गाई।। —वही, ३६/१
6. सूद्र करहिं जप तप व्रत नाना।
   बैठि बरासन कहहिं पुराना।। —वही, उत्तर काण्ड, ९९/५

पर नहीं चलते और अनेकों नए पंथों की कल्पना करते हैं[1]। धनी लोग नीच जाति के होने पर भी कुलीन माने जाते हैं। जो लोग बेदों और पुराणों को नहीं मानते, कलियुग में वे ही हरि के भक्त और सच्चे सन्त कहलाते हैं[2]।

तुलसी साहित्य में प्राप्त तुलसी द्वारा स्वयं कथित उपर्युक्त कथनों से यह स्पष्ट होता है कि तुलसीदास प्रमुख और प्रधान रूप से पुराण साहित्य से प्रभावित थे। यद्यपि उन्होंने पुराणों के साथ वेद का भी वार-बार उल्लेख किया है, परन्तु इससे उनका तात्पर्य वेद और पुराण की अभिन्नता ही प्रतीत होता है, क्योंकि पुराण में वेदार्थ की व्याख्या की गई है। जो वेदार्थ को पूर्ण करता है, वह पुराण कहलाता है। लोक में यह तथ्य सामान्य रूप से स्वीकृत है कि जिस के द्वारा किसी वस्तु को पूर्ण किया जाता है, उन दोनों में एकरसता, अभेदत्व रहता है। यदि स्वर्ण के किसी अपूर्ण अलंकार को पूर्ण करना हो तो उसे स्वर्ण के द्वारा ही पूरा किया जाएगा, लोहे या अन्य धातु से नहीं, क्योंकि स्वर्ण और लोहा दो अलग-अलग जाति के पदार्थ हैं। वेद और पुराण की अभिन्नता के सम्बन्ध में भी यही सिद्धान्त स्वीकार किया गया है[3]। स्वयं वेद और पुराण साहित्य में ऐसे अनेक प्रसंग मिलते हैं, जिसमें पुराण स्वयं को वेद के समान मानता है। 'स्कन्द पुराण' के पुराणोत्पत्ति प्रसंग में कहा गया है कि सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा जी ने कठोर तपस्या की, जिसके फलस्वरूप वेदों का आविर्भाव हुआ। उसके पश्चात् सर्वशास्त्रमय पुराण का भी आविर्भाव हुआ जो नित्यशब्दमय, पुण्य प्रदान करने वाला और विस्तार में सौ करोड़ श्लोकों वाला था। यह पुराण भी वेद के समान ही ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुआ[4]। 'भागवत पुराण' में उल्लेख है कि ऋक्, यजु साम तथा अथर्ववेद

---

1. श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ संजुत विरति विवेक।
   तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक ।। —रामचरितमानस :
   उत्तरकाण्ड, १०० ख
2. नहिं मान पुरान न बेदहिं जो।
   हरि सेवक संत सही कलि सो ।। —वही, १००/४
3. इतिहास पुराणभ्यां वेदं समुप वृंहयेत्। इति पुराणात्—
   पुराणमिति चान्यत्र। न चावेदेन वेदस्य बृंहणं संभवति,
   न हि अपूर्णस्य कनकवलयस्य त्रपुणा पूरणं युज्यते ।।
   —भागवत सन्दर्भ, पृ० १७, कलकत्ता सस्करण
4. यदा तपश्चचारोग्रममराणां पितामहः।
   आविर्भूतास्ततो वेदाः सषडंग पद क्रमाः ।।
   ततः पुराणमखिलं सर्वशास्त्रमयं ध्रुवम्।
   नित्यं शब्दमयं पुण्यं शत कोटि प्रविस्तरम् ।।
   निर्गतं ब्रह्मणो वक्त्रात् ... ... ।। —स्कन्दपुराण : प्रभासखण्ड,

ब्रह्मा के पूर्वादि मुखों से क्रमशः उत्पन्न हुए। ब्रह्मा ने पंचमवेद रूप—इतिहास पुराण को अपने चारों मुखों से उत्पन्न किया। यहां इतिहास-पुराण के लिए स्पष्ट रूप से 'वेद' शब्द का प्रयोग किया गया है[1]।

पुराण वेद रूप हैं। इस तथ्य का समर्थन 'वृहदारण्यक उपनिषद्' में भी किया गया है। इसमें वेद के समान इतिहास और पुराण को भी ब्रह्मा का निश्वास बताया गया है[2]। 'शतपथ ब्राह्मण' में लिखा है—पुराण वेद है, यह वही वेद है, ऐसा कह कर अध्वर्यु पुराण का कीर्तन किया करते हैं[3]। 'छांदोग्य उपनिषद्' में लिखा है—इतिहास और पुराण वेद-समूह का पंचम वेद है[4]। 'अथर्वसंहिता' के मत में 'यज्ञ के उच्छिष्ट से यजुर्वेद के साथ ऋक्, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुए[5]। इससे स्पष्ट होता है कि वेद और पुराण में समानता है। दोनों ही अनादि हैं। दोनों ही प्रति कल्प में आविर्भूत होते हैं। कई अर्थों में पुराण वेद से भी बढ़ कर हैं, क्योंकि जो बात वेदों में उपलब्ध नहीं होती, वह स्मृति में मिल जाती है, जो दोनों में नहीं मिलती, उसका वर्णन पुराणों में मिल जाता है[6]। शिव पार्वती से कहते हैं कि 'मैं वेदार्थ की अपेक्षा पुराणार्थ को अधिक मानता हूं। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि पुराण में वेद अच्छी तरह से प्रतिष्ठित हैं[7]'।

नाना पुराण के साथ तुलसी ने निगमागम और श्रुति शब्द का भी अनेक बार प्रयोग किया है। वेदों से लेकर निबन्ध ग्रन्थों तक की परम्परा को निगम कहते हैं। इन ग्रन्थों में वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौतसूत्र,स्मार्त्तसूत्र दर्शन और स्मृति आदि की गणना की जाती है। निगम की परम्परा भगवान्

---

1. इतिहास पुराणानि पंचमं वेदमीश्वरः।
   सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः॥ —भागवत पुराण : ३/१२/३९
2. एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निः श्वसितमेतद् यद्
   ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहास पुराणम्।
   —वृहदारण्यक : २/४/१०
3. अध्वर्यु स्ताश्ये वै पश्यसो राजेत्याह ... ... पुराणं वेदः -
   सोऽयमिति किंचित् पुराणमाचक्षीत्। शतपथ : १३/४/३/१३
4. इतिहास पुराणं पंचमं वेदानां वेदम्। छान्दोग्य : ३०/७/१/१
5. ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह। —अथर्ववेद : ११/७/२४
6. यन्न दृष्ट हि वेदेषु तत्सर्वं लक्ष्यते स्मृतौ।
   उभयोर्यन्न दृष्ट हि तत्पुराणैः प्रगीयते॥
7. वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने।
   वेदाः प्रतिष्ठताः सम्यक पुराणे नात्र संशयः॥ —नारद पुराण : २/२४/१६-१७

नारायण से चलती है। इन सभी रचनाओं में कर्म, ज्ञान और उपासना—इन तीन विषयों का वर्णन हुआ है।

दूसरी परम्परा जो निगम के समान ही अनादि है, भगवान शंकर से चलती है। उसे 'आगम' कहा जाता है। इस परम्परा में मूलतत्व शिव एवं शक्ति माने जाते हैं। आगम के दो भाग हैं :

१. दक्षिणागम,

२. वामागम।

इन में से दक्षिणागम तो निगम से अभिन्न है। सनातन धर्म में निगम तथा आगम (दक्षिणागम) दोनों प्रमाण माने जाते हैं। श्रुतियों में ही इस दक्षिणागम का मूल है और पुराणों में विस्तारपूर्वक इसका वर्णन हुआ है। इस आगम-शास्त्र का विषय है 'उपासना'। देवता का स्वरूप गुण, कर्म, उनके मन्त्रों का उद्धार, यन्त्र ध्यान, पूजाविधि आदि का विवेचन आगम में होता है। 'नारदपांचरात्र,' शैवतन्त्र, शक्तितन्त्र आदि इस परम्परा के ग्रन्थ हैं।

निगम और आगम इन दोनों की परम्परा श्रुति से चलती है। श्रुति का अर्थ है 'वेद'। वेद और पुराण में अभेद है। स्वयं शिव का कथन है कि वेद-पुराणों में सम्यक रूप से प्रतिष्ठित हैं। यही कारण है कि तुलसी अपनी रचनाओं में किसी भी सत्य की स्थापना के समर्थन के लिए बार-बार पुराणों का आधार लेते हैं। इसका दूसरा कारण यह है कि तुलसी के साहित्य का मूल आधार पुराण-साहित्य है। तुलसी ने अपनी विभिन्न रचनाओं में जिन आख्यानों का विनियोग किया है, वे सब के सब पुराण-साहित्य से लिए गए हैं। पुराणों में वे आख्यान वेद से आए हैं। यद्यपि वेदों में आख्यानों का केवल सूत्र रूप में ही संकेत हुआ है, किन्तु कालान्तर में उनका स्पष्ट रूप शौनक के 'ब्रह्मदेवता', कात्यायन के 'वेदार्थ-दीपिका भाष्य' तथा सायण की 'ऋग्वेद की वेदार्थप्रकाश टीका' में दिखाई देता है। ऋग्वेद में ऋषियों तथा देवताओं की स्तुतियों के रूप में और दानशील राजाओं की प्रशंसा के रूप में कुछ आख्यानों के संकेत मिलते हैं। ऋषियों में विश्वामित्र, वशिष्ठ, गौतम तथा अगस्त्य आदि के आख्यान, देवताओं में वामन, उर्वशी, इन्द्र, मरूदगण आदि के आख्यान, राजाओं में सुदास, नहुष, ययाति आदि के आख्यान आते हैं। इन्हीं आख्यानों को हम तुलसी साहित्य में भी देखते हैं। ये आख्यान वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणग्रन्थों एवं उपनिषदों के मार्ग से अग्रसर होते हुए रामायणी विकास से समृद्ध होकर पुराण साहित्य में व्यापक रूप धारण कर लेते हैं। इस लम्बी यात्रा में इन आख्यानों में अनेक परिवर्तन और परिवर्धन स्वाभाविक हो जाते हैं, जिसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।

तुलसी का प्रमुख और प्रधान उद्देश्य श्रीराम के चरित्र का सांगोपांग वर्णन है। अन्य छोटे-बड़े आख्यानों का विनियोग इसी आधिकारिक आख्यान के सन्दर्भ में किया गया है। यद्यपि तुलसी, रामचरित वर्णन में मुख्यतः 'वाल्मीकि रामायण,' अध्यात्म रामायण आदि से प्रभावित हैं, किन्तु पुराण साहित्य में राम की जिन विशेषताओं का वर्णन उपलब्ध होता है, वह इन रचनाओं से भिन्न नहीं हैं।

पुराणों में रामकथा विष्णु के अवतारवाद से प्रभावित है। मार्कण्डेय पुराण, भविष्य पुराण, लिंग पुराण, वामन पुराण एवं मत्स्य पुराण को छोड़ कर शेष सभी पुराणों में रामकथा वर्णित है। ब्रह्माण्ड पुराण में रामकथा का उल्लेख चार बार हुआ है। पद्म पुराण के पाताल खण्ड में प्रथम अध्याय से लेकर अध्याय अडसठ तक रामकथा का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसी पुराण के अध्याय २६९–७१ में वालमीकि रामायण के सातों काण्डों का संक्षिप्त वर्णन है। विष्णु पुराण में रामजन्म से लेकर रावण-वध तक की कथा संक्षेप में वर्णित है। वायु पुराण में भी सीता-जन्म और राम के चरित्र का संक्षेप में उल्लेख है। शिव पुराण में एक स्थान पर राम के वनवास की कथा है तो दूसरे स्थान पर राम-चरित का संक्षिप्त वर्णन है। इसी पुराण में सती द्वारा राम की परीक्षा की कथा भी है। भागवत पुराण में राम रावण युद्ध की कथा तथा सीता के परित्याग की कथा है अग्नि पुराण में वालमीकि रामायण के सातों काण्डों का वर्णन किया गया है। नारदीय पुराण के पूर्वखण्ड तथा उत्तरखण्ड – दोनों में बालकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की घटनाओं का वर्णन हुआ है। ब्रह्मवैवर्तपुराण के प्रकृति खण्ड मे सीता का वर्णन, उस का रावण द्वारा हरण तथा श्रीकृष्णजन्म खण्ड में रामायण की कथा वर्णित है। वराह पुराण में राम के अवतार लेने का संकेत है। स्कन्द पुराण के सभी खण्डों में रामकथा का वर्णन मिलता है। कूर्म पुराण में राम के जन्म से लेकर रावण वध तक की समस्त कथा विस्तार से वर्णित है। गरुड़ पुराण में रामायण का संक्षेप में उल्लेख मिलता है।

इन पुराणों के अतिरिक्त विष्णुधर्मोत्तर पुराण, हरिवंश पुराण, नृसिंह पुराण और कालिका पुराण में भी श्रीराम का आख्यान कहीं अवतार के प्रसंग में तथा कहीं सूर्य वंश के वर्णन के प्रसंग में तथा दन्यत्र सम्प्रदाय विशेष के प्रभाव को प्रत्यक्ष करने के लिए वर्णित हुआ है।

यह तो हुई राम के आख्यान की बात। अन्य आख्यान भी किसी न किसी पुराण से लिए गए हैं। इस सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा अगले अध्याय में की गई है। यहां हम केवल उन्हीं आख्यानों की चर्चा करेंगे जो तुलसीदास

को अत्यन्त प्रिय थे और जिनका विनियोग उन्होंने बार-बार किया है। ये आख्यान हैं :

१. अजामिल
२. अम्बरीष
३. अहल्या
४. गज
५. गणिका
६. ध्रुव
७. नहुष
८. प्रहलाद
९. बलि
१०. वाल्मीकि
११. शबरी
१२. हरिश्चन्द्र
१३. द्रौपदी
१४. जटायु

इन आख्यानों में अजामिल का आख्यान भागवत पुराण में, अम्बरीष का शिव पुराण, भागवत और ब्रह्मवैवर्त पुराण में, अहल्या का ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण भागवत, ब्रह्मवैवर्त, लिंग पुराण और स्कन्द पुराण में है। गजमोक्ष आख्यान भागवत पुराण, पद्म पुराण और स्कन्द पुराण में है। गणिका आख्यान भागवत पुराण में तथा ध्रुव आख्यान विष्णु, भागवत, अग्नि, भविष्य एवं लिंग पुराण में प्राप्त होता है। नहुष आख्यान भागवत एवं ब्रह्मवैवर्त पुराण में है। प्रहलाद आख्यान विष्णु, पद्म, वायु, शिव, भागवत, अग्नि, लिंग और कूर्म पुराण में वर्णित है। बलि आख्यान नारदीय, अग्नि, स्कन्द, वामन, कूर्म तथा मत्स्य पुराण में है। वाल्मीकि आख्यान स्कन्द पुराण में तीन स्थानों पर प्राप्त होता है। हरिश्चन्द्र आख्यान ब्रह्म, भागवत, वायु और मार्कण्डेय पुराण में है। शबरी आख्यान पद्म पुराण में तथा जटायु आख्यान भागवत और अग्नि पुराण में उपलब्ध होता है।

ऊपर हमने जिन आख्यानों की चर्चा की है, इनमें भी कुछ तो ऐसे हैं जो कवि को अत्यन्त प्रिय प्रतीत होते हैं। 'मानस' में तो इन आख्यानों की चर्चा कवि ने सन्दर्भ की आवश्यकता के अनुसार की है तथा 'मानस' की समाप्ति पर भी एक छन्द में कवि गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गज आदि की चर्चा

करना नहीं भूलता[1]। अपनी दूसरी रचनाओं में, विशेषकर कवितावली, गीतावली, दोहावली और विनयपत्रिका में भी जब भी कवि को अवसर मिलता है, वह इन आख्यानों की चर्चा करने से नहीं चूकता। ये आख्यान हैं :

१. अहल्या
२. अजामिल
३. गज
४. गणिका
५. वाल्मीकि
६. शबरी
७. जटायु

इनमें अहल्या आख्यान की चर्चा २५ बार, अजामिल की १७ बार, गज की १८ बार, गणिका की १२ बार, वाल्मीकि की १५ बार, शबरी की २२ बार और जटायु की चर्चा ३६ बार की गई है।

तुलसी साहित्य में अन्य जितने भी पौराणिक आख्यान उपलब्ध होते हैं, उन का विनियोग कवि ने या तो श्रीराम के आख्यान की प्रासंगिक कथाओं के रूप में किया है अथवा उनका उद्देश्य किसी न किसी धार्मिक, नैतिक अथवा आध्यात्मिक सत्य की अभिव्यंजना करना है। उपर्युक्त कुछ आख्यान ऐसे हैं जिन का विनियोग कवि पुनः पुनः अपनी बात के समर्थन तथा अपनी भक्ति भावना के स्पष्टीकरण के लिए करता है।

ऊपर हमने तुलसी साहित्य में प्राप्त अन्तः साक्ष्य के आधार पर जो विवेचन प्रस्तुत किया है, उस से हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि तुलसी साहित्य का मूल आधार पुराण साहित्य है। यदि तुलसी की रचनाओं से हम पौरणिक तत्वों को पृथक् कर दें तो उनका महत्व बहुत कम हो जाता है। तुलसी ने स्वयं स्वीकार किया है कि वे व्यास आदि से प्रभावित थे[2]। व्यास पुराणों के कर्ता थे, इस दृष्टि से भी तुलसी पुराण साहित्य से प्रभावित हुए प्रतीत होते हैं[3]।

---

1. पाई न केहि गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
   गनिका अजामिल व्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
   आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
   कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥
   —रामचरितमानस : उत्तर काण्ड, १२९/छन्द १

2. व्यास आदि कवि पुंगव नाना।
   जिन सादर हरि सुजस बखाना॥ —वही, बालकाण्ड, १३/१

3. अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवती सुतः।
   पश्चात् भारतमाख्यानं चक्रे समुपवृंहितम्॥ —मत्स्य पुराण ५३/६९
   स्कन्द पुराण : प्रभासखण्ड, ७/९२

तृतीय अध्याय

तुलसी-साहित्य में प्रयुक्त पौराणिक आख्यानों का संक्षिप्त परिचय

तृतीय अध्याय

प्रस्तुत अध्याय में तुलसी साहित्य में विनियुक्त उन पौराणिक आख्यानों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है जो हमारे अध्ययन का विषय है। संक्षिप्त शब्द से हमारा तात्पर्य, उन आख्यानों की मूल भावना से है, जिसे दृष्टि में रख कर कवि ने उन का विनियोग किया है। पुराणों में साम्प्रदायिक प्रभाव के कारण एक आख्यान अनेक प्रकार से वर्णित हुआ है। कहीं एक घटना विभिन्न पुराणों में भिन्न भिन्न रूप में वर्णित है और कहीं कहीं एक ही पुराण में एक घटना से संबन्धित दो प्रकार के आख्यान मिलते हैं। उदाहरण के लिए वामन पुराण में कामदहन के प्रसंग में दारूवन में शिव के नग्न होकर घूमने और ऋषियों के शाप देने का वर्णन दो स्थानों पर, दो प्रकार से किया गया है[1]।

प्रहलाद का आख्यान जो लोकप्रियता की दृष्टि से अपना विशेष स्थान रखता है, पुराणों में भिन्न भिन्न रूप से वर्णित हुआ है। विष्णु पुराण के अनुसार हिरण्यकश्यप ने अन्त में प्रहलाद के सब अपराध क्षमा कर दिए थे और वह भी अपने पिता की सेवा करने लगा था[2]। अग्नि पुराण[3] और मत्स्य पुराण[4] के अनुसार देवताओं के दुःख दूर करने के लिए ही विष्णु ने नृसिह रूप धारण कर हिरण्यकश्यप का वध किया था। प्रहलाद के कारण यहां दैत्य-वध का उल्लेख नहीं है। इस सम्बन्ध में एक और प्रसंग भी उल्लेख्य है। जब विष्णु नृसिह रूप धारण करके हिरण्यकश्यप की पुरी में उससे लड़ने गए तो वहां नृसिह से हिरण्यकश्यप के चारों पुत्रों—प्रहलाद, अनुहलाद, सहलाद और

---

1. वामन पुराण : अ० ६ और ४४
2. विष्णु पुराण : अंश १, अ० १७-२०
3. अग्नि पुराण : अ० ५
4. मत्स्य पुराण अ० १६१ ६३

ह्लाद का युद्ध हुआ। नृसिंह ने युद्ध में जब उन सब की दुर्दशा कर दी, तो अपने पुत्रों को व्यथित जान कर हिरण्यकश्यप स्वयं युद्ध के लिए उद्यत हुआ। इसी समय प्रह्लाद नृसिंह को भगवान जानकर युद्ध से हट गया और उसने अपने भाईयों तथा पिता को भी युद्ध से विरत करने की चेष्टा की। उसके पिता ने उसकी प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया, वह नृसिंह से लड़ता ही रहा और अन्त में मारा गया।

स्पष्ट है कि इन प्रसंगों में तुलसी ने जिस भावना से प्रह्लाद के आख्यान का चित्रण किया है, उसकी गन्ध भी नहीं मिलती।

ये आख्यान हमने तुलसी के सम्पूर्ण साहित्य से एकत्रित किए हैं। परन्तु कुछ रचनाएं ऐसी हैं, जिन में कोई भी पौराणिक आख्यान उपलब्ध नहीं होता। 'वैराग्य संदीपनी', 'रामलला नहछू' और 'रामाज्ञाप्रश्न' ऐसी ही रचनाएं हैं। इन रचनाओं की विषय वस्तु की योजना ही कुछ ऐसी है कि उनमें किसी प्रकार के आख्यान के लिए कोई अवकाश नहीं है। 'गीतावली', 'कवितावली', 'बरवै रामायण', 'पार्वती मंगल' और 'जानकी मंगल' में अनेक ऐसे आख्यान हैं, जिनका उपयोग अपेक्षाकृत मानस में अधिक विस्तृत रूप में हुआ है। 'दोहावली' में कुछ आख्यानों के संकेत हैं। इस प्रकार 'रामचरित-मानस' 'विनय पत्रिका' और 'कृष्णगीतावली' ही ऐसी रचनाएं हैं, जो आख्यानों की दृष्टि से समृद्ध हैं। इनमें भी 'रामचरितमानस' का विशेष स्थान है। यद्यपि हमने तुलसी की प्रायः सभी रचनाओं से आख्यान लिए हैं किन्तु उनकी अत्याधिक संख्या उपर्युक्त तीनों रचनाओं से सम्बन्ध रखती है। संख्या की दृष्टि से यह विभाजन इस प्रकार है :

१. रामचरितमानस	५५
२. विनय पत्रिका	२०
३. दोहावली	७
४. कृष्णगीतावली	५
५. गीतावली	२
६. पार्वती मंगल	३
७. जानकी मंगल	१

तुलसी की रचनाओं में जिन आख्यानों की पुनरावृत्ति हुई है, उन का विवरण इस प्रकार है :

गीतावली

१. अहल्या
२. शबरी

३. जटायु

बरवै रामायण

१. वाल्मीकि
२. अगस्त्य
३. अहल्या
४. तुलसी

जानकी मंगल

१. अहल्या
२. इन्द्र
३. नहुष
४. अगस्त्य

इसी प्रकार 'कवितावली' में भी 'मानस' में वर्णित आख्यानों की ही चर्चा हुई है। इस पुनरुक्ति को ध्यान में रखते हुए, हमने इन रचनाओं में प्राप्त आख्यानों का वर्णन 'मानस' में प्राप्त आख्यानों के अन्तर्गत किया है।

यद्यपि तुलसी का प्रमुख और प्रधान उद्देश्य 'स्वान्त: सुखाय' अथवा 'स्वान्त: तम: शान्तये' रामचरित का वर्णन करना था, परन्तु युग के प्रभाव से उन्होंने कृष्णकाव्य भी लिखा। 'कृष्णगीतावली' में उन्होंने कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित अत्यन्त लोकप्रिय और विख्यात् घटनाओं को काव्यवद्ध किया। इन घटनाओं में गोपी उपालम्भ, उलूखल बंधन, इन्द्रकोप, गोवर्धन धारण, गोपीविरह, द्रौपदी लाजरक्षण आदि विशेष हैं। 'विनयपत्रिका' में भी तुलसी ने कृष्ण से सम्बन्धित अनेक घटनाओं की चर्चा की है, जिन में यमलार्जुन उद्धार, सत्यभामा और पारिजात, पूतना वध, कालिय बंधन, कुब्जा पर कृपा, वाणासुर, सुदामा और शिशुपाल सम्बन्धी घटनाएं विशेष हैं। 'दोहावली' में भी श्रीकृष्ण का दूतत्व, कर्ण की दानशीलता एवं श्रीकृष्ण की मणिचोरी आदि आख्यान इसी प्रकार के हैं। इसके अतिरिक्त 'दोहावली' में कुछ ऐसे आख्यानों के भी संकेत हैं जो न तो राम के चरित से सम्बन्ध रखते हैं और न श्रीकृष्ण के। इस प्रकार इन सभी आख्यानों को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं :

१. राम सम्बन्धी आख्यान,
२. कृष्ण सम्बन्धी आख्यान,
३. सामान्य आख्यान।

इन सभी आख्यानों का प्रमुख आधार 'पुराण साहित्य' है। आदि काव्य 'वाल्मीकि रामायण', 'महाभारत' एवं अध्यात्म रामायण' में भी अनेक आख्या-

नों के प्रसंग मिले हैं। यद्यपि इन आख्यानों की संख्या विपुल है, परन्तु हमने केवल उन्हीं आख्यानों को लिया है, जिनका तुलसी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है तथा जो कवि की भक्ति भावना और उद्देश्य को स्पष्ट करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए हैं। इसके साथ ही आख्यानों की लोकप्रियता, परवर्ती साहित्य में उनका विकास और जनमानस पर उनकी प्रतिक्रिया को भी दृष्टि में रखा गया है।

तुलसी के अनुसार 'रामकथा मंगल करनि कलिमल हरनि' है। इसका उद्देश्य राम के धर्ममय वृत्त का आधार लेकर सनातन वैदिक धर्म की व्याख्या करना है। धार्मिक साहित्य में पुराण साहित्य का प्रमुख स्थान है। दया, क्षमा, उदारता, परोपकार, सज्जनता, आपत्तियों को सहन करना, वीरता, धीरता, धर्मनिष्ठा, सत्य का पालन आदि धर्म के अंगों और उपांगों का इसमें विस्तृत वर्णन हुआ है। स्वार्थ त्याग करके दूसरों की भलाई में जीवन बिताने की, परिवार के प्रति कर्तव्यशील रहते हुए भी त्यागमय जीवन व्यतीत करने की, अधम से अधम दशा को पहुंच कर भी अपनी साधन शक्ति से पुनः उच्च पद पर आसीन होने की जैसी क्षमता भरी प्रेरणाएं पौराणिक आख्यानों से मिलती हैं, वैसी अन्यत्र दुर्लभ हैं। पौराणिक आख्यानों से प्रेरना ग्रहण करके असंख्य व्यक्ति अपने जीवन को दूसरों के लिए विसर्जित करते रहे हैं। उदाहरण के लिए सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के आख्यान को लिया जा सकता हैं। इस आख्यान के अतिरंजित और अतिशयोक्तिपूर्ण होने में मतभेद हो सकता है, परन्तु इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इस आख्यान से असंख्य व्यक्ति सत्य बोलने का उपदेश ग्रहण कर चुके हैं और अनेक व्यावहारिक रूप में भी उसे अपने जीवन में अपना चुके हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने 'अपनी आत्मकथा' में लिखा है कि बचपन में सत्यवादी हरिश्चन्द्र का नाटक देख कर, उन के हृदय पर कितना अधिक प्रभाव पड़ा था और किस प्रकार वे राजा हरिश्चन्द्र के सत्य का व्रत पालन करने के कार्यों से अभिभूत हुए थे और बाद में विशेष कर ब्रिटिश राज के विरोध में चलाए गए स्वाधीनता आंदोलन के दिनों में, यह आख्यान उन्हें अपने कर्तव्य पथ पर अडिग रहने की प्रेरणा देता रहा। गांधी जी लिखते हैं :

"पिता जी की आज्ञा से मैंने हरिश्चन्द्र नामक नाटक देखा। इस नाटक ने मेरे हृदय को अभिभूत कर दिया। मैं चाहता था कि इस नाटक को बार बार देखूं। हरिश्चन्द्र की तरह बनने की भावना मुझ में जागृत होने लगी और यह विचार बार बार मन में जागृत होने लगा कि सब लोग हरिश्चन्द्र की तरह सत्यवादी क्यों नहीं बन जाते। यह प्रश्न अनेक बार मैंने

अपने आप से किया। सत्य के मार्ग पर चलते समय दृढ़तापूर्वक अनेक अग्नि परीक्षाओं में से गुजरना जैसे हरिश्चन्द्र गुजरा था, मेरे लिए एक आदर्श बन गया[1]।"

श्रवण कुमार के आख्यान से प्रभावित होने की चर्चा करते हुए गांधी जी ने फिर लिखा है :

"आम तौर पर स्कूल की पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें पढ़ने का मुझे शौक नहीं था। पर एक दिन अकस्मात् पिता जी द्वारा लाई गई एक पुस्तक मेरे हाथ लगी। इस पुस्तक का नाम था 'श्रवण पितृभक्ति नाटक'। मैंने उसे बड़े ध्यान और चाव से पढ़ा। उन्हीं दिनों हमारे शहर में नगर-नगर घूम कर तमाशा करने वाली नाटक मण्डली आई। उसके द्वारा अभिनीत श्रवणकुमार नाटक में वह दृष्य भी था जिस में श्रवण अपने माता पिता को वहंगो में डाल कर तीर्थ यात्रा के लिए ले जाता हुआ दिखाया गया था। इस पुस्तक और नाटक के इस दृष्य का मेरे मन पर अमिट प्रभाव पड़ा। यह तुम्हारे लिए अनुकरण योग्य उदाहरण है। मैंने अपने आप से कहा[2]।"

इसी प्रकार द्रौपदी की लाज रक्षा के आख्यान ने असंख्य नारियों में भगवान की शरणागत रक्षकता में विश्वास उत्पन्न किया होगा। शबरी अजामिल और वाल्मीकि अदि सामान्य व्यक्तियों के आख्यानों ने सामान्य जनता में भगवान की दीनबन्धुता के प्रति आस्था जागृत की होगी। प्रहलाद के आख्यान ने विकट से विकट परिस्थिति में भी अन्याय और अत्या-चार के सामने आत्म-समर्पण न करने का जो संदेश दिया है, उसे कौन भूल सकता है। राम के आख्यान से तो गांधी जी इतने अधिक प्रभावित हुए थे कि स्वाधीनता के बाद उन्हों ने भारत में रामराज्य जैसे शासन की कल्पना की थी। कृष्ण से सम्बन्धित आख्यानो का प्रभाव आज भारत में ही नहीं अमरीका जैसे भौतिकवादी देश में भी देखा जा सकता है, जहां 'हरे रामा हरे कृष्णा' जैसी धार्मिक संस्थाएं जन्म ले चुकी हैं।

भगवान राम की शरणागत रक्षा, श्रीकृष्ण का न्यायपक्ष का समर्थन, हनुमान की स्वामिभक्ति, कर्ण की दानशीलता, दधीचि का आत्मत्याग आदि अनेक पौराणिक आख्यानों ने आम जनता को चरित्र-निर्माण, नैतिकता का पालन, समाज और देश की सेवा, स्वार्थत्याग, परोपकार आदि की शिक्षा प्रदान की है। ये आख्यान मानव के सम्मुख ऐसे उच्च आदर्श प्रस्तुत करते रहे हैं

1. गान्धी जी, आत्मकथा : पृ० ४
2. वही० पृ० ४

जिनके प्रभाव से उसे पवित्र और उच्च जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा प्राप्त होती रही है।

अपने साहित्य में तुलसी ने भी उपर्युक्त दृष्टिकोण से प्रत्येक आख्यान को धर्म, सदाचार, नीति, अध्यात्म, गृहधर्म, कुलधर्म, समाजधर्म आदि का पुट देकर लोकशिक्षा का माध्यम बनाने की चेष्टा की है। उन्होंने किस उद्देश्य से किस आख्यान का विनियोग किया और उनमें अभिव्यक्त उनकी जीवन दृष्टि की मूल प्रेरणा क्या है ? इस का वर्णन करने से पूर्व इन आख्यानों का संक्षिप्त परिचय सर्वथा समीचीन होगा।

अगस्त्य आख्यान

वाल्मीक नारद घट जोनी।
निज निज मुखनि कही निज होनी ।।

—रामचरितमानस : बाल काण्ड, ३/३

अगस्त्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा गया है कि वे एक घड़े से उत्पन्न हुए थे। वशिष्ठ इनके भाई थे तथा उनका जन्म भी इन्हीं के साथ हुआ था। उर्वशी नामक अप्सरा को देख कर मित्र और वरुण का वीर्य स्खलित हो गया। यह वीर्य घड़े में तथा पृथ्वी पर गिरा। घड़े में गिरे हुए वीर्य के भाग से अगस्त्य का जन्म हुआ।

भविष्य पुराण में वर्णित कथा के अनुसार जब मित्र और वरुण मन्दराचल पर्वत पर दीर्घकाल तक तपस्या करते रहे तो देवराज इन्द्र को उन के प्रति आशंका हुई। वे विचलित हो उठे। उन्होंने स्वर्गलोक की अनिंद्य सुन्दरी उर्वशी नामक अप्सरा को आदेश दिया कि वह अपने सौंदर्य के प्रभाव से उन मुनियों के तप में विघ्न उपस्थित करे। इन्द्र की आज्ञा से उर्वशी मन्दराचल पर्वत पर पहुंची। उसके हाव-भाव और सौंदर्य से दोनों मुनि इतने अधिक कामपीड़ित हो गए कि उन दोनों का वीर्य स्खलित हो गया। उन्होंने वीर्य को उठाकर समीपस्थ कुम्भ में स्थापित कर दिया। उसी कुम्भ से अगस्त्य का जन्म हुआ। इसी कारण उन्हें घटयोनि भी कहा जाता है।

विष्णु पुराण में यद्यपि अगस्त्य का नाम संकेत नहीं है पर कथा में विशेष अन्तर नहीं। इस में वर्णित प्रसंग के अनुसार राजा निमि के शाप से वशिष्ठ मित्र और वरुण के वीर्य में प्रविष्ट हुए थे और उर्वशी के दर्शन से मित्र और वरुण का वीर्य स्खलित होने पर उसीसे उन्हों ने दूसरा देह धारण किया।

वाल्मीकि रामायण में अगस्त्य मुनि की महिमा का वर्णन किया गया है। अपने वनवास के दिनों में राम सीता और लक्ष्मण के साथ अगस्त्य के आश्रम गए थे। अगस्त्य ने श्रद्धापूर्वक श्रीराम को विष्णु का धनुष प्रदान किया था। विभिन्न पुराणों में प्राप्त अगस्त्य आख्यान में थोड़ा बहुत अन्तर है।

---

1. वाल्मीकि रामायण : उत्तर काण्ड, सर्ग ५५–५६
2. पद्म पुराण, : सृष्टि खण्ड, अ० २२
3. विष्णु पुराण : अंश ४, अ० ५
4. भविष्य पुराण : उत्तर भाग, अ० १०६
· मत्स्यपुराण : अ० ६१

अगस्त्य द्वारा समुद्र शोषण का आख्यान

वाल्मीक नारद घट जोनी।
निज निज मुखनि कही निज होनी।।

—रामचरितमानस : बालकाण्ड, ३/३

अगस्त्य मित्रावरुण के पुत्र थे। पुराण साहित्य में भगवान के विभिन्न अवतारों द्वारा ही नहीं, ऋषि-मुनियों द्वारा भी लोक-सेवा तथा लोक-कल्याण के अनेक विवरण प्राप्त होते हैं। असुरों द्वारा पीड़ित होने पर देवगण सहायता के लिए ऋषि-मुनियों की शरण में आते रहे हैं।

अगस्त्य बड़े तेजस्वी, शक्तिशाली और परोपकारी प्रकृति के स्वामी थे। उन्हों ने देवकार्य के लिए समुद्र तक को पी डाला था। इस सम्वन्ध में अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। जब दधीचि ऋषि की अस्थियों से निर्मित वज्र से देवताओं का महाशत्रु वृत्रासुर इन्द्र द्वारा मार दिया गया तो उसके अनुयायी तारक, कालिकेय आदि असुर समुद्र में जाकर छिप गए। वे निर्भय होकर तपस्वियों को मारने लगे। वशिष्ठ, च्यवन, भारद्वाज के आश्रमों में उन्होंने बहुत से ऋषियों को मार दिया। विष्णु के निर्देश पर देवताओं ने अगस्त्य से प्रार्थना की। अगस्त्य ने तीन आचमन से समुद्र का जल पी कर पचा लिया। जल रहित सागर में देवों ने असुरों का संहार कर दिया।

एक अन्य कथा के अनुसार इन्द्र की आज्ञा से अग्नि और पवन ने अनेक दानवों को जलाया तो कमलाक्ष, परावसु आदि दैत्य समुद्र में जा छिपे। इन्द्र ने अग्नि और मरुत को समुद्र का जल सुखाने की आज्ञा दी। वे न माने तो इन्द्र ने दोनों को मृत्यु-लोक में जा कर अगस्त्य रूप होने का शाप दिया। अगस्त्य ने तप से समुद्र शोषण की शक्ति प्राप्त कर, समुद्र पी डाला।

अगस्त्य द्वारा विशोषिणी देवी की आराधना से शक्ति प्राप्त कर, समुद्र पान की कथा भी है, परन्तु उद्देश्य सब का एक है।

---

1. महाभारत : वनपर्व, अ० १०५
2. पद्मपुराण : सृष्टि खण्ड, अ० १९
3. भविष्य पुराण, उत्तरार्ध, अ० १०६
4. स्कन्द पुराण : नागर खण्ड, अ० ३३-३५
5. मत्स्य पुराण : अ० ६१

अगस्त्य-विन्ध्याचल आख्यान

कुसमऊ देखि सनेहु संभारा।
बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा ॥

—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, २९७/२

एक बार विन्ध्याचल पर्वत ने जब यह देखा कि सूर्यदेव प्रति दिन सुमेरू पर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं तो उसने भी सूर्यदेव से अपनी प्रदक्षिणा करने को कहा। सूर्य के इनकार करने पर विन्ध्याचल बड़ा क्रोधित हुआ और उसने सूर्य के मार्ग को रोक देने का निश्चय करके अपने आकार को बढ़ाना आरंभ कर दिया। बढ़ते बढ़ते वह इतना विशाल हो गया कि उसने सूर्य का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। जब आकाश में सूर्य की गति रुक गई तो सर्वत्र हाहाकार मच गया। परस्पर परामर्श करने के बाद देवता अगस्त्य मुनि की शरण में गए और उनसे इस विपत्ति से मुक्ति प्रदान करने को प्रार्थना की। अगस्त्य ने देवताओं को आश्वासन दिया और स्वयं बिन्ध्याचल की ओर यात्रा पर निकल पड़े। जब विन्ध्याचल के पास पहुंचे तो उसने ऋषि को झुक कर प्रणाम किया। ऋषि ने विन्ध्याचल को आर्शीवाद के साथ-साथ यह आदेश भी दिया कि वे जब तक अपनी यात्रा समाप्त करके वापिस नहीं आते विन्ध्याचल को उसी स्थिति में रहना होगा। यह आदेश देकर अगस्त्य चले गए और फिर लौट कर नहीं आए।

दो अन्य प्रसंगों में नारद द्वारा मेरु की प्रशंसा सुनकर कि सूर्य उसकी परिक्रमा करता है, विन्ध्याचल को ईर्ष्या हुई और उसमें सूर्य की गति रोकने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसने शिव की आराधना करके विस्तार की अपार शक्ति प्राप्त की और सूर्य के मार्ग को रोकने लगा। तब देवताओं के अनुरोध पर अगस्त्य ने विन्ध्याचल को नमित किया।

एक अन्य प्रसंग के अनुसार विन्ध्याचल द्वारा सूर्य का मार्ग रोकने पर सूर्य ने वृद्ध व्यक्ति के वेष में अगस्त्य से दान में विन्ध्य की वृद्धि रोकने को कहा।

---

1. महाभारत : वनपर्व, अ० १०४
2. पद्म पुराण : सृष्टिखण्ड, अ० १९
3. शिव पुराण : कोटिरुद्र संहिता, अ० १८
4. भविष्य पुराण : उत्तरार्द्ध, अ० १०६
5. स्कन्द पुराण : काशीखण्ड, अ० १-५
6. वामन पुराण : अ० १८
7. ब्रह्म पुराण : अ० १२८

अगस्त्य द्वारा समुद्रपान का आख्यान

सब मल-विछोहनि जानि मूरति जनक कौतुक देखहू ।
धनु सिंधु नृप-बल-जल बढ़यो रघुबरहिं कुंभज लेखहू ।।
—जानकी मंगल : पद १०८

इस सम्बन्ध में दो प्रसंग मिलते हैं। पहला प्रसंग यह है कि तारक, कालिकेय तथा दूसरे असुर जब संसार में बहुत अत्याचार करते थे और जब देवता विष्णु अथवा अन्य शक्तिशाली देवता के नेतृत्व में उन पर आक्रमण करते तो वे समुद्र में जा कर छिप जाते। देवताओं के पास जब उनके विनाश का कोई उपाय न रहा, तो वे अगस्त्य की शरण में गए। देवताओं के आग्रह पर अगस्त्य समुद्र को अंजलि में भर कर पी गए एवं देवता असुरों का संहार करने में समर्थ हुए। तदुपरान्त अगस्त्य ने लघुशंका द्वारा समुद्र के जल को बाहर निकाल दिया।

लोकमान्यता के अनुसार समुद्र टिट्टिभ के अण्डों को बहा ले गया था। उसके आग्रह पर अगस्त्य समुद्र का पान कर गए थे। अण्डे लौटाने पर ही उसे मुक्त किया था।

अन्यत्र प्रसंग है कि अगस्त्य समुद्र तट पर पूजामग्न थे। समुद्र अपनी चंचल लहरों से उनकी पूजा सामग्री बहा ले गया। जब ऋषि ध्यान मुक्त हुए तो उन्हें समुद्र की धृष्टता पर बड़ा रोष हुआ। क्रोध की अवस्था में ही उन्हों ने आचमन द्वारा समुद्र को पी डाला। समुद्र की समाप्ति पर देवता बड़े व्याकुल हुए क्योंकि सृष्टि संचालन के लिए समुद्र की स्थिति भी आवश्यक थी। सभी देवता मिल कर ऋषि की शरण में गए, प्रार्थना की तो उन्होंने लघुशंका करके समुद्र का जल बाहर निकाल दिया। कहते हैं इसी कारण से समुद्र का जल खारा हो गया।

तपोबल की दृष्टि से अगस्त्य असाधारण मुनियों की श्रेणी में आते हैं। इन्हों ने सागर शोषण ही नहीं किया, विन्ध्याचल को ही नमित नहीं किया, श्रीराम को वैष्णव धनु, ब्रह्मदत्त शर, अक्षय तूणीर और खड़ग ही नहीं दिया था, अपितु इल्वल और वातापि जैसे असुरों का भी संहार किया था।

---

1. महाभारत : वनपर्व, अ० १०५
2. पद्म पुराण : सृष्टिखण्ड, अ० १९, १६५-७५
3. भविष्य पुराण : उत्तरार्ध, अ० १०६
4. स्कन्द पुराण : नागरखण्ड, अ० ३५

अजामिल अखयान

जपतु अजामिल गज गनिकाऊ।
भये मुकुत हरिनाम प्रभाऊ॥

—रामचरितमानस : बाल काण्ड, २६/७

कन्नौज नामक नगर में अजामिल नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह बड़ा विद्वान्, माता-पिता का आज्ञाकारी और भगवान का भक्त था। एक बार किसी काम से वह जंगल में गया जहां उसकी भेंट एक रूपवती वेश्या से हुई। वेश्या के रूपसौंदर्य और बातचीत के ढंग से वह इतना प्रभावित हुआ कि उस पर आसक्त हो गया तथा उसे अपनी पत्नी बना लिया।

समाज में उसके इस शास्त्र विरोधी कृत्य का प्रबल विरोध हुआ। उस की निन्दा की गई। सम्बन्धिओं और दूसरे परिजनों ने उस का सामाजिक बहिष्कार कर दिया, पर अजामिल अपने पारिवारिक जीवन से संतुष्ट था। कालक्रम से वेश्या ने दस पुत्रों को जन्म दिया। सब से छोटे पुत्र का नाम नारायण था जो अजामिल की आंखों का तारा था।

समय पाकर अजामिल वृद्ध हुआ। पर नारायण के प्रति उसकी ममता भी बढ़ती गई। और एक दिन अचानक मृत्युकाल आने पर जब यमराज के दूत उसे लेने आए तो उन्हें देख कर, भय के मारे, वह अपने पुत्र नारायण को बारम्बार पुकारने लगा। 'नारायण' 'नारायण' शब्द के उच्चारण को सुनकर भगवान विष्णु के पार्षद वहां उपस्थित हो गए और उन्होंने अजामिल के सूक्ष्म शरीर को ले जाते हुए यमदूतों को उसे मुक्त कर देने को कहा। यमदूतों और विष्णु के पार्षदों में अजामिल को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया कि क्या वह नरक-लोक में जाने का अधिकारी है अथवा स्वर्ग-लोक में। विष्णुदूतों ने कहा कि 'नारायण' नाम पुकार कर अजामिल ने अपने कुकर्मों का प्रायश्चित्त कर लिया है। यमदूत लौट गए। मरणासन्न अजामिल यह सब देख और सुन रहा था। इस के बाद उस ने विरक्त बन कर भगवान की भक्ति करके अन्त में वैकुण्ठ प्राप्त किया।

---

1. भागवत : स्कन्द ६, अ०२-३
2. विश्राम सागर : अ० ८

अम्बरीष-दुर्वासा आख्यान

सुधि करि अम्बरीष दुरवासा।
भे सुर सुरपति निकट निरासा॥

—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, २१८/७

सूर्यवंशी राजा नाभाग के पुत्र राजा अम्बरीष बहुत बड़े धर्मात्मा और भक्त थे। राज्य में, रानियों में, पुत्रों में, तथा पुण्य कर्मों द्वारा अर्जित सम्पत्तियों में भी उनका मन क्षण भर के लिए भी नहीं रमता था। राजा अम्बरीष दिन-रात, सोते जागते हर समय प्रसन्नतापूर्वक भगवान श्रीकृष्ण का ध्यान किया करते थे। विष्णु सम्बन्धी व्रतों का पालन उनका नियम था। वे एकादशी का व्रत रखते और श्री हरि की आराधना में लीन रहते।

एक बार अत्रि के पुत्र दुर्वासा द्वादशी के दिन अपने शिष्यों सहित उनके यहां पहुंचे और राजा से कहा कि वे नदी में स्नान करने के बाद उनके भोजन करेंगे। वे तो ऋषियों के साथ स्नान करने चले गए। इधर द्वादशी तिथि समाप्त हो रही थी। कहीं व्रत का फल नष्ट न हो जाए, इस डर से राजा ने जल से पारण किया। तभी दुर्वासा आ गए और यह जान कर कि राजा ने अतिथियों को भोजन कराने से पहले ही जल ग्रहण कर लिया है, उसे भस्म करने को तैयार हो गए। भगवान ने अपने निरापराध भक्त की रक्षा के लिए सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी। चक्र को देख दुर्वासा प्राणरक्षा निमित्त ब्रह्मा और शिव के पास गए। विष्णु ने उन्हें अम्बरीष के पास जाने की सलाह दी। अम्बरीष को मुनि की दशा पर दया आई। उन्हों ने चक्र को शान्त किया और मुनि को भोजन करा कर विदा किया।

कहते हैं और्व मुनि की कन्या कन्दली को जो दुर्वासा की पत्नी थी—भस्म करने पर और्व ने दुर्वासा को शाप दिया था कि उसका अभिमान चूर होगा। अतः इन्हें अम्बरीष के आगे झुकना पड़ा।

दुर्वासा अत्यन्त क्रोधी स्वभाव के थे। इनके क्रोध से सम्बन्धित अनेक आख्यान पुराणों में उपलब्ध होते हैं।

---

1. महाभारत : अनुशासनपर्व, अ० ४७
2. शिव पुराण : शतरुद्रसंहिता, अ० १९
3. भागवत पुराण : स्कन्द ९, अ० ४-५
4. ब्रह्मवैवर्त पुराण : श्रीकृष्ण जन्मखण्ड, अ० २५, ५०

अन्धतापस आख्यान

तापस अन्ध साप सुधि आई।
कौसल्यहि सब कथा सुनाई ॥

—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, १५४/२

अयोध्या के निकट सरयू नदी के किनारे एक अंधा तपस्वी अपनी पत्नी और पुत्र के साथ रहता था। एक दिन सूर्यास्त के समय राजा दशरथ आखेट पर थे। ठीक उसी समय अंधतापस का पुत्र श्रवण, अपने माता-पिता के लिए नदी में जल भरने आया था। उसने घड़ा डुबोया तो उससे गड़-गड़ की ध्वनि हुई। अन्धेरे में राजा ने समझा कि कोई हाथी है। उन्हों ने वाण चलाया तो उन्हें किसी मानव की चीख सुनाई दी। वह वहां पहुंचे। एक ऋषिपुत्र को वाण लगा था। उसने दशरथ से अपना परिचय दिया और मर गया।

जब दशरथ श्रवण के कहने के अनुसार जल का घड़ा लेकर उसके अन्धे माता-पिता के पास पहुंचा और उनसे सब वृत्तांत कहा तथा क्षमा मांगी तो मुनि ने उसे कहा कि वह उन्हें बेटे के शव के पास ले चले। अपने बेटे के शव के पास पहुंच कर अन्धतापस और उस की पत्नी करुणाजनक विलाप करने लगे। उसके बिना उन्होंने अपने जीवन का अन्त करने का निश्चय कर लिया। पर इसके पहले उन्होंने दशरथ को शाप दिया कि जिस प्रकार वृद्ध होने पर उन दोनों को पुत्र वियोग में अपने जीवन का अन्त करना पड़ रहा है, उसी प्रकार वृद्धावस्था प्राप्त होने पर वह भी पुत्र के वियोग में प्राण त्याग करेगा।

समय अपनी गति से चलता रहा। राजा दशरथ प्रजारंजन और राज्य के अन्य कार्यों में इतने व्यस्त रहे कि उन्हें अन्धतापस के शाप की स्मृति भी न रही। अकस्मात् परिस्थितियों में ऐसा परिवर्तन हुआ कि दशरथ को उस शाप के प्रभाव के कारण राम के वियोग में प्राणत्याग करना पड़ा। कैकेयी द्वारा राम को वनवास का वर मांगने पर दशरथ को जब राम के वियोग की अनुभूति हुई तो उन्हें शाप की स्मृति हो आई थी।

---

1. ब्रह्म पुराण : ११३
2. अग्नि पुराण : अ० ६
3. वाल्मीकि रामायण :अयोध्या काण्ड, सर्ग ६३-६४

इन्द्र-अहल्या आख्यान

पूछा मुनि हि सिला प्रभु देखि।
सकल कथा मुनि कही विसेषी ।।

—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, २१०/१२

इस आख्यान का पुराणों में व्यापक वर्णन हुआ है। अहल्या महर्षि गौतम की अत्यन्त सुन्दर पत्नी थी। संसार में इससे सुन्दर ललना अन्य न थी। इन्द्र इसे आरम्भ में ही प्राप्त करना चाहता था, पर ब्रह्मा ने इसे गौतम को दे दिया। इस पर भी इन्द्र उसे भुला न सका। एक बार जब गौतम प्रातःकाल गंगा स्नान को गए, तो इन्द्र ने गौतम रूप धारण करके अहल्या से रमण किया। जब इन्द्र आश्रम से निकल रहा था तो गौतम आ गए। उन्होंने उसे सहस्रभग होने का शाप दिया और अहल्या को शिला होने का। बाद में अहल्या को निरपराध जान कर साठ हजार वर्ष बाद राम की चरणरज के स्पर्श से शापमुक्त होना बताथा।

शाप से प्रभावित सहस्रभग इन्द्र अत्यन्त लज्जित होकर, अपमानित अपराधी के रूप में जब गौतम की शरण में उपस्थित हुआ और शाप से मुक्ति का उपाय बताने की प्रार्थना की तो गौतम ने उसे साक्षात् भगवान सूर्य की आराधना का आदेश दिया। इन्द्र सहस्रभग होने के कारण जनता से छिप कर रहने लगे। अहल्या हजारों वर्षों तक शिला के रूप में पड़ी रही। अपने वनवास के दिनों में भगवान श्रीराम जब उस मार्ग से निकले तो उनके चरणों के स्पर्श से अहल्या मुक्त हुई। इन्द्र ने एक हजार वर्ष तक सूर्य की आराधना की और सूर्य की कृपा से भगचिन्हों को सहस्र नेत्रों में परिवर्तित कर लिया।

थोड़े बहुत भेद के साथ इस आख्यान की चर्चा पुराण साहित्य में अनेक बार हुई है।

---

1. महाभारत : शान्तिपर्व, अ० ३४२
2. ब्रह्म पुराण : अ० ८७
3. पद्म पुराण : सृष्टिखण्ड, अ० ५८
4. भागवत पुराण : स्कन्ध ९, अ० २१
5. ब्रह्मवैवर्त पुराण : श्रीकृष्णजन्म खण्ड, अ० ४७, ६१
6. लिंग पुराण : अ० २९
7. स्कन्द पुराण : नागरखण्ड, अ० २०७-२०८
   अवन्तीखण्ड, अ० १३६

कद्रू-विनता आख्यान

कद्रू विनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कोसिलां देव।

—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, १९

कद्रू और विनता दोनों ही दक्ष प्रजापति की पुत्रियां थीं। इन का विवाह कश्यप से हुआ था। विवाह के बाद विनता के अरुण और गरुड़ दो पुत्र हुए, जबकि कद्रू को संतान सर्प हुए। एक दिन दोनों बहनें धूप में बैठी हुई थीं कि अकस्मात् सूर्य के अश्वों के रंग को लेकर दोनों में विवाद हो गया। विनता ने कहा सूर्य के रथ में जुते हुए अश्वों का रंग श्वेत है परन्तु कद्रू का मत था अश्व काले रंग के हैं। विवाद की समाप्ति इस निर्णय पर हुई कि यदि अश्वों का रंग श्वेत हुआ तो कद्रू पांच सौ वर्ष तक विनता की दासी बनकर सेवा करेगी और यदि अश्वों का रंग काला हुआ तो विनता कद्रू की दासी बनेगी।

बाद में जब कद्रू को पता चला कि भगवान् सूर्य के सभी अश्व श्वेत रंग के हैं तो उसने विनता से छल करने का निश्चय करके अपने पुत्रों को आदेश दिया कि दूसरे दिन जब सूर्य आकाश मार्ग में आएं तो वे उनके अश्वों की पूंछ से लिपट जाएं ताकि उनका रंग काला दिखे और विनता को उसकी दासी बनना पड़े।

सर्पों के इन्कार करने पर कद्रू ने उन्हें शाप दिया कि जनमेजय के राज्य में उनका नाश होगा। बाद में कद्रू के पुत्र शाप से छूटने का उपाय जानने के लिए सूर्य के घोड़ों की पूंछ से लिपट गए।

कद्रू और विनता ने जब देखा तो उन्हें घोड़ों की पूंछ काली दिखाई दी। फलतः विनता को कद्रू की दासी बनना पड़ा। गरुड़ ने अपनी माता को दासत्व से मुक्ति दिलाई।

'मानस' में इस आख्यान द्वारा विनता को कद्रू द्वारा दासी रूप में दुःख देने का संकेत है।

---

1. महाभारत : आदिपर्व, अ० १६-३४
2. पद्मपुराण : सृष्टि खण्ड, अ० ४४
3. स्कन्द पुराण : ब्रह्म खण्ड, अ० ३८
4. वायु पुराण : अ० ६९

कैकेयी द्वारा दशरथ से दो वर प्राप्ति का आख्यान

दुइ बरदान भूप सन थाती। मांगहू आजु जुड़ावहु छाती ॥
सुतहि राजु रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू ॥

—रामचरितमानस :अयोध्या काण्ड, २१/३

राजा दशरथ एक बार देवासुर संग्राम में देवरक्षा के लिए गए। उन की प्रिय रानी कैकेयी भी उनके साथ थी। युद्ध के मध्य में उनके रथ के पहिए की धुरी टूट गई। कैकेई ने अपने पति की रक्षा के लिए, धुरी की जगह अपना हाथ डाल दिया। जब दशरथ असुरों का संहार कर चुके तो कैकेयी के पराक्रम पर प्रसन्न होकर उसे दो वर मांगने को कहा। कैकेयी ने आवश्यकता पड़ने पर वर मांगने की बात कह कर, न्यास रूप में उनके पास ही रहने दिए। इन्हीं दोनों वरदानों के कारण, भरत को राज्य मिला और राम को चौदह वर्ष का वनवास।

एक दूसरे प्रसंग में कहा गया है कि जब देवरक्षा के निमित्त राजा दशरथ असुरों के साथ होने वाले भीषण संग्राम में व्यस्त थे तो अकस्मात् उनके रथ के पहिए का एक कील निकल गया जिसके कारण पहिया रथ की धुरी से वाहर निकलने लगा। कैकेयी ने स्थिति की गंभीरता को समझा। उसने वीरता पूर्वक युद्ध करते हुए राजा को इस स्थिति से अवगत कराना उचित न समझा और अपने पति की सुरक्षा और युद्ध में विजय की कामना से विना किसी भय के अपनी अंगुली उस कील के स्थान पर डाल दी। परिणाम में राजा दशरथ असुर सेना को पराजित करने में समर्थ हुए। कैंकेयी के इसी पुरुषार्थ से प्रसन्न होकर राजा ने उसे दो वर दिए थे।

अन्यत्र लिखा है कि कैकेयी ने युद्ध में सारथी बनकर मूर्छित राजा को युद्ध भूमि से दूर हटा कर, उस की प्राण रक्षा की थी। कैकेयी को वर था कि समय पड़ने पर उसका बायां हाथ वज्रवत् कठोर हो जाएगा।

---

1. वाल्मीकि रामायण : अयोध्या काण्ड, सर्ग २
2. ब्रह्म पुराण : अ० २३
3. अग्नि पुराण : अ० ६

कालनेमि आख्यान

दसमुख कहा मरमु तेंहिं सुना।
पुनि पुनि कालनेमि सिरु धुना।।

—रामचरितमानस : लंका काण्ड, ५५/२

कालनेमि लंकापति रावण का मामा था। राम-रावण युद्ध में जब लक्ष्मण ने युद्ध में राक्षसों का विनाश करना आरम्भ किया तो मेघनाथ ने शक्ति का प्रहार करके लक्ष्मण को आहत कर दिया। लक्ष्मण मूर्छित हो गए। कोई अन्य उपाय न देख कर हनुमान रात के अंधेरे में लंका के प्रमुख वैद्य सुषेण को ले आए। उनके परामर्श पर गन्धमादन पर्वत पर प्राप्त होने वाली संजीवनी बूटी को लाने के लिए हनुमान को कहा गया।

जब रावण को यह समाचार मिला तो उस ने हनुमान को मार्ग में ही समाप्त करने का निश्चय करके कालनेमि को बुला कर उससे सहायता मांगी। रावण ने उसे प्रलोभन दिया कि यदि वह हनुमान को मार देने में सफल होगा तो वह उसे लंका का आधा राज्य प्रदान कर देगा। इस प्रलोभन से हनुमान का नाश करने के उद्देश्य से कालनेमि मार्ग में पहुंच गया।

गंधमादन पर्वत पर जाने वाले मार्ग पर एक अत्यन्त रमणीक भूभाग पर जिसके परिपार्श्व में स्वच्छ और शीतल जल से आपूर्ण सरोवर था, कालनेमि ने अपनी माया की शक्ति से तपस्या के योग्य एक आश्रम की रचना की और स्वयं मुनि का वेष धारण कर वहां बैठ गया। आश्रम की स्थिति और व्यवस्था को देख कर किसी को भी यह शंका नहीं हो सकती थी कि वह सब कुछ माया जनित था।

कुछ ही समय बाद गन्धमादन पर्वत पर जाते समय जब हनुमान की दृष्टि उस आश्रम पर पड़ी तो उन्होंने वहां पर विश्राम करने का निश्चय कर लिया। हनुमान आश्रम पर पहुंचे तो कालनेमि ने एक तपस्वी ऋषि की भांति उनका स्वागत सत्कार किया और गन्धमादन पर्वत की ओर यात्रा करने का उद्देश्य भी पूछा। कालनेमि ने हनुमान से आग्रह किया कि वे पार्श्ववर्ती सरोवर में स्नान करके आएं तबतक वह उनके जलपान अथवा भोजन का प्रबन्ध करता है।

कालनेमि के परामर्श पर स्नान करने के लिए ज्यों ही हनुमान सरोवर में उतरे, तभी उन को किसी जलजन्तु ने जकड़ लिया। हनुमान द्वारा मारी

जाने पर वह मकरी पूर्वजन्म में प्राप्त अभिशाप से मुक्त हो जाने पर एक दिव्य अप्सरा के रूप में परिणत हो गई।

उसने हनुमान को अपने पूर्वजन्म का इतिहास बताने के साथ-साथ यह भी बताया कि जिस व्यक्ति को वह साधु समझ रहा है, वह रावण का निकट सम्बन्धी एक राक्षस है और उसके विनाश के लिए ही वहां आया है।

कालनेमि का रहस्य जान लेने के बाद हनुमान ने उस का वध कर दिया।

---

1. अध्यात्म रामायण : युद्ध काण्ड, अ० ७
2. आनन्द रामायण : अ० ७१

गणेश के प्रथम पूज्यत्व का आख्यान

राम नाम को प्रभाउ पूजियत गनराउ ।

—विनयपत्रिका : पद २४७

एक बार देवताओं में इस प्रश्न पर विवाद हुआ कि हम सब में अग्रपूजा का अधिकारी कौन है । जब पारस्परिक विचार विमर्श से निर्णय न हो सका, तब देवता भगवान शंकर के पास गए और अपनी समस्या कही । भगवान शंकर यदि इस प्रश्न का सीधा उत्तर देते तो सम्भवतः किसी को अपनी योग्यता एवं शक्ति का अधिक मूल्यांकन करने के कारण, उन पर पक्षपात का दोष प्रतीत होता । ऐसे लोग उन के निर्णय से संतुष्ट न होते ।

कुछ देर सोच कर भगवान शंकर ने देवताओं से कहा—'आप सब लोग अपने अपने वाहनों पर यहां से एक साथ दौड़िए तथा पूरे विश्व की परिक्रमा करके मेरे पास लौट आइए । जो सब से पहले पहुंचेगा, वही अग्रपूजा का अधिकारी बन जाएगा' । यह सुन कर सभी देवता अपने अपने वाहनों पर विश्व की परिक्रमा करने दौड़ पड़े ।

गणेश का वाहन चूहा है । उन्हों ने सोचा—"ऐसे वाहन के बल पर प्रतियोगिता में सफलता प्राप्त करना असम्भव है, किन्तु भगवान शंकर परमात्मा हैं, विश्वात्मा हैं । सारा संसार उन्हीं का शरीर है । अतः भगवान शंकर की परिक्रमा कर लेने से ही विश्व की परिक्रमा हो जाएगी" । ऐसा सोचकर उन्हों ने अपने मूषक वाहन से भगवान शंकर की परिक्रमा करली और निश्चिन्त होकर बैठ गए ।

जब दूसरे देवता लौटे तो भगवान शंकर के निर्णय से गणेश को अग्रपूजा का अधिकारी मान लिया गया ।

अन्यत्र लिखा है कि देवों ने एक बार अमृत से तैयार किया गया मोदक पार्वती को दिया । स्कन्द और गणेश दोंनों इसे मांगने लगे । तब पार्वती ने शर्त रखी कि उन दोनों में धर्माचरण के द्वारा श्रेष्ठता प्राप्त करके, जो पहले उन के पास आएगा, उसे ही मोदक मिलेगा । स्कन्द तो तीर्थ यात्रा पर चले गए, पर गणेश ने माता-पिता की प्रदक्षिणा कर, धर्म कमा लिया । माता-पिता ने गणेश को मोदक के साथ-साथ अग्रपूजित होने का वर भी दिया ।

एक अन्य कथा के अनुसार ब्रह्मा के कहने पर प्रथम पूज्यत्व का निर्णय करने जब देवता त्रिलोकी की परिक्रमा करने गए तो गणेश का वाहन चूहा

सब से पीछे रह गया। नारद के कहने पर गणेश ने राम नाम को पृथ्वी पर लिखकर, उसकी परिक्रमा कर ली। इस पर ब्रह्मा ने उन्हें प्रथम पूजा का अधिकारी घोषित किया।

एक दूसरे प्रसंग के अनुसार जया और विजया सखियों के कहने से शिव-गणों की देखादेखी पार्वती ने भी अपना एक गण उत्पन्न करने का विचार किया। उन्होंने अपने शरीर के मल से एक पराक्रमी पुरुष बनाया और उसे अपना पुत्र मान कर उसे द्वारपाल के कार्य पर नियुक्त किया। एक दिन जब पार्वती स्नान कर रही थी तो शिव अन्दर जाने लगे। गणेश ने उन्हें रोका तो शिव ने अपने गणों से उन्हें द्वार से हटाने की आज्ञा दी। गणेश ने उन सब को मार भगाया। ब्रह्मा गणेश को समझाने गए तो गणेश उन्हें भी मारने को तैंयार हो गए। परिणाम् स्वरूप देवताओं से गणेश का युद्ध होने लगा।

युद्ध का समाचार सुनकर पार्वती ने पुत्र की सहायता के लिए शक्तियों को भेजा। इसी बीच शिव ने त्रिशूल से गणेश का सिर काट दिया। इस पर हजारों शक्तियों ने देवताओं का संहार करना आरम्भ कर दिया। जब देवों ने संहार रोकने की प्रार्थना की तो पार्वती ने कहा कि जब तक उनका पुत्र जीवित नहीं हो जाता और देवताओं में पूज्य नहीं माना जाता संहार नहीं रुकेगा। शिव ने हाथी का सिर लगा कर गणेश को जीवित करके उन्हें सर्व-पूज्य और प्रथमपूज्य होने का वर दिया।

---

1. पद्म पुराण : सृष्टि खण्ड, अ० ६१
2. मानस पीयूष
3. शिव पुराण : रुद्रसंहिता, कुमार खण्ड, अ० १३-१८
4. ब्रह्मवैवर्त पुराण : गणेश खण्ड, अ० १-१३
   श्रीकृष्णजन्म खण्ड, अ० १२२

गंगावतरण आख्यान

जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी।

—रामचरितमानस : बाल काण्ड, १८/२

अयोध्या के राजा सगर की केशिनी और सुमति नामक दो रानियां थीं। राजा संतान हीन था। अतः उसने पुत्र प्राप्ति के लिए हिमालय पर घोर तप किया। इस से उसे केशिनी से असमंजस नामक पुत्र प्राप्त हुआ तथा सुमति के सात हजार पुत्रों का एक तुम्वा उत्पन्न हुआ, जिसमें से कुछ कालोपरान्त सब बालक निकले। असमंजस बड़ा होकर बर्बर हो गया। बच्चों को पकड़-पकड़ कर सरयू में फेंक देता था। राजा सगर ने उसे देश निकाला दे दिया और असमंजस के पुत्र अंशुमान को आशा का केंद्र बनाया। सगर ने अश्वमेघ यज्ञ करने का निश्चय करके यज्ञीय घोड़ा छोड़ा। अंशुमान घोड़े की रखवाली पर था। इन्द्र उस घोड़े को हर ले गया और रसातल में कपिल मुनि के पीछे बांध आया। सगर के साठ हजार पुत्रों ने रसातल को खोद कर देखा कि घोड़ा कपिल मुनि के पीछे बंधा है। इन्होंने मुनि को चोर-चोर कह कर पकड़ लिया। इस से कपिल मुनि ने क्रोध से हुंकार किया और उन सब को भस्म कर दिया। अंशुमान उन्हे खोजता हुआ वहां पहुंचा। उसे गरुड़ ने बताया कि वे गंगाजल से तरेंगे। अंशुमान ने घोड़ा लाया। सगर का यज्ञ सम्पूर्ण हुआ। सगर के बाद अंशुमान, फिर दलीप और फिर भगीरथ राजा हुआ। भगीरथ ने तप से ब्रह्मा एवं शिव को प्रसन्न कर गंगा को पृथ्वी पर लाकर अपने पितरों का उद्धार किया।

अन्यत्र लिखा है कि जब वामन ने ब्रह्माण्ड को नापने के लिए अपना दूसरा चरण आकाश की ओर बढ़ाया तो ब्रह्मलोक में ब्रह्मा ने उनके चरण को धोया। उस चरणोदक को ब्रह्मा ने कमण्डल में रखा। वहीं से गंगा की उत्पत्ति हुई। इस गंगोदक को ब्रह्मा ने भगीरथ पर प्रसन्न होकर लोकमंगल के लिए कमण्डलु से बाहर निकाला जिसे शिव ने धारण किया और बाद में वह वहां से पृथ्वी पर बहा।

---

1. वाल्मीकि रामायण : बालकाण्ड, सर्ग ३५
2. विष्णु पुराण : अंश ३, अ० ८
3. वायु पुराण : अ० ४७
4. भागवत पुराण : स्कन्द ५, अ० १७
5. स्कन्द पुराण : नागर खण्ड, अ० २४
6. ब्रह्म पुराण : अ० ६
7. ब्रह्मवैवर्त पुराण : प्रकृति खण्ड, अ० ६-७

गजमोक्ष आख्यान

जपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ।
भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ।।

—रामचरितमानस : बाल काण्ड, २५/४

राजा इन्द्रद्युम्न शाप से गज हो गया। क्षीर सागर में त्रिकूट पर्वत पर वर्तमान एक विशाल सरोवर में यह गज हथिनियों के साथ जल-क्रीड़ा किया करता था। एक दिन एक ग्राह ने जल में इसका पैर पकड़ लिया। यह ग्राह वास्तव में शापग्रस्त हूहा नामक गन्धर्व था। दोनों का हजार वर्ष तक संग्राम होता रहा। अन्त में शिथिल होकर, गज ने भगवान से अपनी रक्षा की प्रार्थना की। उस की करुण दशा पर कृपा कर के भगवान ने उसे मुक्ति दिलाई।

यह दोनों, गज और ग्राह, अपने अपने पूर्वजन्म में कृत अपकर्मों के कारण उस रूप को प्राप्त हुए थे। राजा इन्द्रद्युम्न मद के कारण महर्षि अगस्त्य द्वारा अभिशप्त होकर गजरूप में जन्मा था जबकि ग्राह हूहा नामक गन्धर्व था जिसे देवल मुनि ने ग्राह हो जाने का शाप दिया था। राजा को शाप से मुक्ति भगवान विष्णु द्वारा बताई गई थी, अतः जब ग्राह ने उसे पकड़ लिया तो उस ने अपनी रक्षा के लिए भगवान से विनति की।

अन्यत्र प्रसंग है कि तृणविन्दु की कन्या देवहूति ने महर्षि अर्दम की दृष्टि मात्र के सान्निध्य से, जय और विजय नामक दो पुत्र उत्पन्न किए थे। ये बड़े विष्णु भक्त थे। एक बार राजा मरूध ने जय-विजय से यज्ञ कराया। राजा से धन लेकर दोनों आश्रम पर आए। धन का विभाग करते समय दोनों में झगड़ा हो गया। जय ने विजय को कहा—"तुम ग्रहण करके देते नहीं हो, अतः ग्राह हो जाओ"। विजय ने कहा—"तुमने मद से भ्रान्त होकर शाप दिया है। अतः गज हो जाओ"। बाद में दोनों को विवेक हुआ। भगवान से शाप निवृत्ति की प्रार्थना की। भगवान ने शापमुक्ति का आश्वासन दिया। अन्त में विष्णु ने ही इन दोनों को इस योनि से मुक्त किया।

---

1. भागवत पुराण : स्कन्ध ८, अ० २-४
2. पद्म पुराण : उत्तर खण्ड, अ० १३२
3. स्कन्द पुराण : वैष्णव खण्ड, अ० २८

गणिका आख्यान

जपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ।
भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥

—रामचरितमानस : बाल काण्ड, २५/४

मिथिला नगरी में पिंगला नाम की एक वेश्या थी जिसे अपने रूप और यौवन पर बहुत गर्व था। नगर के बड़े बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति उसकी अनुकम्पा प्राप्त करने को लालायित रहते थे। उसके पास ग्राहकों का तांता लगा रहता था जिस के कारण उसके मन में अहंकार की भावना बढ़ती गई। एक दिन इस स्थिति में अकस्मात् ऐसा परिवर्तन हुआ जिसने उसके जीवन की धारा को ही बदल दिया।

एक दिन श्रृंगार आदि कर के प्रतिदिन की तरह वह ग्राहकों की प्रतीक्षा में बैठी, तो बैठी ही रही। प्रतीक्षा करते करते वह थक गई। आधी रात तक प्रतीक्षा करने पर भी जब कोई न आया तो निराशा की स्थिति में वह इतनी व्याकुल हो गई कि उसके मन में संसार के प्रति विरक्ति की भावना जागृत होने लगी। उसे अपने आप से तथा अपने कर्म से घृणा होने लगी। उस ने सोने से पहले भगवान विष्णु का ध्यान किया। इस घटना के उपरान्त वह भगवान विष्णु की भक्ति की ओर उन्मुख हो गई और भक्ति के प्रभाव से मुक्ति लाभ किया।

एक अन्य आख्यान जीवन्ती नामक वेश्या से सम्बन्धित है। सतयुग में परशु नामक वैश्य था जो युवावस्था में ही दिवंगत हुआ। उसकी मृत्यु के पश्चात्, उसकी पत्नी जीवन्ती, वेश्या बन गई। वह सन्तानहीन थी। अतः उसने एक तोता खरीदा और उसका पुत्रवत् पालन करने लगी। वह उसे प्रतिदिन राम राम पढ़ाया करती। इस से दोनों के पाप नष्ट हो गए। मरने पर उन्हें यमदूत लेने आए तो विष्णु के पार्षदों ने उन्हें भगा दिया। यमदूतों ने धर्मराज से शिकायत की तो उन्हों ने कहा कि राम-नाम के स्मरण से वे पापमुक्त हो चुके हैं। इस प्रकार वेश्या और शुक दोनों विष्णु लोक को प्राप्त हुए।

---

1. महाभारत : शान्तिपर्व, अ० १७३
2. पद्म पुराण : क्रियायोग खण्ड, अ० १५
3. भागवत पुराण : स्कन्ध ११, अ० ८

गालव आख्यान

हठबस सब संकट सहे गालब नहुष नरेश।

—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, ६१

गालव विश्वामित्र के शिष्य थे। एक बार धर्मराज ने वशिष्ठ का रूप धारण कर विश्वामित्र से भोजन मांगा। वे जब भोजन बनाने लगे धर्मराज ने दूसरे तपस्वियों के यहां भोजन कर लिया। जब विश्वामित्र भोजन लेकर आए तो धर्म ने कहा कि वे भोजन तो कर चुके हैं, पर विश्वामित्र वहीं पर खड़े रहे। विश्वामित्र सिर पर भोजन का पात्र लिए सौ वर्ष तक खड़े रहे। धर्म ने प्रसन्न होकर विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि की उपाधि प्रदान की और चला गया।

जब विश्वामित्र भोजन का पात्र लेकर खड़े थे तब उनके शिष्य गालव ने उनकी बड़ी सेवा की। अतः उन्होंने उसे यथारुचि कहीं भी जाने को स्वतन्त्र कर दिया। गालव ने जब गुरुदक्षिणा देने का हठ किया तो विश्वामित्र ने उससे आठ सौ श्यामवर्ण घोड़े मांगे।

यह सुनकर गालव अवाक् रह गया। उसे अपनी हठवादिता पर पश्चाताप होने लगा पर गुरुदक्षिणा तो चुकानी ही थी, अतः उसने गरुड़ को प्रसन्न कर उनसे सहायता की याचना की। गरुड़ उसे राजा ययाति के पास ले गए। ययाति के पास घोड़े तो नहीं थे, किन्तु उन्होंने गालव को अपनी माधवी नामक कन्या प्रदान करते हुए कहा कि जो उसे दो सौ श्यामवर्ण घोड़े दे उसे माधवी में एक पुत्र उत्पन्न करने दिया जाए। इस प्रकार करने से गुरुदक्षिणा चुकाई जा सकती है।

गालव माधवी को ले कर हर्यश्व नामक राजा के पास गया। अपनी बात कही। राजा ने माधवी में एक पुत्र उत्पन्न किया और उसके बदले में दो सौ श्यामकर्ण घोड़े गालव को दिए। इसी प्रकार राजा दिवोदास और राजा उशीनर से भी दो दो सौ घोड़े प्राप्त किए। शेष दो सौ घोड़े प्रदान करने वाला कोई राजा न मिला। अन्त में गालव ने माधवी और घोड़े गुरु को अर्पित किए। विश्वामित्र ने माधवी से एक पुत्र उत्पन्न किया और गालव को मुक्त कर दिया।

---

1. महाभारत : उद्योग पर्व, अ० १०६-११९

चन्द्रमा द्वारा गुरुपत्नी तारा के हरण का आख्यान

ससि गुर तिय गामी नहुष चढ़ेउ भूमिसुर जान।

—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, २२८

अत्रि पुत्र चन्द्रमा ने एक बार गुरुपत्नी तारा का हरण करके उससे भोग किया। वृहस्पति द्वारा मांगने पर भी उसने तारा को नहीं लौटाया। युद्ध के डर से चन्द्रमा ने शुक्राचार्य की शरण ली। वृहस्पति की ओर से शिव युद्धभूमि में आए। घोर युद्ध होने लगा। इस स्थिति में ब्रह्मा ने मध्यस्थता करके, तारा वृस्हपति को दिला दी। चन्द्रमा के घर रहने से तारा को जो गर्भ हुआ, उस से उत्पन्न पुत्र का नाम बुध रखा और चन्द्रमा उसे अपने धर ले गया।

अन्यत्र लिखा है कि विद्यासमाप्ति पर गुरुपूजा में क्या क्या भेंट किया जाता है, इसकी जानकारी के लिए वृहस्पति ने चन्द्रमा को घर के अन्दर तारा से विचार-विमर्श करने भेजा, जहां वह उस पर आसक्त हो गया। वृहस्पति की प्रार्थना पर, शुक्राचार्य को शाप देकर तारा को वापस करवाया और देवों के परामर्श से तारा को गौतमी गंगा में स्नान कराया, जिससे वह पापमुक्त हो गई।

एक दूसरे प्रसंग के अनुसार एक बार तारा गंगातट पर स्नान कर रही थी तो चन्द्रमा उसके नग्न सौन्दर्य को देख कर उस पर आसक्त हो गया। उसने तारा से प्रणय निवेदन करके उससे सहवास की भीख मांगी। तारा ने उसे बहुत समझाया कि वह उसके गुरु की पत्नी होने के कारण उसकी माता के समान है। माता के साथ कुकर्म कर के उसे असीम आपत्तियों और लोकन्निदा का भाजन बनना पड़ेगा। कामातुर चन्द्रमा पर तारा की इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह बलपूर्वक तारा से भोग करने को तत्पर हो गया।

इस स्थिति में तारा ने चन्द्रमा को शाप दिया कि वह कलंकी, यक्ष्मा से पीड़ित तथा राहु से ग्रस्त होगा।

1, ब्रह्म पुराण : अ० १००, १५२
2. पद्म पुराण : सृष्टि खण्ड, अ० १२, उत्तर खण्ड, अ० २११
3. विष्णु पुराण : अंश ४: अ० ६
4. भागवत पुराण : स्कन्द ९, अ० १४
5, अग्नि पुराण : अ९ २७
6. ब्रह्मवैवर्त पुराण : प्रकृति खण्ड, अ० ५९-६१, कृष्णजन्म खण्ड, ८०-८१

चन्द्रमा को दक्ष के शाप का आख्यान

घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई।
ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई॥
—रामचरितमानस : बाल काण्ड, २३७/१

दक्ष की नक्षत्र नाम की २७ कन्याएं चन्द्रमा से विवाहित थीं, पर सभी पत्नियों में चन्द्रमा रोहिणी को ही अधिक प्यार करता था। दूसरी कन्याओं की शिकायत पर दक्ष ने चन्द्रमा को वहुत समझाया कि उसे सभी पत्नियों से समान प्रेम रखना चाहिए, पर दक्ष ने कोई ध्यान नहीं दिया। इस पर दक्ष ने राजयक्ष्मा की सृष्टि की, जिसने चन्द्रमा के शरीर में प्रवेश करके उसे कान्तिहीन वना दिया। चन्द्रमा के क्षयग्रस्त होने पर मनुष्य, पशु, समस्त वनस्पतियां और औषधियां सूखने लगीं, तो देवों ने दक्ष से चन्द्रमा को नीरोग करने की प्रार्थना की। दक्ष ने कहा कि यदि चन्द्रमा सभी पत्नियों पर समान प्रेम रखे और शिव की आराधना कर, सरस्वती के उत्तम तीर्थों में नहाए तो वह ठीक हो सकता है। पर शाप के कारण उसे १५ दिन क्षय होना ही पड़ेगा। बाद के १५ दिनों में वह वृद्धि प्राप्त करेगा।

अन्यत्र प्रसंग है कि दक्ष द्वारा अभिशप्त होने पर जव चन्द्रमा क्षय को प्राप्त होने लगा तो उस ने ब्रह्मा की शरण ली और शाप से मुक्ति का उपाय पूछा। ब्रह्मा ने चन्द्रमा को वतायां कि यदि वह प्रभास क्षेत्र में भगवान शिव की आराघना करे तो उसका कल्याण हो सकता है। चन्द्रमा ने प्रभास क्षेत्र में जाकर शिव का अर्चन किया। शिव ने प्रसन्न होकर वरदान दिया कि आगे से चन्द्रमा १५ दिनों में अवश्यमेव वृद्धि को प्राप्त होगा।

विभिन्न पुराणों के कथा प्रसंगों में यद्यपि थोड़ा बहुत अन्तर है, परन्तु १५ दिन क्षय और १५ दिन वृद्धि पाने की कथा सर्वत्र समानरूप से वर्णित है। कहीं तो गौतम ऋषि के शाप से चन्द्रमा का कलंकी होना लिखा है और कहीं वृहस्पति की पत्नी तारा के शाप से, परन्तु मूल उद्देश्य सभी आख्यानों का एक है।

---

1. महाभारत : शल्यपर्व, अ० ३६
2. शिव पुराण : कोटिरुद्र संहिता, अ० २४
3. भविष्य पुराण उत्तरार्द्ध, अ० ८८
4. वराह पुराण : अ० ३५
5. स्कन्द पुराण : रेवा खण्ड, अ० ८५, प्रभास खण्ड, अ० २०, नागर खण्ड अ० ३०

चन्द्रमा-राहु आख्यान

जनि जल्पसि जड़ जन्तु कपि सठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु॥

—रामचरितमानस : लंकाकाण्ड, २२ (क)

एक वार भगवान शंकर के अंशावतार श्रीदुर्वासा ऋषि पृथिवीतल में विचर रहे थे। मार्ग में उन्होंने एक विद्याधरी के हाथों में संतानक पुष्पों की एक दिव्य माला देखी। उनके द्वारा मांगने पर विधाधरी ने आदरपूर्वक वह माला उन्हें देदी। माला को गले में डालकर दुर्वासा वैकुण्ठ की ओर चले। मार्ग में ऐरावत पर सवार इन्द्र मिला। दुर्वासा ने माला इन्द्र को दी तो उस ने मस्ती में वह माला अपने हाथी के मस्तक पर डाल दी। उस मदमत्त हाथी ने माला की गंध से आकर्षित होकर, उसे सूंड से सूंघ कर पृथ्वी पर फेंक दिया।

इन्द्र के इस प्रकार के आचरण से दुर्वासा ने अपने आप को अपमानित समझा और इन्द्र को श्रीहीन होने का शाप दे दिया। इन्द्र ने तुरन्त ऐरावत से उतर कर क्षमा मांगी पर दुर्वासा अपने शाप पर अडिग रहे। शाप के प्रभाव से सभी दैवी सम्पत्तियां समुद्र में लीन हो गई।

इस स्थिति में विष्णु ने पुनः ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए देवों को समुद्र मन्थन का परामर्श दिया। देवों ने दैत्यों के सहयोग से समुद्र मन्थन किया तो उस से कामधेनु, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, धनवन्तरि, अप्सराएं, लक्ष्मी, विष, अमृत आदि पदार्थ निकले। इन सब पर देवता अधिकार करते गए।

देवताओं का यह व्यवहार देखकर दैत्यों ने धनवन्तरि से अमृत का कलश छीन लिया। विष्णु ने मोहिनी रूप धारण कर उन से कलश प्राप्त किया और देवताओं को पंक्ति में बैठा कर अमृत पिलाने लगे। राहु भी देव रूप धारण कर देवों की पंक्ति में आ बैठा। सूर्य और चन्द्रमा ने यह भेद विष्णु को बताया तो विष्णु ने चक्र से राहु का सिर काट दिया, पर राहु अमृत पान कर अमर हो चुका था। इसी शिकायत का बदला लेने के लिए वह सूर्य और चन्द्रमा का ग्रहण करता है।

---

1. पद्म पुराण उत्तर खण्ड, अ० २५९-२६०
2. ब्रह्म पुराण : अ० ८-१०
3. ब्रह्मवैवर्त पुराण : प्रकृति खण्ड, अ० ३६
4. विष्णु पुराण : अंश १, अ० ९
5. महाभारत : आदि पर्व, अ० ११-१९

राजा चित्रकेतु का आख्यान

चित्रकेतु कर घरु उण घाला।
कनककसिपु कर पुनि अस हाला ।।

—रामचरितमानस : बाल काण्ड, ७८

चित्रकेतु शूरसेन देश का चक्रवर्ती राजा था। उसे संसार के सभी वैभव प्राप्त थे परन्तु विवाह के कई वर्ष बाद भी वह निस्संतान ही था। मंत्रियों के परामर्श पर राज्य को उत्तराधिकारी देने की इच्छा से उसने कई विवाह किए पर मनोरथ सफल न हुआ। एक दिन अंगिरा ऋषि से भेंट हुई तो राजा ने उन से अपने मन की बात कही। ऋषि ने बताया कि यज्ञ के अनुष्ठान द्वारा संतान की प्राप्ति संभव है।

राजा की प्रार्थना पर अंगिरा ऋषि ही यज्ञ के अध्वर्यु बने और उन्होंने यज्ञ की समाप्ति पर राजा की पटरानी को चरू खिलाया। अंगिरा द्वारा चित्रसेन को विश्वास दिलाए जाने पर कि उसकी रानी अवश्यमेव पुत्ररत्न को जन्म देगी, राजा चित्रसेन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने ऋषि से जानना चाहा कि होने वाली संतान माता-पिता, राज्य और जनता के लिए कैसी होगी। इस प्रश्न पर अंगिरा ऋषि कुछ देर सोचते रहे और उस के बाद नपातुला उत्तर देते हुए कहा कि राजकुमार हर्ष और शोक दोनों प्रदान करने वाला होगा।

इस के बाद राजा पुत्रवती रानी से अधिक प्रेम रखने लगा, जिससे अन्य रानियों ने ईर्ष्यावश राजकुमार को विष दे दिया। यह देखकर राजा शोक से पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसी समय नारद व अंगिरा ऋषि वहां आए। उन्हों-ने संसार की अनित्यता राजा को समझाई। नारद ने सब के सामने मृत कुमार की जीवात्मा को बुला कर, अपने माता-पिता को सुखी करने को कहा, तो जीवात्मा कुमार के शरीर में प्रवेश करके बोली कि संसार में कोई किसी का सम्बन्धी नहीं। सब स्वार्थ के साथी हैं।

यह सुन कर चित्रसेन का अज्ञान जाता रहा। रानियों ने भी प्रायश्चित किया। नारद ने राजा को संकर्षण मन्त्र दिया, जिससे राजा ने भगवान शेष को प्रसन्न किया और विद्याधर बन गया। बाद में शिव का उपहास करने से इसी राजा को पार्वती ने शाप दिया था, जिससे वह अन्य जन्म में वृत्रासुर नाम से उत्पन्न हुआ।

भागवत पुराण : स्कन्ध ६, अ० १४-१७

जलंधर दैत्य आख्यान

छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह॥

—राचरितमानस : बाल काण्ड, १२३

एक बार जब कई वर्षों तक असुरों ने देवताओं पर आक्रमण नहीं किया तो इन्द्र को अपनी शक्ति और ऐश्वर्य पर अहंकार हो गया। अहं की इसी भावना में एक दिन इन्द्र ने भगवान शिव से कहा कि वह उनके समान पराक्रमी वीर योधा से संग्राम करना चाहता है। इन्द्र की इस गर्वोक्ति पर भगवान् शिव मन ही मन मुस्काए और फिर इन्द्र का अहंकार मिटाने की इच्छा से उन्होंने अपने तेज से एक बच्चे की रचना कर उसे समुद्रतट पर छोड़ दिया। उस तेज ने शिशुरूप में आते ही इतने भयानक और घनघोर शब्द से रुदन किया कि उससे सारी दिशाएं गूंज उठीं।

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा स्वयं वस्तुस्थिति जानने की इच्छा से समुद्र के तट पर पहुंचे। उस घोर शब्द को बच्चे का रूदन जानकर उन्होंने उस बच्चे को गोद में उठा लिया और उसे प्यार करने लगे। खेल ही खेल में बच्चे ने उन की दाड़ी पकड़ ली। बहुत प्रयास करने पर भी दाड़ी न छुड़ा सके तब पास खड़े समुद्र ने बच्चे को बहुत गुदगुदाया और उसे हंसा कर ब्रह्मा जी की दाड़ी छुड़वाई। ब्रह्मा जी को यह बच्चा समुद्रतट पर मिला था अतः उसका नाम जलंधर रखा।

अन्यत्र लिखा है कि इन्द्र के गर्व से शिव के तीसरे नेत्र से अग्नि निकल इन्द्र को भस्म करने दौड़ी तो वृहस्पति ने इन्द्र की प्राणरक्षा के लिए शिव की स्तुति की। प्रसन्न हो कर शिव ने उस अग्नि को समुद्र में फैंक दिया। वहीं एक शिशु ने जन्म लिया, जिस के रोने की भयानक ध्वनि के कारण ब्रह्मा वहां पहुंचे। उस बच्चे को गोद में उठाया तो उसने दाड़ी इतने जोर से खींची कि उनकी आंखों में आंसू आ गए। ब्रह्मा ने कहा कि उस बच्चे ने उनके नेत्रों के जल को सर्वप्रथम धारण किया था, अतः उसका नाम जलंधर होगा। ब्रह्मा के वर से वह तत्काल युवा और शास्त्रनिष्णात हो गया तथा इसके साथ ही ब्रह्मा ने उसे शिव के सिवा सभी को परास्त करने का वर भी दिया।

समुद्र ने इसके नगर के निर्माण के लिए भूमि दी और मय नामक असुर ने उसके लिए महानगरी का निर्माण किया। समुद्र ने इसका राज्याभिषेक किया और कालनेमि की कन्या वृन्दा से इसका विवाह कर दिया। इसके

वाद जलंधर देवताओं से युद्ध करने के वहाने ढूंढने लगा। एक वार इसी वहाने देवताओं पर आक्रमण कर दिया कि उन्होंने समुद्र मन्थन क्यों किया था। दूसरी बार राहु को यह कह कर शिव के पास भेजा कि उसे पार्वती समर्पित कर दी जाए। इस बात के लिए प्रताड़ित होने पर, उसने फिर आक्रमण किया।

शिव और जलंधर का युद्ध हुआ। जलंधर ने मायावी रूप धारण कर पार्वती को पाना चाहा। इस पर विष्णु ने अपनी माया के वल से बृन्दा का सतीत्व हरण किया। वृन्दा ने विष्णु को शाप दिया कि जैसे उसने तापस वेष में उसे हरा है वैसे ही उसकी माया को भी तापस हरेगा। यह कह कर वृन्दा ने देहत्याग कर दिया। जहां उसने देह त्यागा था, उस भूमि को वृन्दावन कहा जाने लगा। दूसरी ओर पार्वती ने किसी उपाय से यह जान लिया कि उससे प्रणय की कामना करने वाला कोई मायावी असुर था जो भगवान् शिव का रूप धारण कर उसका सतीत्व हरण करने आया था। उस से अपनी रक्षा का कोई दूसरा उपाय न देखकर पार्वती तत्काल कमल-नाल में छिप गई। पार्वती को वहां न पा कर जलंधर पुनः शिव से युद्ध करने पहुंच गया, पर इस वीच विष्णु उसकी पत्नी वृन्दा का सतीत्व हरण कर चुके थे जिससे जलंधर की अजय शक्ति क्षीण हो चुकी थी। इस तथ्य से अनभिज्ञ जलंधर ने जब शिव पर आक्रमण किया तो वह उनके हाथों से मारा गया।

---

1. पद्म पुराण : अ० ३-१९, ९८-१०७
2. शिव पुराण : रुद्रसंहिता, युद्ध खण्ड, अ० १३-२६
3 लिंग पुराण : पूर्वार्द्ध, अ० ९७
4. स्कन्द पुराण : वैष्णव खण्ड, अ० १४-२३

जय-विजय आख्यान

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ।
जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥
बिप्र शाप ते दूनउ भाई।
तामस असुर देह तिन्ह पाई॥

—रामचरितमानस : बाल काण्ड, १२१/२,३

यह दोनों विष्णु के पार्षद थे। एक वार सनकादि मुनि विष्णु से मिलने गए। वे नंगे थे, अतः जय-विजय ने उन्हें अन्दर न जाने दिया। सनकादि ने उन्हें स्वर्ग से भ्रष्ट होकर राक्षस योनि में जाने का शाप दिया। उसी समय भगवान विष्णु वहां आ गए और उन्हों ने ऋषियों से प्रार्थना की कि वे उन दोनों पर यह कृपा करें कि वे अपराध के अनुरूप अधम गति भोग कर, शीघ्र उन के पास आ जाएं। इसके वाद वे दोनों भूलोक में आकर दिति के गर्भ से हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष के रूप में उत्पन्न हुए।

अन्यत्र प्रसंग है कि एक बार अश्विनी कुमार विष्णु के दर्शनार्थ वैकुण्ठ पधारे। विष्णु उस सतय लक्ष्मी के साथ रमण में लोन थे। अतः जय-विजय ने उन्हें अन्दर न जाने दिया। अश्विनी कुमारों ने अपना सन्देश ही पहुंचाने को कहा, पर वे न माने। अश्विनी कुमारों ने तीन बार सन्देश पहुंचाने का अनुरोध किया पर वे दोनों अस्वीकार करते गए। अतः उन्हों ने जय-विजय को तीन बार राक्षस रूप में जन्म लेने का शाप दिया।

उसी शाप के प्रभाव के कारण भगवान विष्णु के यह दोनों पार्षद तीन जन्मों तक असुरों के रूप में जन्म लेते रहे। जय मुख्य असुर के रूप में तथा विजय उस के सहायक के रूप में। वे भगवान् विष्णु के पार्षद थे अतः उन की कृपा से तीनों बार उन्हीं के हाथों से मर कर फिर वैकुण्ठ लोक को प्राप्त हुए। प्रथम जन्म में हिरण्यकश्यप के रूप में, भगवान नृसिंह से मारा गया। द्वितीय जन्म में वह महाप्रतापी रावण के रूप में जन्मा और भगवान् श्रीराम के हाथों दिवंगत हुआ। तृतीय जन्म में वह शिशुपाल के रूप में उत्पन्न हुआ और भगवान् श्रीकृष्ण के हाथों उसका संहार हुआ।

---

1. पद्म पुराण : उत्तर खण्ड, अ० २३७
2. भागवत पुराण : स्कन्ध ३, अ० १५-१६
3. स्कन्द पुराण : वैष्णव खण्ड

जटायु आख्यान

रामकाज खगराज आजु लरयो जियत न जानकी त्यागी।

—गीतावली, गीत ८

पितु ज्यों गीध-क्रिया करि रघुपति अपने धाम पठायो।

—वही, गीत १६

जटायु रामायण का प्रसिद्ध पक्षी था। वह भगवान विष्णु के वाहन गरुड़ का पुत्र था। रामायण का ही दूसरा प्रसिद्ध पक्षी सम्पाति इस का बड़ा भाई था। अपनी शक्ति, साहस और वीरता से जटायु ने समस्त पक्षियों पर आधिपत्य प्राप्त कर लिया था अतएव इसे पक्षिराज नाम से संबोधित किया गया है। पुराणों में जटायु की वीरता के अनेक प्रसंग हैं।

श्रीराम के पिता दशरथ से जटायु की बड़ी मित्रता थी। एक बार आकाश के युद्ध में राजा दशरथ शनिदेव की दृष्टि से भस्म हो कर गिरने ही वाले थे कि जटायु ने आकाश मार्ग में लौट कर उन्हें सम्भावित विपत्ति से बचा लिया। इस घटना के बाद दशरथ जटायु के परम मित्र बन गए। जटायु राम का भी बड़ा भक्त था।

कई वर्षों बाद जब रावण दण्डकवन से सीता का हरण कर के उसे आकाश मार्ग से ले जा रहा था तो उन दिनों जटायु वृद्ध हो चुका था। पर ऐसा होने पर भी उसने रावण को उस अपकर्म से रोकने का प्रयत्न किया पर जब रावण ने उस के परामर्श पर कोई ध्यान नहीं दिया तो उस पर आक्रमण कर दिया। रावण ने युद्ध में अपने खड़ग से इसके पंख काट दिए और यह गंभीर रूप में आहत हुआ।

जब राम और लक्ष्मण सीता की खोज में उस स्थान पर पहुंचे जहां घायल जटायु पड़ा था तो उसने श्रीराम को सीता-हरण की सूचना देकर राम की गोद में ही प्राण त्याग किथा था। श्रीराम ने जटायु को पित्रृसखा और अपना भक्त समझ कर स्वयं उसका दाह संस्कार किया और इसे मुक्ति प्रदान की।

---

1. वाल्मीकि रामायण : अरण्य काण्ड, ५१, ६८
2. भागवत पुराण : स्कन्ध, ९, १०-१२
3. अग्नि पुराण : ७, २२

जयन्त आख्यान

(क) साहस ही कै कोपबस किए कठिन परिपाक।
सह संकट भाजन भये हठि कुजाति कपि काक॥

दोहावली, दोहा ४१५

(ख) सुरपति सुत धरि तापस वेषा।
सठ चाहत रघुपति बल देखा॥

—रामचरितमानस : अरण्य काण्ड, १/३

जयन्त शचि के गर्भ से देवराज इन्द्र का पुत्र था। इस का दूसरा नाम उपेन्द्र भी है। अपने वनवास काल में जिन दिनों भगवान् राम, सीता और लक्ष्मण के साथ दण्डकारण्य में रह रहे थे, तो एक दिन जयन्त घूमता घामता उस तरफ आ निकला। दण्डकारण्य के मनोहारी प्राकृतिक वातावरण में गोदावरी के तट पर इसने जब सीता को देखा तो यह उस के रूप लावण्य पर मुग्ध हो गया। इस ने सीता से छेड़ छाड़ करने का निश्चय किया पर राम अथवा लक्ष्मण की उपस्थिति में ऐसा करना असंभव था।

सोच विचार के बाद इसने कौए का रूप धारण किया और सीता के समीप बैठ गया। मौका पाते ही उसने सीता के स्तनों में चोंच मारी और उड़ कर वृक्ष पर जा बैठा। भगवान् राम ने इसके असली रूप को पहचान लिया और सीता का अपमान करने के अपराध में इसे दंडित करने का निर्णय किया। उन्हों ने तूणीर से एक बाण निकाला उसे मन्त्र से अभिप्रेरित कर उस पर छोड़ दिया।

वाण को अपनी ओर आते देख जयन्त अपनी प्राण रक्षा के लिए भागने लगा। जहां जहां जयन्त जाता वहां वहां वाण उसका पीछा करता। वह अपने पिता के पास गया, ब्रह्मा विष्णु और शिव की शरण ली, पर कोई भी उसे अभय-दान न दे सका। इसकी दयनीय दशा को देख कर नारद को इस पर दया आ गई और उन्हों ने इसे भगवान् राम की शरण जाने का परामर्श दिया।

मृत्यु के भय से आतंकित जयन्त श्रीराम के चरणों में आ गिरा। अत्यन्त आर्तवाणी में अपने अपराध के लिए क्षमा तथा प्राणों की भीख मांगी। तब श्रीराम ने इसे एक आंख से काना करके छोड़ दिया।

---

1. वायु पुराण : ६८/२४
2. पद्म पुराण : उत्तर खण्ड, २४२/१९५-२९०

तारकासुर आख्यान

देव देखि भल समऊ मनोज बुलायउ।
कहेउ करिय सुर काज, साजु सजि धायउ॥

—पार्वती मंगल, छन्द २८

तारकासुर ने अनेक वर्षों तक कठोर तपस्या करके ब्रह्मा से अजय और अमर होने का वर मांगा। ब्रह्मा ने कहा कि ऐसा वरदान देना सृष्टि के नियमों के प्रतिकूल है, अतः वह कोई दूसरा वर मांगे। तारकासुर के द्वारा पुनः उसी वर की प्राप्ति के लिए अनुरोध करने पर ब्रह्मा ने उसे वर दिया कि एक बच्चे को छोड़ कर वह सब से अजेय रहेगा। क्या सुर और क्या असुर कोई भी उस का सामना नहीं कर सकेगा।

वर से शक्ति सम्पन्न होकर तारक ने पृथ्वी पर चक्रवर्ती राज्य स्थापित कर लिया और फिर देवलोक पर आक्रमण करके इन्द्रादि देवताओं को वहां से भगा दिया और स्वयं शासक बन गया। देवगण उसके भय से गहन वनों और गिरिकन्दराओं में छिप कर जीवन बिताने लगे। उसके आतंक और अत्याचारों से पीड़ित देवताओं ने जब आर्तवाणी में त्राहि त्राहि की पुकार की तो उन्हें आकाशवाणी से ज्ञात हुआ कि तारकासुर का संहार केवल भगवान शिव का पुत्र ही कर सकता है। देवताओं को ऐसा यत्न करना चाहिए जिससे शिव पुनः विवाह करके उनकी रक्षा के लिए पुत्रोत्पत्ति करें।

उस काल में भगवान शिव अपनी पत्नी सती के दक्षयज्ञ में देहत्याग के के कारण बड़े दुखी थे। कितने ही समय तक शिव सती के वियोग में विक्षिप्त जैसे बने रहे और फिर तप में लीन हो गए। उस स्थिति में देवताओं ने परस्पर परामर्श करके कामदेव को शिव की तपस्या भंग करने और उन्हें विवाह के लिए प्रेरित करने के लिए भेजा। कामदेव ने बसंतकाल की रचना करके पुष्पबाणों से जब शिव की तपस्या भंग करने का यत्न किया तो क्रोध में शिव का तीसरा नेत्र खुला, जिससे निकलने वाले तेज से कामदेव भस्म हो गया।

इन्हीं दिनों हिमालय की पुत्री पार्वती जो पूर्व जन्म में सती थी, पुनः शिव को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए तप कर रही थी। भगवान् शिव ने पार्वती की तपस्या से प्रसन्न होकर पहले तो ब्रह्मचारी के वेष में पार्वती की परीक्षा की और फिर उसके साथ विवाह कर लिया। विवाह के पश्चात् शिव पार्वती को लेकर कैलाश चले गए और उस के साथ रमण में लीन हो गए।

अपनी विषम परिस्थितियों से विवश होकर देवताओं ने अग्निदेव को

शिव के पास भेजा। अग्निदेव ने शुकरूप धारण करके वातायन (रोशनदान) से शिव के क्रीड़ा स्थल में प्रवेश किया। शिव ने उसे पहचान लिया और उसे उसकी धृष्टता का दण्ड देने के लिए, अपना वीर्य उस के मुख में डाल दिया। अग्निदेव उसे धारण करने में असमर्थ था, अतः उसने उस वीर्य को गंगा में छोड़ दिया। गंगा भी उस वीर्य को धारण करने में समर्थ न हुई। उसने उस वीर्य को स्नान करने के लिए आई हुई षटकृत्तिकाओं में छोड़ दिया। कृत्तिकाओं ने उसे शर वन में छोड़ा। यहीं पर कुमार स्कन्द का जन्म हुआ।

देवताओं ने कृत्तिकाओं से प्रार्थना की कि वे कुमार का पालन करें। कृत्तिकाओं ने उत्तर दिया कि यदि देवता कुमार को उनका पुत्र स्वीकार करें तो उसी अवस्था में वे उसका पालन करेंगी। देवता मान गए तो कृत्तिकाओं ने कुमार का पालन पोषण किया। इसी कारण उनका नाम कार्त्तिकेय पड़ा।

कुमार ने देवताओं का सेनापति बन कर तारकासुर को युद्ध में मार दिया।

---

1. ब्रह्म पुराण : अ० १२८
2. पद्म पुराण : सृष्टि खण्ड, अ० ४१
3. स्कन्द पुराण : केदार खण्ड, अ० २०
4. वराह पुराण : अ० २५

तुलसी आख्यान

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुं तुलसिका हरिहि प्रिय ।।

रामचरितमानस : अरण्य काण्ड, ५ (क)

समुद्र मंथन के बाद जब विष्णु ने अमृत का कलश हाथ में लिया तो प्रसन्नता से उन की आंखों से आंसुओं की कुछ बूंदें अमृत के ऊपर गिरीं। इन्हीं से तुलसी का जन्म हुआ। देवों ने लक्ष्मी की तरह तुलसी को भी विष्णु को अर्पित कर दिया।

अन्यत्र प्रसंग है कि दंभासुर ने तपस्या करके विष्णु से शंखचूड़ नामक पुत्र प्राप्त किया, जिस का विवाह धर्मध्ज की कन्या तुलसी से हुआ। तुलसी के साथ आनन्दमय जीवन बिताते हुए प्रतापी शंखचूड़ ने दीर्घकाल तक राज्य किया। देवता, दानव, असुर, गन्धर्व किन्नर और राक्षस सभी शंखचूड़ के शासन काल में शान्त थे। अधिकार छिन जाने के कारण देवताओं की स्थिति बड़ी दयनीय थी। वे सभी ब्रह्मा की शरण में गए और अपना दुख कहा। ब्रह्मा देवताओं को साथ ले कर भगवान् शंकर के स्थान पर गए और वहां विचार-विमर्श करने के उपरान्त ब्रह्मा और शंकर देवताओं को साथ लेकर वैकुण्ठ पहुंचे और श्रीहरि से देवताओं की व्यथा-कथा कही। तब निश्चय हुआ कि शंकर उस दानव का संहार करें।

शिव के नेतृत्व में युद्ध करने पर भी देवता उसे पराजित न कर सके। फिर उन्हें पता चला कि जब तक शंखचूड़ के पास नारायण कवच है और उस की पत्नी का सतीत्व अजेय है, तब तक वह अवध्य है।

शिव के अनुरोध से विष्णु ने दोनों काम कर दिए। शंखचूड़ शिव से मारा गया। जब तुलसी रोने लगी तो शिव ने उसे कहा कि "अब तुम इस शरीर को छोड़ दो। तुम गंडकी नदी बनोगी और फिर तुलसी वृक्ष। विष्णु तुम्हारे शापवश गंडकी नदी के तटवर्ती पर्वत बनेंगे और शालिग्राम नाम से ख्यात् होंगे एवं तुम भगवान के साथ रहोगी। शंखचूड़ की अस्थियों से भी सागर में शंख बनेंगे, जो व्यक्ति तुलसी, शंख और शालग्राम की पूजा करे गा, वह भगवान का भक्त माना जाएगा।

1. शिव पुराण : रुद्रसंहिता, युद्ध खण्ड, अ० १३, २६
2. स्कन्द पुराण : वैष्णव खण्ड, अ० १४-२३
3. लिंग पुराण : पूर्वार्ध, अ० ७
4. ब्रह्मवैवर्त पुराण : प्रकृति खण्ड, अ० १४-२१

दण्डकवन का आख्यान

दण्डक वन पुनीत प्रभु करहु।
उग्र स्राप मुनिवर करहरहु॥

—रामचरितमानस : अरण्य काण्ड, १२/८

यह प्राचीन वन विन्ध्य पर्वत से ले कर गोदावरी नदी के तट तक फैला हुआ है और वन का बहुत सा अंश आज भी वर्तमान है। प्राकृतिक दृष्टि से यह भूभाग इतना रमणीक और मोहक है कि इसकी सुन्दरता से आकर्षित हो श्रीराम ने अपने वनवास काल का अधिकांश समय यहीं पर व्यतीत किया था। इसी वन में शूर्पणखा के नाक-कान कटे थे और इसी वन में मारीच की सहायता से रावण ने सीता का हरण किया था।

दण्डकवन राजा दण्ड के दुराचारों का प्रतीक है। यह राजा इक्ष्वाकु के शतपुत्रों में सब से कनिष्ठ था। मूर्ख और विद्याहीन होने के साथ-साथ कामी भी था। राजा इक्ष्वाकु ने विन्ध्याचल और शैवल पर्वत का मध्यवर्ती भूभाग उसे सौंप दिया। वह शुक्राचार्य को गुरु बनाकर वहां राज्य करने लगा। एक बार भ्रमण करते समय उसने गुरु के आश्रम के पास उनकी बड़ी पुत्री अरजा को देखा। आसक्त होकर उसने प्रणय याचना की। अरजा ने सदाचार की दुहाई दी, अपने पिता के शाप का भय दिखाया, परन्तु उसने अरजा के साथ बलात्कार किया।

जब शुक्राचार्य को अपनी पुत्री से राजा की अनीति और अत्याचार का पता चला तो उन्होंने उसे सात दिन के अन्दर पुत्र, सेना और वाहनों के साथ नष्ट होने का शाप दिया और यह भी कहा कि इन्द्र सौ योजन तक धूल और पत्थर बरसा कर, उसके राज्यवर्ती सभी स्थावर, जंगम प्राणियों को नष्ट करदे।

इसके बाद शुक्राचार्य ने सभी ऋषियों व अन्य निवासियों को उस वन से बाहर जाने का आदेश दिया और स्वयं भी वहां से चले गए। वह वन नष्ट हो जाने के बाद दण्डकवन के नाम से विख्यात् हुआ। जब भगवान राम ने वनवास के दिनों में उस वन में प्रवेश किया, तब यह भूमि ऋषि के शाप से मुक्त हुई।

---

1. पद्म पुराण : सृष्टि खण्ड, अ० ३४
2. वामन पुराण : अ० ६३, ६६
   वाल्मीकि रामायण : उत्तरार्ध सर्ग ८१

दधीचि आख्यान

सिव दधीचि हरिचन्द नरेसा ।।
सहे धरम हित कोटी कलेसा ।।

—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, २९/४, ९४/२

एक बार देवगुरु बृहस्पति का देवराज इन्द्र ने किसी बात पर अपमान कर दिया तो वह रूठ कर उससे अलग हो गए। देवलोक में इन्द्र के इस प्रकार के आचरण की आलोचना की गई। जब दैत्यराज वृषपर्वा को सूचना मिली कि वृहस्पति इन्द्र से विमुख हो गए हैं तो उसने अपने गुरु शुक्राचार्य के परामर्श पर देवलोक पर आक्रमण करके उसपर अधिकार कर, देवताओं को वहां से निष्कासित कर दिया।

जब इन्द्रादि देवता वृषपर्वा का सामना नहीं कर सके तो ब्रह्मा की शरण में गए और उस स्थिति से छुटकारा पाने का उपाय पूछा। उन्होंने इन्द्र से कहा कि विना गुरु के उसका कल्याण नहीं हो सकता। यदि वह चाहे तो त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को अपना पुरोहित बनाकर असुरों को पराजित कर सकता है। इन्द्र ने विश्वरूप को अपना पुरोहित बना लिया तो इससे प्रसन्न होकर विश्वरूप ने इन्द्र को नारायण कवच सिखला दिया। इस कवच के कारण इन्द्र अस्त्र-शस्त्र से अवध्य हो गया।

इन्द्र ने राज्य पाने पर यज्ञ आरम्भ किया। विश्वरूप भी साथ-साथ आहुति देने लगे। वे मन में दैत्यों के नाम की भी एक आहुति देते जाते थे। इन्द्र को यह मालूम हुआ तो उसने उनका सिर काट दिया। पुत्र की मृत्यु का समाचार जान, त्वष्टा ने यज्ञ करके वृत्रासुर नामक असुर उत्पन्न किया और उसे इन्द्र को मारने का आदेश दिया। वृत्रासुर ने देवताओं सहित इन्द्र की वहुत दुर्गति की। देवों के सभी अस्त्र-शस्त्र विफल हुए।

देवता अन्त में नारायण की शरण में गए। उन्होंने इन्द्र को तपस्वी दधीचि की अस्थिओं से निर्मित शस्त्र से वृत्र का वध सम्भव बताया। इन्द्र के निवेदन पर, दधीचि ने समाधिस्थ होकर प्राणवायु का उत्सर्ग किया। इन्द्र ने ऋषि की अस्थियों से निर्मित वज्र से वृत्र का वध कर दिया।

---

1. ब्रह्म पुराण : अ० ११०
2. पद्म पुराण : सृष्टि खण्ड, अ० १९
3. भागवत पुराण : स्कन्ध, अ० ९-१०
4. स्कन्द पुराण : प्रभास खण्ड, अ० ३१-३२

दक्ष प्रजापति और शिव के द्रोह का आख्यान

दच्छ सकल निज सुता बोलाईं ।
हमरें बयर तुमहउ बिसराईं ।।

—रामचरितमानस : बाल काण्ड, ६१/१

एक बार प्रजापतियों के यज्ञ में सभी देवतागण बैठे थे तो उसी समय प्रजापति दक्ष भी इस सभा में आए । दक्ष के यज्ञभूमि में आने पर सब देवताओं ने उठकर उनका स्वागत सत्कार किया पर शिव बैठे रहे और उन्होंने वाणीमात्र से भी अपने ससुर दक्ष को प्रणाम तक नहीं किया । शिव के इस आचरण पर क्रुद्ध होकर दक्ष ने उन्हें शाप दिया कि इन्द्रादि देवताओं के साथ शिव को यज्ञभाग प्राप्त न हो ।

शिव तो मौन रहे पर उनके अनुयायी नन्दी ने दक्ष तथा उसके अनुयायी ब्राह्मणों को शाप दिया कि दक्ष स्त्रीकामी और बकरे के मुख वाला हो जाएगा तथा उसके साथी ब्राह्मण विद्वान् होते हुए भी सर्वभक्षी, इन्द्रियों में आसक्त एवं भिक्षुओं जैसा जीवन बिताएंगे । इस पर क्रुद्ध होकर भृगु ने शिव के अनुयाईयों को यह शाप दिया कि वे लोग भस्म धारण करने वाले, अविवेकी और पाखण्डी होंगे । इस प्रकार शिव द्वारा दक्ष का सम्मान न किए जाने से शापों की जो लम्बी परम्परा चली उससे अनेक उपद्रव और उत्पात हुए ।

अन्यत्र लिखा है कि देवसभा में दक्ष को अभिवादन न करने के कारण ही शिव के साथ दक्ष को द्वेष हो गया था और इसी द्वेष के कारण दक्ष ने अपने घर में आयोजित यज्ञ में आने केलिए शिव और सती को निमंत्रण तक नहीं भेजा था ।

एक दूसरे प्रसंग में कहा गया है कि एक बार दक्ष प्रजापति अपनी पुत्री सती के घर आया । शिव ने आदर-सत्कार सहित स्वयं उसकी पूजा की । परन्तु दक्ष अपने जामाता शिव से अधिक पूजा की अपेक्षा करके उनके घर आया था । जब दक्ष अपने घर लौटा तो उस समय वह शिव और सती दोनों पर अत्यन्त कुपित था । इसी अपराध के कारण उसने अपने घर पर आयोजित यज्ञोत्सव में शिव और सती को निमन्त्रित नहीं किया था ।

---

1. ब्रह्म पुराण : अ० ३४
2. भागवत पुराण : स्कन्ध ४, अ० २
3. शिव पुराण : रुद्रसहिता, सती खण्ड, अ० १४
   स्कन्द पुराण : केदार खण्ड, अ० १

दक्ष-यज्ञ विध्वंस आख्यान

समाचार जब संकर पाए।
वीरभद्र करि कोप पठाए।।

—रामचरितमानस : बाल काण्ड, ६४/१

एक बार दक्ष ने यज्ञ करने का निश्चय किया। उसने सभी देवताओं को निमन्त्रण भेजे। न शिव को बुलाया और न ही अपनी पुत्री सती को। शिव के रोकने पर भी सती वहां गई। वहां उसका किसी ने स्वागत नहीं किया और उल्टे शिव की निन्दा भीं सुननी पड़ी। इस अपमान से पीड़ित होकर सती ने शरीर त्याग दिया। वह यज्ञभूमि में ही भस्म हो गई।

सती की मृत्यु से क्रोधित हो शिव ने अपनी जटा के एक वाल को उखाड़ कर वीरभद्र को उत्पन्न किया। वीरभद्र ने अनेक गणों के साथ जाकर, दक्ष का यज्ञ विध्वंस करना आरम्भ किया। दक्ष की ओर से लड़ने वाले विष्णु से भी वीरभद्र का युद्ध हुआ। अन्त में उसने दक्ष का सिर काट कर यज्ञ कुण्ड में डाल दिया। तब देवताओं ने मिल कर शिव की स्तुति की। शिव ने प्रसन्न होकर दक्ष आदि को जीवित कर दिया और यज्ञ पूर्ण होने का आशीर्वाद देकर चले गए।

एक दूसरे प्रसंग में कहा गया है कि जब नारद ने शिव को सती के मरण का समाचार सुनाया तो उन्हों ने वीरभद्र को यज्ञ-विध्वंस की आज्ञा दी। जब वीरभद्र विध्वंस के लिए यज्ञ भूमि में पहुंचा तो देवताओं की प्रार्थना पर विष्णु ने वीरभद्र को युद्ध में पराजित कर दिया। वीरभद्र ने जब शिव को इस स्थिति से सूचित किया तो क्रोधित शिव भद्रकाली और वीरभद्र को साथ लेकर यज्ञभूमि में आए उनके विकराल रूप को देखकर विष्णु छिप गए। शिव ने दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कर दिया।

यह आख्यान १५ पुराणों है वर्णित है। सभी पुराणों में वर्णित इस आख्यान में थोड़ा-वहुत अन्तर है।

---

1. ब्रह्म पुराण : अ० ३४
2. पद्म पुराण : सृष्टि खण्ड, अ० ५
3. शिव पुराण : सती खण्ड, अ० १
4. भागवत पुराण : स्कन्ध, ४, अ० ४-५
5. स्कन्द पुराण : काशी खण्ड, अ० ८८-८९
6. वराह पुराण : अ० २१-१२

दुर्गा आख्यान

दुसह दोष दुख दलनि करु देवि दाया।

—विनयपत्रिका : पद १५

जय जय जगजननि देवि ॥

—वही, पद १६

दुर्गा के सम्बन्ध में पुराणों में अनेक आख्यान हैं। कहीं उसे परब्रह्म, कहीं महामाया, कहीं आद्याशक्ति और कहीं उसे देवताओं की सम्मिलित शक्ति का रूप कहा गया है। देवी को दुर्गा नाम से क्यों अभिहित किया गया इसके सम्बन्ध में अनेक प्रसंग उपलब्ध हैं।

स्मरण मात्र से ही इन्होंने इन्द्रादि देवताओं को दुर्गम शत्रुसंकट से मुक्त किया था, इसी कारण इनका नाम दुर्गा पड़ा। सृष्टि रचना के सम्बन्ध में शक्ति ही प्रधान है। सृष्टिकाल में राधा, लक्ष्मी, सावित्री, दुर्गा तथा सरस्वती यह पांच शक्तियां आविर्भूत हुईं। इनमें दुर्गति का नाश करने वाली शक्ति का नाम दुर्गा कहा गया है।

अन्यत्र लिखा है कि 'दुर्ग' शब्द, दैत्य, महाविघ्न, भवबन्धन, कर्म शोक, दुख, नरक, यमदण्ड, जन्म, महानभय तथा अत्यन्त रोग के अर्थ में आता है तथा 'अ' शब्द 'हन्ता' का वाचक है। जो देवी दैत्य और महाविघ्न आदि का हनन करती है उसे 'दुर्गा' कहा गया है। देवताओं ने अपनी अपनी शक्ति समन्वित कर जिस देवी को अवतरित किया वही दुर्गा नाम से विश्रुत हुई।

पुराणों के अनुसार महिषासुर के वध के लिए ही दुर्गा का आविर्भाव हुआ था। जब पार्वती अरुणाचल पर जाकर तप करने लगी उसने तपोवन की रक्षा निमित्त दुर्गा को उत्पन्न कर नियुक्त किया। एक अन्य प्रसंग के अनुसार दैत्य रूरु का दुर्ग नामक पुत्र जिसने त्रिलोकी को वश में कर लिया था जब वहत उत्पात करने लगा तो देवी ने ससैन्य उसका संहार कर दिया। असुर दुर्ग को मारने के कारण देवी दुर्गा के नाम से ख्यात् हो गई।

---

1. पद्म पुराण : सृष्टि खण्ड, अ० ३०
2. शिव पुराण : उमा संहिता, अ० ४६
3. वराह पुराण : अ० ९५
4. वामन पुराण : अ० १७-२०
5. स्कन्द पुराण : पाचों खण्डों में।
6. ब्रह्म पुराण : अ० ६४

ध्रुव आख्यान

ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊं।
पाएउ अचल अनुपम ठाऊं॥

—रामचरितमानस : बाल काण्ड, २५/३

राजा उत्तानपाद की दो रानियां थीं। सुनीति और सुरुचि। सुनीति के पुत्र का नाम ध्रुव था और सुरुचि के पुत्र का नाम उत्तम। राजा सुरुचि को अधिक चाहता था। एक दिन उत्तम राजा की गोद में बैठा था। ध्रुव ने वहीं बैठना चाहा। पर सुरुचि ने उससे कहा कि उसका पुत्र उत्तम ही राजाकी गोद में बैठने का अधिकारी है। सुनीति के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण, वह राजा की गोद में नहीं बैठ सकता। ध्रुव रोते-रोते अपनी माता के पास गया और सारी बात बताई। माताने उसे बताया कि सुरुचि ने पुण्य किए हैं। इसलिए राजा उसे अधिक चाहता है। इस पर ध्रुव ने अपनी माता के सामने प्रतिज्ञा की कि वह भी भक्ति द्वारा ऐसा स्थान प्राप्त करेगा। ऐसा कह कर ध्रुव ने गृहत्याग किया और जंगल की तरफ चल पड़ा। रास्ते में उसे सप्तर्षि मिले तो उन्होंने उसे विष्णु की तपस्या करने को कहा और उसे विष्णु मंत्र भी दिया। यमुना नदी के तट पर मधुवन में आकर ध्रुव भगवान की भक्ति में लीन हो गया।

ध्रुव की तपस्या से इन्द्र को भय हुआ। उसने सुनीति का रूप धारण करके ममता और मोह दिखाकर, अनेक बाधाएं उपस्थित कीं। परन्तु ध्रुव अडिग रहा। भगवान विष्णु प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे इच्छित वरदान देते हुए कहा "तुम सब लोकों और ग्रहों के ऊपर अचल भाव से रहोगे और माता सुनीति भी तारा रूप में तुम्हारे समीप ही रहेगी। अनेक वर्षों तक राज्य सुख भोग कर तुम परमपद को प्राप्त करोगे।"

अनेक पुराणों में प्राप्त इस आख्यान में थोड़ा-बहुत अन्तर है। गृहत्याग के बाद कहीं ध्रुव की भेंट सप्तर्षियों से दिखाई है, कहीं नारद से और कहीं विश्वामित्र से, परन्तु उद्देश्य सब का एक है।

---

1. विष्णु पुराण अंश १, अ० ११-१२
2. स्कन्द पुराण : काशी खण्ड, अ० १९-२१
3. अग्नि पुराण अ० १८
4. लिंग पुराण : पूर्वार्ध, अ० ६२
5. भविष्य पुराण : उत्तरार्ध, अ० ६१

राजा नहुष का आख्यान

ससि गुर तिय गामि नहुष चढेउ भूमिसुर जान।
लोक वेद तें विमुख भा अधम न वेनु समान।।

—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, २२८

जब वृत्रासुर के वध से इन्द्र को ब्रह्महत्या का पाप लगा तो वह जल में जाकर छिप गया। इन्द्र विहीन स्वर्गलोक में जब अराजकता फैलने लगी तो सभी ने परामर्श करके अम्बरीश के पुत्र नहुष को स्वर्ग का राजा बना दिया। स्वर्ग का शासक बनाते समय देवताओं, ऋषियों और ब्रह्मां ने उसे वरदान देकर और भी शक्तिशाली बना दिया। ब्रह्मा ने उसे यह वर दियां कि जिस पर भी उसकी दृष्टि पड़ेगी, वही उसके अधीन हो जाएगा।

ब्रह्मा के वर से शक्तिसम्पन्न नहुष कुछ ही काल में अन्यायी और अत्याचारी हो गया। देवता उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सके। जो भी उसके सामने जाता वह उसी का तेज हर लेता। हताश देवता भगवान विष्णु की शरण में गए। नहुष के अत्याचार और इन्द्र की व्यथा बताई। विष्णु ने इन्द्र द्वारा अश्वमेध यज्ञ करने का परामर्श दिया तथा निकट भविष्य में ही नहुष के पतन की भविष्यवाणी की। देवताओं ने इन्द्र से अश्वमेध यज्ञ करवा कर उसे ब्रह्महत्या से मुक्त कर दिया।

एक दिन नहुष इन्द्र की पत्नी शची को देखकर उस पर आसक्त हो गया। उसने इन्द्राणी को अपने घर आने की आज्ञा दी। तब वृहस्पति तथा देवताओं के परामर्श पर इन्द्राणी ने नहुष को कहला भेजा कि यदि वह पालकी पर बैठ कर, सप्तर्षियों से पालकी उठवा कर, उसके पास आए, तो वह उसकी पत्नी बन जाएगी। नहुष ने ऐसा ही किया। मार्ग में उसने ऋषियों को लात मार कर जल्दी जल्दी चलने को कहा। इस पर अगस्त्य ने उसे मृत्युलोक में सर्प के रूप में रहने का शाप दिया। इन्द्र को यज्ञ करवा कर ब्रह्महत्या से मुक्ति दिलवाकर पुनः स्वर्ग का राजा बनाया गया। नहुष को इस सर्प योनि से युधिष्ठर ने मुक्ति दिलाई।

---

1. महाभारत : उद्योग पर्व, अ० ११-१७
2. भागवत पुराण : स्कन्ध ६, अ० १३
3. ब्रह्मवैवर्त : श्रीकृष्णजन्म खण्ड, अ० ५९-६०

नल-नील आखयान

नाथ नील नल कपि दो भाई।
लरिकाई रिषि आसिष पाई।।

—रामचरितमानस : सुन्दर काण्ड, ५९/१

जामवंत बोले दोउ भाई।
नल नीलहि सब कथा सुनाई।।

—वही, लंका काण्ड, १/३

नल ग्रौर नील देवलोक के प्रमुख शिल्पी विश्वकर्मा के पुत्र थे। कहीं कहीं इनकी उत्पत्ति ग्रग्निवंश से कही गई है। जब श्रीराम सेतुबन्ध के लिए समुद्रतट पर पहुंचे ग्रौर समुद्रतरण का कोई उपाय न देख कर समुद्र पर कोप करने लगे तो समुद्र राम के समक्ष उपस्थित हुग्रा ग्रौर उसने उन्हें बताया कि उनकी सेना में ही विश्वकर्मा के समान सब कुछ निर्माण करने की शक्ति रखने वाला नल नाम का वानर है। वह जो कुछ जल में फैंकेगा, वह डूबेगा नहीं।

श्रीराम के पूछने पर नल ने भी बताया था कि विश्वकर्मा द्वारा उसकी माता को दिए गए वरदान के कारण वह भी निर्माण की शक्ति से पूर्ण है। श्रीराम के कहने पर नल ने सेतुबन्ध का कार्य किया था। पर ग्रन्यत्र प्रसंग है कि नल ग्रौर नील इन दोनों भाईयों को ब्राह्मण के शापवश पत्थर तैराने की शक्ति प्राप्त हो गई थी।

गंगा के तट पर एक तपस्वी ब्राह्मण रहता था जो प्रतिदिन गंगाजल से स्नान करा कर शालग्राम की पूजा किया करता। नल ग्रौर नील दोनों शरारत करने की खातिर जब भी मौका मिलता, शालग्राम उठा कर गंगा में डाल देते। ब्राह्मण ने ग्रनेक बार नए शालग्राम लाए पर इन्होंने उन सब को बारी-बारी जल में फैंक दिया। ग्रन्त में इनके व्यवहार ग्रौर शरारतों से तंग ग्राकर उस ब्राह्मण ने इन्हें शाप दिया कि इनके द्वारा फैंके गए शालग्राम पानी में तैरते रहेंगे, डूबेंगे नहीं। इसी से पत्थर तैराने की शक्ति उन्हें प्राप्त होगई थी।

कई पुराणों में इस प्रसंग के ग्रंतर्गत केवल नल की चर्चा की गई है। परन्तु भागवत, स्कन्द पुराण एवं महाभारत में नल के साथ नील के योगदान की भी चर्चा है।

---

1. भागवत पुराण : स्कन्ध ९, ग्र० १०
2. स्कन्द पुराण : ब्रह्म खण्ड, सेतुमहात्म्य, ग्र० २
3. वाल्मीकि रामायण : लंका काण्ड, सर्ग २२

नारदोत्पत्ति आख्यान

बालमीकि नारद घटजोनी।
निज निज मुखनी कही निज होनि।।

—रामचरितमानस : बाल काण्ड, २/२

नारद की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो आख्यान उपलब्ध होते हैं, उनमें उन्हें कहीं दासीपुत्र, कहीं ब्रह्मा का मानसपुत्र और कहीं उन्हें अवन्तीपुरी का सारस्वत नामक ब्राह्मण बताया गया है। कुछ पुराण उन्हें ब्रह्मा का तीसरा अवतार स्वीकार करते हैं तो अन्यत्र उन्हें कश्यप प्रजापति का अथवा दक्ष का पुत्र बताया गया है।

एक प्रसंग के अनुसार नारद वेदवाणी ऋषियों की सेवा करने वाली एक दासी का पुत्र था। निर्धनता के कारण वह उन्हीं ऋषियों की जूठन खाकर निर्वाह कर लिया करता था और उनकी सेवा में ही रहता था। इससे वे बड़े प्रसन्न हुए। उनकी जूठन खाने से नारद का अन्तःकरण पवित्र हो गया और वह भगवान की भक्ति करने लगा। जब वह पांच ही वर्ष का था, तो सर्पदंश से उसकी माता का स्वर्गवास हो गया।माता की मृत्यु से दुःखी होकर, वह एक वन में जाकर तपस्या करने लगा। वहीं उसका प्राणान्त हुआ।

जब कल्पान्त में भगवान बिष्णु क्षीरसागर में शयन कर रहे थे, ब्रह्मा के प्राण के साथ नारद की आत्मा का प्रादुर्भाव हुआ। जब ब्रह्मा ने सृष्टि रचना का कार्य आरम्भ किया, तो उनकी इन्द्रियों से मरीचि आदि के साथ नारद भी प्रकट हुए।

ब्रह्मा ने सभी पुत्रों को सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा दी। अन्य सभी ने पिता का आदेश स्वीकार कर लिया परन्तु नारद ने ईश्वर भक्ति को अमृत तथा सांसारिकता को विषमय बता कर पिता की बात मानने से इन्कार कर दिया। उस पर ब्रह्मा ने उन्हें अनेक जन्मों तक भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म लेने का शाप दिया।

अन्यत्र प्रसंग है कि नारद पूर्वजन्म में अवन्तीपुर का सारस्वत नामक ब्राह्मण था। विष्णु की कृपा से यही ब्राह्मण दूसरे जन्म में ब्रह्मा का नारद नामक पुत्र हुआ जिसे हरि के भक्तों में विशेष स्थान प्राप्त है।

---

1. भागवत : स्कन्ध १ अ० ५
2. ब्रह्मवैवर्त पुराण : ब्रह्म खण्ड, अ० ८-२१
3. वराह पुराण : अ० ३

नारद-मोह आख्यान

नारद स्राप दीन इक बारा।
कल्प एक तेहि लगि अवतारा ॥

—रामचरितमानस : बाल काण्ड, १२३/३

एक बार हिमालय पर कठोर तप करते हुए नारद को देख कर, इन्द्र ने कामदेव को उसका तप भंग करने भेजा। पूर्वकाल में शिव ने कामदेव को भस्म करते समय शाप दिया था कि हिमालय पर तप करने वाले अन्य लोगों पर भी उसका प्रभाव नहीं होगा। शिव के इस शाप से कामदेव नारद को प्रभावित न कर सका, पर मोह से नारद ने इसे अपना ही प्रभाव जाना और अपनी शक्ति को डींग हांकते हुए ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु से अपने को कामजयी वताया। विष्णु इसे शिव की माया जान हंस पड़े। ज्यों ही नारद उनसे विदा हुए, उन्होंने मार्ग में ही एक मायानगरी बसाई। इसका राजा शीलनिधि था, जो अपनी रूपवती कन्या श्रीमती का स्वयंवर करना चाहता था। नारद उसे देख कर आसक्त हुए और स्वयंवर में उसे प्राप्त करने की इच्छा से रूप प्राप्ति के लिए विष्णु के पास गए।

विष्णु ने उन्हें वानर रूप दिया। स्वयंवर में ब्राह्मणरूप शिव गणों ने उनका उपहास किया। श्रीमती ने स्वयंवर में आए विष्णु का वरण किया। विष्णु श्रीमती को लेकर जव अन्तर्धान हो गए तो नारद का नशा दूर हुआ। इसी समय शिव गणों ने उनको उनके वानर रूप के विषय में बताया। नारद ने शिव गणों को राक्षस होने का शाप दिया और विष्णु लोक में जाकर विष्णु को भी प्रिया-वियोग में दुःखी होने तथा उस स्थिति में वानरों के सहायक होने का शाप देते हुए कहा कि जिस प्रकार उन्होंने छल से श्रीमती का अपहरण किया है उसी प्रकार उनकी माया का भी कोई राक्षस छलपूर्वक हरण करेगा।

भगवान् विष्णु ने शिव की इच्छा जान कर शान्ति से नारद के शाप को स्वीकार कर लिया। पर जव उन्होंने नारद को माया से मुक्त किया तो वे बड़े दुखी हुए। इस पर विष्णु ने उन्हें शिव स्तोत्र का पाठ करने की सलाह दी।

---

1. शिव पुराण : रुद्र संहिता, सृष्टि खण्ड, अ० ४, १५-१७
2. भविष्य पुराण : उत्तरार्ध, अ० ३
3. लिंग पुराण उत्तरार्ध, अ० ५

नारद आख्यान

नारद के उपदेस कवन घर गे नहिं ।

—पार्वती मंगल : छन्द, १२०

नारद के उपदेशों से कई घर उजड़े । राजा चित्रकेतु ने राज्य छोड़ कर वन की राह ली थी । हिरण्यकश्यप का उसी के पुत्र प्रहलाद के कारण नाश हुआ था और दक्ष के पुत्रों ने भी नारद की बातों में आकर सृष्टि निर्माण का कार्य छोड़ दिया था । प्रथम और द्वितीय आख्यान का परिचय गत पृष्ठों में दिया जा चुका है । तृतीय आख्यान इस प्रकार है :

दक्ष प्रजापति के वीर्य और असिक्नी के गर्भ से हर्यश्व नामक दस हजार पुत्र हुए । सब एक ही आचार विचार और प्रकृति के थे । दक्ष की आज्ञा से वे सृष्टि निर्माण के लिए पश्चिम दिशा में गए । सिन्धु नदी और समुद्र के संगम स्थल पर वे तपस्या करने लगे ।

उन्हें तपस्या करते देख नारद वहां पहुंचे और उपदेश देते हुए कहने लगे कि जब तक आप पृथवी का अन्त, एक पुरुष वाला देश, ऐसी गुफा जिसमें से बाहर निकलने का रास्ता न दिखाई देता हो, बहुत से रूप बना सकने बाली स्त्री, व्यभिचारी पति, दोनों ओर बहने वाली नदी, पच्चीस पदार्थों से अद्भुत दिखाई देने वाला घर, विचित्र कथा सुनता हुआ हंस, स्वत: घूमता हुआ छुरे-वज्रों से निर्मित चक्र और अपने सर्वस्व पिता की आज्ञा इन दस बातों को नहीं जान जाते, सृष्टि की रचना कैसे कर सकते हैं ?

नारद के इन कूट प्रश्नों पर विचार करते-करते ये सब मुक्ति की खोज में चले गए और फिर घर न लौटे । प्रजापति दक्ष को जब इस बात का पता चला तो वह बड़े दु:खी हुए । उन्हें नारद पर बड़ा क्रोध आया । वह नारद को शाप देने को तत्पर हुए तो ब्रह्मा ने उन्हें समझा बुझा कर शान्त कर दिया । दक्ष ने अपनी दूसरी पत्नी वीरणी में शवलाश्व नामक एक हजार पुत्रों को उत्पन्न करके उन्हें सृष्टि निर्माण के लिए आदेश दिया । नारद इनके पास भी पहुंचे और इन्हें ज्ञान का उपदेश देकर सृष्टि निर्माण से विरक्त कर दिया । नारद की बातों में आकर वे भी अपने भाईयों की तरह मुक्ति की खोज में चले गए, और फिर अपने पिता के पास नहीं गए ।

नारद के द्वारा सृष्टि रचना के कार्य में अकारण ही बार-बार विघ्न उपस्थित करने के कारण दक्ष उन पर बड़े कुपित हुए और उन्होंने शाप दिया कि नारद कभी भी एक स्थान पर नहीं टिक सकेगा । वह जन्म जन्मांतर

भटकता रहेगा। इसके साथ यह भी कहा कि नारद जिस स्थान पर भी जाएगा इसके कारण वहां लड़ाई और झगड़े होंगे। वह राजा और प्रजा, समाज और देश सभी स्थानों पर कलह का कारण माना जाएगा।

दक्ष ने शाप तो दे दिया पर पुत्रों के खो जाने की घटनाओं से वे बड़े दुखी थे। दक्ष सृष्टिरचना के कार्य में ब्रह्मा के आदेश से ही प्रवृत्त हुए थे। अतः उन्हें दुखी देख ब्रह्मा ने स्वयं आकर दक्ष को समझा बुझा कर शान्त किया।

---

1. ब्रह्म पुराण : अ० ३
2. पद्म पुराण : सृष्टिखण्ड, अ० ६
3. भागवत पुराण : स्कन्ध ५, अ० ६
4. शिव पुराण : रुद्रसंहिता, सतीखण्ड, अ० १३, उमासंहिता : अ० ३१
5. ब्रह्माण्ड पुराण : मध्य भाग, उपोदधातपाद, अ० २

निमि और वशिष्ठ के पारस्परिक शाप का आख्यान

भए बिलोचन चारु अचंचल।
मनहुं सकुचि निमि तजे दिगंचल ॥

—रामचरितमानस : बालकाण्ड, २२९/२

इक्ष्वाकु के पुत्र महाराज निमि ने एक बार पांच हजार वर्षों में समाप्त होने वाला यज्ञ करने की इच्छा से गुरु वसिष्ठ को 'होता' नियुक्त किया। इन्द्र इससे पहले ही वसिष्ठ को अपने यज्ञ के लिए वरण कर चुके थे। अतः इन्द्र के यज्ञ की समाप्ति पर ही वसिष्ठ ने निमि के यज्ञ में सम्मिलित होने की बात कही। निमि इस पर मौन रहा। वसिष्ठ उसके यज्ञ में पुनः आने की इच्छा से इन्द्र के पास चले गए।

अन्यत्र प्रसंग है निमि के आग्रह करने पर तथा यह कहने पर भी कि यज्ञ की तैयारी हो चुकी है तथा प्रतीक्षा करने से यज्ञ की सामग्री खराब हो जाएगी वसिष्ठ इन्द्र के यज्ञ में चले गए।

इधर निमि ने गौतम से यज्ञ कराना आरम्भ किया। जब वसिष्ठ आए तो यज्ञ होते देख कर, अपने को अपमानित अनुभव करके उन्होंने निमि को देह रहित होने का शाप दे दिया। राजा ने भी वसिष्ठ को देह रहित होने का शाप दिया। वसिष्ठ शाप के बाद ब्रह्मा के पास गए। अपना दुःख कहा। ब्रह्मा ने उन्हें मित्रावरुण के तेज में प्रविष्ट होकर अयोनिज रूप में जन्म लेने की आज्ञा दी। उस समय मित्रावरूण तपस्या में लीन थे। फूल चुनती हुई उर्वशी उनके आश्रम के समीप पहुंची। उसे देखकर दोनों का वीर्य मृगासन पर स्खलित हो गया। उर्वशी ने डरकर उस वीर्य को जल से पूर्ण कलश में डाल दिया। इसी कलश से वसिष्ठ तथा अगस्त का जन्म हुआ।

दूसरी ओर ऋत्वजों की प्रेरणा से देवताओं ने यज्ञ के बाद निमि को वर मांगने को कहा तो उसने समस्त लोगों की आंखों पर अपना वास मांगा। देवताओं ने वही वर दिया। अतः निमि को लोकपलकों पर आवास मिला।

---

1. विष्णु पुराण : अंश ४, अ० ५
2. भागवत पुराण : स्कन्ध ९, अ० १३
3. मत्स्य पुराण : अ० २०१
4. पद्म पुराण : पातालखण्ड, अ० ५, २२

नीलकण्ठ आख्यान

नीलकण्ठ मृदुसील कृपामय मूरति ।

—पार्वती मंगल : छन्द, ३०

एक वार दुर्वासा जी के शाप के कारण देवता निःसत्व और श्रीहीन हो गए तो दैत्यों ने उन पर आक्रमण करके उन्हें परास्त कर दिया। तब इन्द्रादि देवगण अग्निदेव को आगे कर ब्रह्मा जी की शरण में गए। ब्रह्मा के नेतृत्व में सब लोग भगवान् विष्णु की शरण में गए तो उन्होंने परामर्श दिया कि देवताओं को दैत्यों के साथ मिल कर समुद्र का मंथन करके अमृत प्राप्त करना चाहिए। अमृतपान से देवता सवल और अमर हो जाएंगे। उन्होंने ऐसी युक्ति करने का भी विश्वास दिलाया जिस से दैत्य अमृत पान न कर सकेंगे, उन के हिस्से में केवल समुद्र मन्थन का कलेश ही आएगा।

इस पर देवों और दैत्यों ने आपस में परामर्श कर समुद्र मंथन का निर्णय किया। कच्छप की पीठ पर मन्दराचल पर्वत को रख, शेषनाग की रज्जु बना कर यह कार्य आरंभ किया गया। समुद्र से लक्ष्मी निकली, उसे भगवान विष्णु ने ग्रहण कर लिया। उसके बाद रम्भा नामक अप्सरा, ऐरावत नामक हाथी, उच्चैश्रवः नामक अश्व आदि पर इन्द्र ने अधिकार कर लिया। कल्पवृक्ष को देवताओं ने अपने नन्दनवन के लिये ले लिया। इसी प्रकार समुद्र से प्राप्त अन्य रत्नों को लेने के लिए सब इच्छुक थे।

कुछ देर और मन्थन करने के उपरांत जव समुद्र से विष निकला तो उसे ग्रहण करने के लिये कोई भी तत्पर न हुआ। यह बड़ी विषम समस्या थी। जब कोई उपाय न सूझा तो विष्णु ने शिव से प्रार्थना की कि वे ही एक ऐसे देवता हैं जो विष जैसे द्रव्य को स्वीकार कर सकते हैं।

शिव ने विष उठा कर पी लिया। विष को तो वे पचा गये, परन्तु विष की तीव्रता के प्रभाव से उनका कण्ठ नीला पड़ गया। तव से भगवान शिव "नीलकण्ठ" नाम से भी विश्रुत हो गये।

---

1. विष्णु पुराण : अंश ७, अ० ९
2. भागवत पुराण : स्कन्ध ६, अ० ५८
3. महाभारत : आदि पर्व, अ० १८

नृसिंह आख्यान

दितिसुत त्रास त्रसित निसि दिन, प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी ।

—विनयपत्रिका : पद ९३

दितिपुत्र हिरण्य कश्यप दैत्य समाज में सर्वश्रेष्ठ माना जाता था । जब विष्णु ने वराह रूप में उस के भाई हिरण्याक्ष को मार दिया तो उसने विष्णु के नाश का निश्चय किया । उसने अपने सामन्तों को आदेश दिया कि विष्णु को तपस्या, यज्ञ, तप. व्रत, दानादि शुभ कर्मों से शक्ति प्राप्त होती है । अतः तुम लोग धरा पर जाकर तप, यज्ञ, व्रत, दानादि कर्म करने वालों का नाश कर दो । इस पर दैत्यों ने धार्मिक जनता का नाश आरम्भ कर दिया ।

दूसरी ओर स्वयं हिरण्यकश्यप ने अजेय और अमर बनने की इच्छा से कठोर तप किया । ब्रह्मा जी ने जब उसे वर मांगने को कहा तो उसने ब्रह्मा से निर्मित किसी भी प्राणी, अप्राणी, देवता, दैत्य आदि से पृथ्वी, आकाश, कहीं भी अवध्य होने का वर मांग लिया और फिर त्रिलोकी को वश में कर के इन्द्रासन पर बैठ गया ।

जब देवता विष्णु की शरण में गए तो उन्होंने प्रहलाद की रक्षा करने के व्याज से एक खम्भे से नृसिंह रूप में प्रकट हो कर उसे मार दिया ।

अन्यत्र प्रसंग है कि देवताओं को अभय देकर दैत्य का नाश करने का संकल्प कर के नृसिंह रूप धारण कर जब भगवान विष्णु हिरण्यकश्यप की सभा में पहुंचे तो सभी सभासद उन के आश्चर्यमय रूप को देख कर स्तब्ध रह गए । उन से युद्ध करते करते जब हिरण्यकश्यप श्रान्त होने लगा तो नृसिंह ने अपने तीक्ष्ण नखों से उसका उदर विदीर्ण कर दिया ।

---

1. पद्म पुराण : सृष्टिखण्ड, अ० ४२, उत्तर खण्ड, अ० २६५
2. विष्णु पुराण : अंश १, अ० १७, २०
3. भागवत पुराण : स्कन्ध ७, अ० २, १०
4. अग्नि पुराण : अ० ४
5. कूर्म पुराण : अ० ४
6. मत्स्य पुराण : अ० १६१, १६३
7. शिव पुराण : रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, अ० ४३
8 लिंग पुराण : पूर्वार्ध, अ० ९५

नृग आख्यान

तुलसीदास प्रभु को न अभय कियो नृग उद्धरन ।

—विनयपत्रिका : पद २१३

इक्ष्वाकु के पुत्र राजा नृग की गणना रघुवंश के प्रतापी, यशस्वी और दान शील राजाओं में की जाती है। महाभारत काल के अगंराज कर्ण की तरह ही इनकी दान शीलता से सम्बन्धित अनेक रोचक प्रसंगों की चर्चा प्राप्त होती है। दान सम्बन्धी अद्भुत कृत्यों के कारण इन्हें महादानी भी कहा गया है। प्रतिदिन हवन यज्ञ करने के उपरान्त वे गौओं का दान किया करते थे, परन्तु एक दिन दानक्रिया में छोटी सी भूल हो जाने से एक ब्राह्मण द्वारा अभिशप्त होकर उन्हें दीर्घकाल तक दुख उठाना पड़ा।

एक बार किसी दान न लेने वाले तपस्वी ब्राह्मण की एक गाय बिछुड़ कर राजा की गौओं में सम्मिलित हो गई। दूसरे दिन राजा ने अन्य गौओं के साथ उस गाय को भी एक अन्य ब्राह्मण को दान में दे दिया।

जब वह ब्राह्मण राजा से दान में प्राप्त गौओं के साथ अपने घर जा रहा था तो मार्ग में तपस्वी ब्राह्मण ने गौओं के झुण्ड के साथ जाती हुई अपनी गाय को पहचान लिया। जब वह अपनी गाय को पकड़ने को तत्पर हुआ तो दोनों में गाय के स्वामित्व पर विवाद होने लगा। जब विवाद लड़ाई झगड़े की सीमा तक जा पहुंचा तो लोगों ने उन्हें समझा बुझा कर शान्त किया और परामर्श दिया कि उस विवाद का निर्णय केवल राजा नृग ही कर सकते हैं। अतः उन दोनों को न्याय के लिए राजा के पास जाना चाहिए।

राजा ने अनजाने में हुई अपनी भूल के लिए क्षमा मांगी, पर उन्होंने राजा को अपराधी मान कर उसे गिरगिट हो जाने का शाप दिया। शाप के प्रभाव से गिरगिट बन कर वह राजा द्वारिकापुरी के पास एक कुएं में एक हज़ार वर्ष तक पड़ा रहा। भगवान कृष्ण ने उसे कुएं से निकाल कर, उसका उद्धार कर के उसे स्वर्ग में भेजा।

---

1. भागवत पुराण : स्कन्ध १०, अ० ६४

परशुराम-सहस्रबाहु आख्यान

सुनहु राम जेंहि सिवधनु तोरा।
सहसबाहु सम सो रिपु मोरा ॥

—रामचरितमानस : बाल काण्ड, २७०/२

एक बार शिकार के लिए घूमते घूमते राजा कार्त्तवीर्य ऋषि जमदग्नि के आश्रम पर पहुंचे। कामधेनु गाय की सहायता से ऋषि ने राजा और उस की सेना का अपूर्व अतिथि सत्कार किया। राजा ने ऋषि से कामधेनु को मांगा। अस्वीकार करने पर राजा ने बलात् गाय का हरण करना चाहा। कामधेनु भी शक्ति लगा कर सैनिकों को तितर वितर कर स्वर्ग लोक चली गई।

अन्यत्र प्रसंग है कि गाय ने अपने शरीर से बहुत सी सेना उत्पन्न कर राजा की सेना को परास्त किया। जब परशुराम आश्रम में आए और सारा वृत्तान्त सुना तो वह युद्ध के लिए नर्मदा के किनारे गए। कार्त्तवीर्य को युद्ध के लिए ललकारा। कार्त्तवीर्य की पत्नी मनोरमा ने राजा को परशुराम से युद्ध न करने की प्रार्थना की, परन्तु राजा अभिमान के मद में परशुराम से युद्ध करने के लिए उपस्थित हुआ।

भयानक युद्ध के बाद परशुराम ने कार्त्तवीर्य को परास्त कर दिया और उसकी सारी भुजाएं जो एक हजार थीं, काट कर फैंक दीं। कार्त्तवीर्य को सहस्रबाहु होने का वरदान दक्ष प्रजापति से प्राप्त हुआ था।

एक दूसरे प्रसंग के अनुसार आरम्भ में सहस्रबाहु अत्यंत धार्मिक प्रवृत्ति का शासक था, पर जब उसने समस्त पृथ्वी पर अपना शासन स्थापित कर लिया तो यह उच्शृंखल हो गया और अनीति पूर्ण आचरण करने लगा। पृथ्वी की प्रार्थना पर विष्णु ने परशुराम के रूप में अवतार ले कर इस का नाश किया।

अन्यत्र लिखा है कि तप से लौटने पर कामधेनु हरण की घटना सुन कर, जब परशुराम ने अपने पिता के सामने ही सहस्रबाहु के बध की प्रतिज्ञा की, तो जमदग्नि ने इस कृत्य को ब्राह्मण के लिए अनुचित बताया। परशुराम ने ब्रह्मा, शिव तथा अगस्त्य के परामर्श पर तप से कृष्ण को प्रसन्न किया तथा उनसे अजेयता का वर प्राप्त कर सहस्रबाहु का संहार किया।

---

1. महाभारत : वनपर्व, अ० ११५
2. पद्म पुराण : सृष्टिखण्ड, अ० १२
3. मत्स्य पुराण : अ० ४३

परशुराम द्वारा रेणुका के वध का आख्यान

परसुराम पितु आज्ञा राखी।
मारी मातु लोक सब साखी।।

—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, १७३/४

महर्षि जमदग्नि का विवाह इक्ष्वाकु के वंश के राजा रेणु की कन्या रेणुका से हुआ था। रेणुका ने पांच पुत्रों को जन्म दिया जिन के नाम रुमण्वान, सुषेण, वसु, विश्वावसु और परशुराम थे। परशुराम सब से छोटे होने पर भी अत्यंत वीर, तेजस्वी और निर्भीक थे। इन्होंने तपस्या के द्वारा भगवान कृष्ण और शिव से अनेक शक्तियां प्राप्त की थीं। यह अपने पिता की प्रत्येक आज्ञा का पालन करने को तत्पर रहते थे तथा अपने इसी गुण के कारण इन्हें अपने पिता से इच्छामृत्यु और सर्वजयी होने का वरदान मिला था।

परशुराम की माता रेणुका एक दिन नदी में स्नान करने गई। नदी में गन्धर्वों के राजा चित्ररथ को अपनी पत्नी से जल विहार करते देख कर रेणुका भी कामवासना से युक्त हो कर आश्रम में लौटी। जमदग्नि ने योग बल से इस बात को जान कर रेणुका को उसकी निर्लज्जता पर धिक्कारा और फिर अपने चार पुत्रों को रेणुका का वध करने की आज्ञा दी। उन चारों पुत्रों ने जब मातृवध से इन्कार किया तो ऋषि ने उन्हें जड़ होने का शाप दिया।

इसी बीच वहां परशुराम आ पहुंचे। पिता ने उन्हें जब मातृवध की आज्ञा दी तो परशुराम ने अपनी माता का सिर काट दिया। पिता प्रसन्न हो गए। इस के उपरान्त उन्होंने परशुराम की इच्छा जान कर, उस की माता और भाईयों को जीवित कर दिया।

परशुराम को अपार शक्तिशाली होने का वर देने के साथ-साथ उन्हें यह वरदान भी दिया कि न तो परशुराम को माता की हत्या का पाप लगेगा और न ही उसकी माता को इस घटना की स्मृति रहेगी।

---

1. महाभारत : वनपर्व, अ० ११६
2. भागवत पुराण : स्कन्ध ९, अ० ३५

प्रह्लाद आख्यान

नामु जपतु प्रभु कीन्ह प्रसादू ।
भगत सिरोमनि भे प्रह्लादू ॥

—रामचरितमानस : बाल काण्ड, २५/२

प्रह्लाद हिरण्य कश्यप का पुत्र था। जब वह पांच वर्ष का हुआ तो पाठशाला में गुरु की शिक्षा पर कुछ भी ध्यान न देकर अपने सहपाठियों को भगवान की भक्ति व धर्म के उपदेश देने लगा। इस पर गुरु शुक्राचार्य ने उस के पिता से शिकायत की। पिता ने उसे समझाया कि भगवान विष्णु उसका शत्रु है, अतः उसे उसकी उपासना नहीं करनी चाहिए। वह शिव की उपासना करे। इस पर प्रह्लाद ने विष्णु को सर्वश्रेष्ठ बतला कर अपने पिता को भी विष्णु की उपासना करने को कहा।

प्रह्लाद के ऐसे आचरण पर हिरण्यकश्यप बड़ा क्रोधित हुआ और उसने प्रह्लाद के वध की आज्ञा दी। उसे जल में डुबोया गया, पर्वत से गिराया गया, हाथी के पैरों तले फैंका गया और आग में जलाने की भी चेष्टा की गई, परन्तु उसका बाल भी बांका न हुआ। फिर उसके पिता ने जब उसे स्वयं ही तलवार लेकर मारना चाहा तो भगवान विष्णु नृसिंह अवतार धारण कर प्रकट हुए और हिरण्यकश्यप का वध कर प्रह्लाद की रक्षा की।

अन्यत्र प्रसंग है कि जब प्रह्लाद के उपदेशों से, दैत्यों के बालक विष्णु की भक्ति की ओर उन्मुख होने लगे, तो हिरण्यकश्यप क्रोध से जल उठा। वह प्रह्लाद को खम्बे से बांध कर जब उसे मारने को उद्यत हुआ तो भगवान विष्णु उस खम्बे से ही नृसिंहाकार में प्रकट हुए। उन्होंने हिरण्यकश्यप को प्राप्त वरों का स्मरण कर के उसे अपनी जंघाओं पर रख कर, अपने तीक्ष्ण नखों से चीर कर मार दिया।

---

1. विष्णु पुराण : अंश १, अ० १७-२०
2. पद्म पुराण : सृष्टिखण्ड, अ० ४२
3. शिव पुराण : रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, अ० ४३
4. भागवत पुराण : स्कन्द ७, अ० २-१०
5. अग्नि पुराण : अ० ४
6. कूर्म पुराण : पूर्वार्ध, अ० १६
7. लिंग पुराण : पूर्वार्ध, अ० ९५

पृथु आख्यान

पुनि प्रनवउं पृथुराज समाना।
पर अघ सुनइ सहस दस काना ॥

—रामचरितमानस : बाल काण्ड, ३/५

पृथु, राजा वेन का पुत्र था। जब उसका जन्म हुआ तो उस समय धरती पर अन्नादि उत्पन्न होना बन्द हो गया था। धरती सभी औषधियों के बीज स्वयं खा गई थी। प्रजा की रक्षा के लिए गोरूप धारिणी पृथ्वी की ओर पृथु धनुष बाण लेकर दौड़ा। जब पृथ्वी को कहीं भी शरण न मिली, तो उसने पृथु को दुग्ध दोहन के लिये आदेश दिया।

पृथु ने मनु को बछड़ा बनाया और पृथ्वी रूपी गौ से सब औषधियां दुह लीं। इसके बाद देवों, दानवों, पितरों, राक्षसों आदि ने भी अपनी-२ इच्छा अनुसार पृथ्वी का दोहन किया। तब पृथु ने अपने शस्त्रों के प्रभाव से पर्वतों को सम किया जिससे कि वर्षा का जल रुका न रहे। फिर राजा ने नगर, ग्राम आदि बसा कर दोहन में प्राप्त बीजों को भूमि में वपन कर, उसे शस्य श्यामला बना दिया। प्रजा सुख से रहने लगी।

इस राजा ने एक सौ अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किये। जब विष्णु ने राजा से वर मांगने को कहा, तो उसने अन्य किसी वस्तु की इच्छा न कर, विष्णु का यश सुनने के लिये एक हजार कान मांगे। भगवान ने उसके कानों में दस हजार कानों की श्रवण शक्ति होने का वरदान दिया।

अन्यत्र प्रसंग है कि पृथु द्वारा आयोजित सौवें यज्ञ से आशंकित होकर इन्द्र ने यज्ञ का घोड़ा चुरा लिया। पृथु ने इन्द्र से घोड़ा छीन कर जब उसे भस्म करना चाहा तो ब्रह्मा ने दोनों में मित्रता करवा दी। अन्त में जब विष्णु और इन्द्र ने पृथु को वर देना चाहा तो उसने भगवद् यश सुनने के लिए दस हजार कान मांगे।

---

1. ब्रह्म पुराण : अ० ४
2. पद्म पुराण : भूमिखण्ड, अ० २७-२८
3. विष्णु पुराण : अंश १, अ० १३
4. भागवत पुराण : स्कन्ध ४, अ० १५-२४
5. अग्नि पुराण : अ० १८
6. वामन पुराण : अ० ४७-४८
7. मत्स्य पुराण : अ० १०

बालि द्वारा रावण दमन आख्यान

अंगद नाम बालि कर बेटा।
तासों कबहूं भई ही भेटा॥

—रामचरितमानस : लंका काण्ड, २०/२

लंकापति रावण अपने समय का शक्तिशाली राजा था। उसने कठोर तप करके ब्रह्मा को प्रसन्न किया। उनके वर से अतुल पराक्रमी बन कर, वह अनेक दूसरे राजाओं पर आक्रमण कर, उन्हें अपने वश में करने लगा। उसने भगवान शिव की भी तपस्या की और उनकी कृपा से अजेय हो गया। उसके पुत्र मेघनाथ ने पृथ्वी के वीरों को ही नहीं देवराज इन्द्र को भी विजित कर लिया था। अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए रावण समय-समय पर विजय यात्रा करता रहता था।

यही लंकापति रावण एक बार दिग्विजय के लिये निकला। उन दिनों वालि किष्किन्धा का राजा था और अपनी शक्ति और वीरता के लिए ख्यात् हो चुका था। रावण वालि को विजित करने किष्किन्धा आया। वालि उस समय सागर तट पर सन्ध्या कर रहा था। रावण उसके पास पहुंचा और ज्यों ही वालि को पकड़ने लगा, तभी वालि ने उसे पकड़ कर कांख में दबा लिया। फिर उसी अवस्था में शेष तीनों समुद्रों पर आकाशमार्ग से जाकर सन्ध्यावन्दन किया।

किष्किन्धा आकर उसने रावण को मुक्त कर, उससे परिचय पूछा। रावण को बड़ी लज्जा आई। उसने अपना नाम बता कर वालि से मित्रता कर ली। वालि ने भी उसे अपने भाई सुग्रीव की तरह, स्नेह का पात्र बना कर एक मास तक, अपने अतिथि के रूप में अपने घर रखा और फिर लंका के लिये विदा किया।

अन्यत्र प्रसंग है कि वालि ने रावण को कांख से निकाल कर अंगद के पालने के नीचे बांध दिया था। अंगद बालक्रीड़ा करते समय रावण को लातों से मारा करता था।

---

1. वाल्मीकि रामायण : उत्तर काण्ड, पूर्वार्ध, सर्ग ३४
2. ब्रह्माण्ड पुराण : मध्यभाग, उपोदघात, पाद ३, अ० ७

बालि-सुग्रीव आख्यान

नाथ बालि अरु में दोउ भाई।
प्रीति रही कछु बरनि न जाई॥

—रामचरितमानस : किष्किन्धा काण्ड, ५/१

रामायण में वालि को इन्द्र का तथा सुग्रीव को सूर्य का पुत्र वताया गया है। परन्तु अन्यत्र लिखा है कि व्याघ्र का पुत्र शरभ, शरभ का पुत्र शुक्र और शुक्र का पुत्र ऋक्षराज था। ऋक्षराज का विवाह विरजा से हुआ। इसी विरजा से इन्द्र द्वारा बालि तथा सूर्य द्वारा सुग्रीव उत्पन्न हुआ। बालि का मन्त्री तार था जिसकी रुपवती कन्या तारा से बालि ने विवाह किया।

दुन्दुभि नामक दैत्य तारा के कारण बालि से शत्रुता रखता था। एक बार आधी रात को उसने बालि को ललकारा। दोनों भाईयों ने उसका पीछा किया। वह एक कन्दरा में प्रविष्ट हो गया। बालि ने सुग्रीव को कन्दरा द्वार पर खड़ा किया और स्वयं दैत्य को मारने भीतर चला गया। एक वर्ष वीत गया, एक दिन कन्दरा से लहू की धार निकली। सुग्रीव वालि को मरा जान, कन्दरा द्वार को एक विशाल शिला से ढक कर, किष्किन्धा आकर राजा बन गया। तारा को भी उसने अपनी पत्नी वना लिया।

कुछ काल के उपरान्त जव बालि दैत्य को मार कर, राजधानी में लौटा तो सुग्रीव को राजसिंहासन पर आसीन देखकर क्रोध से जल उठा। पहले तो उसने सुग्रीव की निर्मम पिटाई की और फिर उसे अपने राज्य से निकल जाने का आदेश दे दिया।

सुग्रीव प्राणरक्षा के लिये मतंग नामक ऋषि के आश्रम पर ऋष्यमूक पर्वत पर रहने लगा। वालि द्वारा दुन्दुभि के मृत शरीर को दूर फैंके जाने पर, लहू की कुछ बून्दें मतंग के आश्रम पर गिरी थीं। इसी से मतंग ने वालि को शाप दिया था कि यदि वालि उस आश्रम के आसपास एक योजन तक भी आएगा, तो मर जाएगा।

---

1. वाल्मीकि रामायण : वाल काण्ड, सर्ग १७, उत्तर काण्ड, सर्ग १
2. ब्रह्माण्ड पुराण : मध्यभाग, उपोदघात, पाद ३, अ० ७

भृगु-विष्णु आख्यान

सारंग कर सुदंर निषंग सिलीमुखाकर कटि कस्यो ।
भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो ॥

—रामचरितमानस : लंका काण्ड, ८५/२

ब्रह्मा, विष्णु और महेश में सर्वश्रेष्ठ कौन है, इस बात का निर्णय करने के लिये महर्षियों ने भृगु को नियुक्त किया। भृगु परीक्षा के लिए सब से पहले शिव के यहां गए। शिव उस समय अपने घर के अन्दर देवी के साथ रमण में लीन थे। भृगु के आने को जान कर भी वह बाहर नहीं आए। भृगु ने शिव को लिंग स्वरुप होने तथा ब्राह्मणों द्वारा अपूज्य होने का शाप दिया।

इस के अनन्तर ब्रह्मा जी की परीक्षा करने के लिए भृगु ब्रह्मा जी के निवास स्थान पर गए। उन्होंने अत्यंत आदर पूर्वक उन्हें नमस्कार किया। ब्रह्मा अपने ही विचारों में खोए रहे। उन्होंने न तो भृगु को नमस्कार का उत्तर दिया और न ही उन का स्वागत सत्कार किया। ब्रह्मा के इस अभिमान पूर्ण व्यवहार के कारण भृगु ने उन्हें लोक में अपूज्य होने का शाप दिया और चले गए।

इस के बाद भृगु विष्णु के पास गए। उस समय विष्णु शेषशय्या पर निद्रालीन थे। इन्होंने जाते ही विष्णु के वक्ष पर लात का प्रहार करके उन्हें जगाया। विष्णु ने ऋषि के पादस्पर्श को अपने लिये कल्याणकारी बताते हुए, बड़ी नम्रता से भृगु का स्वागत-सत्कार किया। तब भृगु ने विष्णु की धीरता, गंभीरता और आदर्श चरित्र को देख कर उन्हें लोक में ब्राह्मणों द्वारा पूजित होने का वर प्रदान किया। इस प्रकार परीक्षा कर के भृगु महर्षियों के पास गए और विष्णु को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया।

अन्यत्र लिखा है कि भृगु ने अपने आचरण से त्रिदेवों में तामस प्रवृत्तियों की परीक्षा की। उन्हें ब्रह्मा और शिव में तामस भाव दिखाई दिए और विष्णु में सात्विक। अतएव उन्होंने विष्णु को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया।

---

1. पद्म पुराण : उत्तर खण्ड, अ० २८२
2. भागवत पुराण : स्कन्ध १०, अ० ८९

महिषासुर आख्यान

तेज कृसानु रोष महिषेसा।
अघ अवगुन धन धनी धनेसा ।।

—रामचरितमानस : बाल काण्ड, ३/३

महिषासुर रंभ का पुत्र था। उस ने सारी पृथ्वी को जीतने के उपरान्त इन्द्र से युद्ध कर के उसको पराजित किया और स्वर्ग पर अधिकार कर लिया। एक बार शतशृंग पर्वत पर आद्याशक्ति तप में लीन थी। नारद ने उनके सौन्दर्य की चर्चा महिषासुर से की। वह देवी पर कामासक्त हुआ तो उस के मन्त्री ने उसे ऐसा करने से रोका, परन्तु इस पर भी दैत्यराज ने विवाह के लिए देवी के पास अपना दूत भेजा।

दूत ने देवी से दैत्यराज के जन्म, बल, वैभव और पराक्रम की चर्चा करते हुए, उस से विवाह करने का निवेदन किया। देवी के इन्कार करने पर महिषासुर ने युद्ध द्वारा देवी को प्राप्त करने का यत्न किया। महिषासुर अपने सेनापतियों के मारे जाने के बाद, स्वयं अनेक मायामय शरीरों को धारण कर, देवी से लड़ा और अन्त में देवी के हाथों मारा गया।

किसी पुराण में पार्वती को ही आद्याशक्ति माना गया है और अन्यत्र प्रसंग है कि महिषासुर से पराजित देवता विष्णु के समीप गये। विष्णु के परामर्श पर सभी देवताओं ने अपनी अपनी शक्ति को एक स्थान पर संचित किया, जिस से भगवती उत्पन्न हुईं। सभी ने उन्हें अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र समर्पित किए। तब देवी ने इस दैत्य का नाश किया।

यह भी कथा है कि एक बार जब दिति के सभी पुत्र देवताओं द्वारा मार दिए गए तो वंशरक्षा के लिए दिति ने अपनी एक पुत्री को तप करने का आदेश दिया। उसे कोई पहचान न ले, इस उद्धेश्य से उसने महिषि का रूप धारण कर तप किया जिस से उसे देवजयी पुत्र की प्राप्ति हुई। यही महिषासुर था।

---

1. पद्म पुराण : सृष्टिखण्ड, अ० ३०
2. शिव पुराण : उमासहिता, अ० ४६
3. स्कन्द पुराण : महेश्वर खण्ड, ब्रह्म खण्ड, नागर खण्ड, प्रभास खण्ड
4. वराह पुराण : अ० ९५
5. वामन पुराण : अ० १७-२०

मधुकैटभ आख्यान

हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान ।
जेहिं मारे सोइ अवतरेउ कृपासिन्धु भगवान ।।

—रामचरितमानस : लंका काण्ड, ४८

एक बार भगवान विष्णु शेषनाग पर निद्रालीन थे और ब्रह्मा उन के नाभि कमल पर आसीन थे। वहां मधु और कैटभ नामक दो असुर आए। उन्होंने अपने चलने-फिरने से समुद्र को भी क्षुब्ध कर दिया। वहां उन्होंने ब्रह्मा को सृष्टि निर्माण कार्य में प्रवृत्त देखा तो उससे युद्ध करने की मांग करने लगे। ब्रह्मा ने विष्णु को जगाया।

जब विष्णु लम्बे समय तक युद्ध कर के भी उन्हे नहीं हरा पाए तो उन्होंने भगवती की स्तुति की, जिसकी माया से प्रभावित दैत्यों को जब विष्णु ने वर मांगने को कहा तो अहंकार मद से मत्त, उन असुरों ने विष्णु से कहा कि वे किसी से वर लेते नहीं, अपितु दूसरों को वर देते हैं। अतः वे ही उन से वर मांग ले।

असुरों के ऐसा कहने पर, भगवान विष्णु ने लोक कल्याण के लिए अपने हाथों से उन की मृत्यु का वर मांगा। उन दैत्यों ने अपने वचन का पालन करते हुए, विष्णु को वह वर दे दिया, पर इस के साथ यह शर्त रखी कि उन की मृत्यु ऐसे स्थल पर हो जिस स्थल पर कोई भी न मरा हो। तब भगवान विष्णु ने अपनी जंघाओं पर उन दोनों का वध किया।

अन्यत्र लिखा है कि विष्णु की कान की मैल से उत्पन्न मधु और कैटभ ने जल का आधार और अपनी उत्पत्ति का कारण ढूंढना आरंभ किया। इस क्रम में उन्हें वाग्बीज नामक शक्ति का मन्त्र सुनाई दिया जिस का जप कर के उन्होंने शक्ति से इच्छामृत्यु का वर प्राप्त कर लिया। अतः विष्णु भी उन्हें तभी मार पाए, जब उनसे वचन ले लिया।

---

1. महाभारत : वनपर्व, अ० २०३, शान्तिपर्व अ० ३४८
2. पद्म पुराण : सृष्टि खण्ड, अ० ३७
3. शिव पुराण : उमासंहिता, अ० ४५
4. मार्कण्डेय पुराण : अ० ७८ (दुर्गा सप्तशती प्रसंग)
5. ब्रह्मवैवर्त पुराण : ब्रह्म खण्ड, अ० ४
6. कूर्म पुराण : पूर्वार्ध, अ० १०
7. मत्स्य पुराण : अ० १७०

मारुति उत्पत्ति आख्यान

कहहि रीछपति सुनु हनुमाना ।
का चुप साधि रहेहु बलवाना ।।

—रामचरितमानस : किष्किन्धा काण्ड, २९/२

पुंजिकस्थला नामक अप्सरा किसी ऋषि के द्वारा शापग्रस्त होकर सुन्दर वानरी बन कर पृथ्वी पर आ गई। उस का मिलन सुमेरु के राजा कपि केसरी के साथ हुआ। इस वानरी अंजना को केसरी ने अपनी रानी बनाया।

एक बार पर्वत शिखर पर अंजना मानव रूप धारण कर पति से रमण कर रही थी तो पवन ने भी उस के सौन्दर्य से काम मोहित हो कर उसका आलिंगन किया। अंजना को गर्भ रह गया। पवन के संयोग से उस ने जिस पुत्र को जन्म दिया वे हनुमान थे।

एक दिन शिशु हनुमान माता की अनुपस्थिति में भूख के कारण सूर्य को फल समझ कर, उसे पकड़ने के लिए उछल कर, आकाश तक जा पहुंचे। सूर्य ने उसे यह समझ कर कि एक तो यह बच्चा है और दूसरा बड़ा होने पर देवकार्य करेगा, उसे भस्म नहीं किया। उसी दिन राहु भी सूर्य को ग्रहण करने के लिए सूर्य के पास पहुंचा। वहां हनुमान को देख कर राहु ने इन्द्र की सहायता मांगी। जब हनुमान राहु को ही पकड़ने लगा तो उस ने इन्द्र को पुकारा। जब इन्द्र आया तो हनुमान उस के ऐरावत नामक हाथी को सुन्दर फल समझ कर उस पर झपटे। इस पर इन्द्र ने वज्राघात किया, जिस से हनुमान मूर्छित हो पर्वत पर गिरे। इस पर पवनदेव ने वहना बन्द कर दिया। त्रिलोकी में हा हा कार मच गया तो ब्रह्मा आदि देवताओं ने हनुमान को स्वस्थ करके उन्हें अनेक वर प्रदान किये। इन्द्र ने उन्हें इच्छामृत्यु का वर दिया।

हनुमान कुछ और बड़े हुए तो और शरारतें करने लगे। ऋषि-मुनियों को सताने लगे। ब्रह्मा, इन्द्र आदि से वर प्राप्त होने के कारण, वे अपने सामने किसी को कुछ न समझते थे। बालचापल्य के कारण वे जब ऋषियों को अधिक सताने लगे तो अंगिरा और भृगुवंशी ऋषियों ने इन्हें अपनी शक्ति भूल जाने का शाप दिया। उन्होंने कहा जब तुम्हें कोई तुम्हारा शक्ति का स्मरण कराएगा, तभी तुम्हें पूर्वबल प्राप्त हो जाएगा।

फिर हनुमान शक्तिहीन होकर, सुग्रीव के साथ रहने लगे। शाप के कारण शक्तिहीन होने से ही यह सुग्रीव की कोई सहायता नहीं कर सके।

अन्यत्र प्रसंग है कि हनुमान शिव के वीर्य से गौतमपुत्री अंजनी के गर्भ से

उत्पन्न शिव का ही अवतार थे। एक दूसरे प्रसंग में बताया गया है कि केसरी की पुत्रहीन पत्नी मतंग ऋषि के परामर्श पर वायुदेव की घोर तपस्या करके वर रूप में उन्हें ही पुत्र रूप में प्राप्त करती है। इस के अनुसार वायुदेव ही अंजनी के गर्भ से हनुमान के रूप में प्रकट हुए थे।

---

1. वाल्मीकि रामायण : किष्किन्धा काण्ड, सर्ग ६६
2. आनन्द रामायण : सार काण्ड, सर्ग १३

ययाति आख्यान

तनय जजातिहि जौबनु दयऊ।
पितु आज्ञा अघ अजसु न भयऊ॥

रामचरित मानस : अयोध्या काण्ड, १७२/४

यह राजा नहुष के पुत्र थे। इनकी दो रानियां थीं—देवयानी और शर्मिष्ठा। पहली दैत्यगुरू शुक्राचार्य की पुत्री थी और दूसरी दैत्यराज वृषपर्वा की। शुक्राचार्य ने शर्मिष्ठा के साथ संभोग करने से राजा को इसलिए रोक दिया था, क्योंकि शर्मिष्ठा ने उनकी पुत्री देवयानी को अन्धे कुएं में गिरा दिया था और दूसरा वह देवयानी की दासी के रूप में ही ययाति से विवाहित हुई थ:।

ऋतुकाल में शर्मिष्ठा ने जब राजा से बहुत विनय की, तो राजा ने उससे सम्भोग किया और उसे गर्भ रह गया। जब देवयानी को पता चला तो उस ने क्रोधित होकर अपने पिता को सारी बात बताई। शुक्राचार्य ने राजा को वृद्ध होने का शाप दिया।

शापग्रस्त होने पर ययाति ने कहा कि वह युवावस्था में देवयानी से परि-तृप्त नहीं हुआ है, अतः जिस प्रकार बुढ़ापा उसमें प्रविष्ट न हो सके, ऐसा उपाय बताएं। इस पर शुक्राचार्य ने कहा कि उनके आशीर्वाद से, वह अपना बुढ़ापा किसी को देकर यौवन प्राप्त कर सकता है।

राजा के पांच पुत्र थे। तीन देवयानी से और दो शर्मिष्ठा से। पर केवल देवयानीसुत पुरू ने ही पिता के बदले जराग्रस्त होना स्वीकार किया। राजा ने एक हजार वर्ष तक सांसारिक भोग किए, फिर भी तृप्ति न हुई तो उसे वैराग्य हुआ। उसने पुरू का यौवन वापस किया, उसे राज्य दिया और स्वयं तपस्या करने चला गया।

ययाति की कथा थोड़े-बहुत अन्तर के साथ दस पुराणों में मिलती है।

---

1. ब्रह्म पुराण : अध्याय १२
2. पद्म पुराण : भूमि खण्ड अध्याय ६४-८३
3. विष्णु पुराण : अंश ४, अध्याय १०
4. भागवत पुराण : स्कन्ध ९, अध्याय १८-१९
5. लिंग पुराण : पूर्वार्ध, अध्याय ६६-६७
6. मत्स्य पुराण : अध्याय २७-४२
7. महाभारत : आदिपर्व : अध्याय ६९-७०

रन्तिदेव परीक्षा आख्यान

रन्तिदेव बलि भूप सुजाना।
सहेउ धरम धरि संकट नाना॥

—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, ९४/२.

राजा भरत की वंशपरम्परा में रन्तिदेव नामक राजा हुआ। वह अत्यन्त दानी था। उसके द्वार से कोई भी अतिथि खाली हाथ नहीं लौटता था। कहते हैं इसके द्वार किए गये यज्ञों में बलिकर्म इतनी अधिक मात्रा में हुआ कि उन पशुओं के चर्म से चर्मण्वती नदी का उदय हुआ। यह राजा इतना अधिक दानी था कि कभी-कभी उसे सपरिवार भूखे ही रहना पड़ता था।

एक वार अनेक दिनों तक निराहार रहने के वाद जब वह भोजन करने बैठा तो उसी समय एक ब्राह्मण अतिथि को उसे भोजन कराना पड़ा। जब बचा हुआ भोजन राजा खाने को उद्यत हुआ तो तभी एक शूद्र एक कुत्ते के साथ आ गया जिसने अपने और कुत्ते के लिये भोजन की मांग की। राजा ने शेष भोजन उन दोनों को दे दिया।

रन्तिदेव अव जल पीकर ही अपनी क्षुधा शान्त करना चाहता था, किन्तु उसी समय एक तृषार्त चाण्डाल उपस्थित हुआ और उसने जल की मांग की। मरणासन्न राजा ने वह जल उस चाण्डाल को दे दिया। ठीक उसी समय ब्रह्मा, विष्णु और महेश वहां प्रकट हो गए जो उन रुपों में राजा की दान-शक्ति की परीक्षा करने आए थे। राजा ने अपनी पत्नी और पुत्र सहित वहीं प्राण त्याग दिये और वे सब आवागमन के चक्र से मुक्त हो गए।

अन्यत्र लिखा है कि राजा रन्तिदेव ने तप से इन्द्र को प्रसन्न करके यह वर प्राप्त कर लिया था कि उसके घर में सदैव अन्न तथा दूसरी आवश्यक सामग्री की कभी कमी न हो, उसे कभी भी किसी से कोई वस्तु मांगनी न पड़े, तथा उसके घर से कभी कोई अतिथि अथवा याचक खाली हाथ न लौटे।

1. महा भारत : शान्तिपर्व, अ० २९,
2. द्रोणपर्व, अ० ६७,
3. अनुशासनपर्व, अ० १२३.
4. भागवतपुराण : स्कन्ध, ९, अ० २१.

रावण आख्यान

राज करत विनु काज हीं करहिं कुचालि कुसाज।
तुलसी ते दसकंध ज्यों जइहै सहित समाज।।

—दोहावली : ४१६.

रावण लंका का प्रसिद्ध राजा था। यह विश्रवा का पुत्र था जिसका जन्म कैकसी के उदर से हुआ था। ऋषिपुत्र होने पर भी अपने कुकृत्यों के कारण इसकी गणना 'राक्षसों' में की जाने लगी। इसने ऋषि-मुनियों को संताना आरम्भ किया और विना कारण ही उनकी तपस्या और भक्ति में विघ्न उपस्थित करने लगा।

वनवास के समय राम-लक्ष्मण द्वारा शूर्पगखा को विरुप करने पर रावण ने सीता-हरण की योजना बनाई। उसने मारीच को अद्भुत मृग के वेष में राम की पर्णकुटी के पास भेजा। सीता के अनुरोध पर मृग का पीछा करते-करते राम के दूर निकल जाने पर उसने सीता का हरण किया और उसे लंका के अशोकवन में ले गया।

राम के विशेष दूत हनुमान सीता की खोज में लंका जा पहुंचे। उन्होंने रावण को समझाया कि वह सीता को लौटा कर श्री राम से समझौता करले। पर उसने कहा कि वह अपनी बहिन शूर्पणखा के अपमान का अवश्पमेव बदला लेगा। उसने जब श्री राम की निन्दा की तो हनुमान के विरोध करने पर, उस की पूंछ में आग लगा कर उसे दण्डित करना चाहा।

अन्त में जब रावण सीता को बार-बार त्रास देने लगा और उसे विवाह के लिए विवश करने लगा और दूसरी तरफ राम की सेना भी समुद्र तट पर आ पहुंची, तो विभीषण द्वारा इस अनैतिक कार्य एवं राम के साथ संभावित युद्ध से रोकने पर, रावण ने विभीषण को घर से निकाल दिया और फिर युद्ध में अपने समाज सहित विनाश को प्राप्त हुआ।

---

1. रामायण : उत्तर काण्ड, सर्ग २६.
2. अग्नि पुराण : अ० ७.
3. भागवत पुराण : ९/१०/१०-११.
4. ब्रह्मवैवर्त पुराण : कृष्णजन्म खण्ड, ९/३२.
5. पद्म पुराण : पाताल खण्ड.

रावण-सहस्रबाहु आख्यान

एक बहोरि सहसभुज देखा।
धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा॥
कौतुक लागि भवन लै आवा।
सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा॥

—रामचरितमानस : लंका काण्ड, २३/८.

सहस्रवाहु, राजा कृतवीर्य का पुत्र था। दत्तात्रेय से प्राप्त वरों के कारण समस्त पृथ्वी को जीत कर वह चक्रवर्ती राजा बन गया था। इन्हीं दिनों रावण भी अपनी शक्ति और शौर्य से अन्य देशों को अपने अधीन करने में लगा हुआ था। रावण कार्त्तवीर्य से युद्ध करने लंका से चलकर उसकी राजधानी माहिष्मती पहुंचा।

सहस्रवाहु उस समय अपनी स्त्रियों के साथ नर्मदा में जल-क्रीडा कर रहा था। रावण भी नर्मदा तट पर पहुंच गया। सहस्रबाहु को ढूढंने से पहले रावण नर्मदा में स्नान करके, शिव की आराधना के लिये पूजा की सामग्री ले कर नदी तट पर बैठ गया। तभी जल क्रीडा करते करते सहस्रबाहु ने अपनी भुजाओं से नदी प्रवाह को रोक दिया। इससे जल की धारा उलटी वहने लगी। नदी तट पर जल बढ़ गया। नदी तट पर रखी हुई रावण की पूजा सामग्री वह गई।

रावण को जब पता चला कि यह सब सहस्रबाहु की करनी है, तो वह युद्ध के लिए उसके पास पहुंचा। युद्ध में सहस्रबाहु ने अकेले ही रावण की सेना को पराजित करके, गदा के आघात् से रावण को घायल कर बांध लिया। रावण को बांध कर वह अपनी राजधानी में ले गया। बाद में पुलस्त्य के कहने पर रावण बन्धन मुक्त हुआ और उसकी सहस्रबाहु से मित्रता भी हो गई।

यह भी प्रसंग है कि रावण के बन्दी हो जाने पर, उसके सेनापतियों ने उसे छुड़ाने का असफल प्रयत्न किया। सहस्रबाहु ने रावण के गले में रस्सी बांध कर, खिलौने की तरह उसे अपने पुत्र को खेलने के लिए दे दिया। पुलस्त्य के अनुरोध पर ही वह बंधन मुक्त हुआ।

---

1. वाल्मीकि रामायण : उत्तर काण्ड, अ० ३१-३३.
2. विष्णु पुराण : अंश ४, अ० ११.
3. भागवत पुराण : स्कन्ध ९, अ० १५.
4. मत्स्य पुराण : अ० ४३.

रूद्र देह हनुमान

रूद्रदेह तजि नेहबस संकर भे हनुमान।
—दोहावली, १४२.

हर ते भे हनुमान।
—दोहावली, १४३.

हनुमान श्रीराम के प्रिय भक्तों में सर्वशिरोमणि माने जाते हैं। कहीं पर इन्हें पवनपुत्र बताया गया है और कहीं पर इन्हें शिव का अवतार लिखा है। प्रथम प्रसंग के अनुसार जब विष्णु ने दशरथ के पुत्र के रूप में अवतार लेने का निश्चय किया, तो ब्रह्मा ने सभी प्रमुख देवताओं को वानर रूप में शक्तिमान पुत्र उत्पन्न करने का आदेश दिया था। इसी आदेश के कारण इन्द्र ने वालि को, सूर्य ने सुग्रीव को और वायु ने हनुमान को उत्पन्न किया था।

शिव पुराण में हनुमान को शिव का अवतार बताया गया है। एक बार विष्णु ने मोहिनी रूप धारण किया तो शिव उस रूप को देखकर, इतने आसक्त और कामातुर हो गए कि उनका वीर्य स्खलित हो गया। इस वीर्य को देवकार्य के लिये उपयोगी जानकर, सप्तर्षियों ने उसे पत्ते पर संचित रखा। उपयुक्त अवसर आने पर उन्होंने उस वीर्य को कानों द्वारा अंजनी के गर्भ में प्रविष्ट कर दिया। इसी से हनुमान का जन्म हुआ। इस प्रकार शिव ही हनुमान के रूप में अवतरित हुए थे।

अन्यत्र लिखा है कि केसरी की पत्नी अंजनी के, जब बहुत काल बीत जाने पर भी कोई पुत्र नहीं हुआ, तो वह धर्म-सम्बन्धी कार्यों में अधिक रुचि लेने लगी। इसी क्रम में जब उसकी भेंट मतंग नामक ऋषि से हुई तो उन्होंने पति-पत्नी को वायु देवता की तपस्या करने का निर्देश दिया। अंजनी की घोर तपस्या से प्रसन्न होकर जब वायुदेव प्रकट हुए, तो अंजनी ने उनसे उनके समान ही शक्तिशाली पुत्र की कामना की। वायुदेव ने अंजनी की कामना पूर्ण करने के लिए, स्वयं ही उसके पुत्र में जन्म लेना स्वीकार कर लिया।

---

1. पद्म पुराण : पाताल खण्ड, अ० १४४.
2. शिव पुराण : शतरुद्र संहिता, अ० २०.
3. स्कन्द पुराण : वैष्णव खण्ड, अ० ३९.

वराह आख्यान

सोक कनकलोचन मति छोनी।
हरि बिमल गुनगन जग जोनी ।।

—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, २९६/२

एक बार स्वायम्भुव मनु ने ब्रह्मा से कहा कि सब जीवों का निवास स्थान पृथ्वी जल में डूब गई है, अतः उनकी भावी प्रजा अब कहां रहेगी। यह सुन कर ब्रह्मा ने स्वयं ही विराट रूप धारण करके पृथ्वी का उद्धार किया था।

अन्यत्र प्रसंग है कि हिरण्याक्ष पृथ्वी को उठाकर जल में ले गया था। पृथ्वी को अथाह जल में डूबी देखकर ब्रह्मा विचार मग्न हो गये कि—"इसे मैं कैसे निकालूं"। उन्होंने विष्णु का स्मरण किया। उसी समय अकस्मात् उनके नासाछिद्र से अंगूठे के बराबर के आकार का एक वराह शिशु निकला, और ब्रह्मा जी के देखते-देखते वह क्षण में ही बड़ा होकर, हाथी के बराबर हो गया। ब्रह्मा जी और मरीचि आदि मुनिजन अभी उसके बारे में सोच ही रहे थे, कि वह पर्वताकार होकर गर्जने लगा और जल में प्रविष्ट हो गया।

अपने तेज खुरों से जल को चीरते हुए, अपार जल राशि के उस पार रसातल में उस वराह ने, समस्त जीवों की आश्रयभूता पृथ्वी को देखा। फिर वह जल में डूबी हुई पृथ्वी को अपनो दाढ़ों पर उठाकर, रसातल के ऊपर आने लगा। जल से बाहर आते समय उसके मार्ग में, महापराक्रमी हिरण्याक्ष ने जल के भीतर ही गदा से उस पर आक्रमण किया। इससे क्रोधित हो वराह ने हिरण्याक्ष को मार दिया, और अपने सफेद दांतों की नोक पर पृथ्वी को धारण कर जल से बाहर निकाला।

वारह के उस रूप को देख कर, ब्रह्मा, मरीचि आदि को निश्चय हो गया कि यह भगवान ही हैं। तब वे हाथ जोड़ कर वेद-वाक्यों से उनकी स्तुति करने लगे। इसके पश्चात् भगवान वराह ने अपने खुरों से जल को स्तंभित कर, उस पर पृथ्वी को स्थापित कर दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये।

अन्यत्र प्रसंग है कि ब्रह्मा ने वराह का रूप धारण किया था। कहीं-कहीं यह भी लिखा है कि अपने अन्धक नामक पुत्र के राज्य के लिए हिरण्याक्ष पृथ्वी को पाताल में ले गया था। इसी कारण वह भगवान विष्णु से मारा गया।

---

1. पद्म पुराण : सृष्टि खण्ड, अ० ७३
2. भागवत पुराण : स्कन्ध ३, अ० १३-१५
3. शिव पुराण : रुद्र संहिता, अ० ४२
4. वराह पुराण : अ० १४०

वाल्मीकि आख्यान

उलटा नाम जपत जगु जाना।
वालमीकि भए ब्रह्म समाना॥
—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, १९३/४

वाल्मीकि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक प्रसंग मिलते हैं, और वाल्मीक बनने से पहले उन्हें अनेक नामों से संबोधित किया गया है। तुलसी ने इस आख्यान का वर्णन अध्यात्म रामायण के अनुसार किया है, जो इस प्रकार है :-

यह जन्म से ब्राह्मण थे। देश में अकाल के कारण उन्हें बाल्यावस्था से ही वन में रहना पड़ा। वहीं भीलों और किरातों के साथ उनका पालन-पोषण हुआ। अतः इन लोगों के आचार-विचार उनमें आ गये। इनका विवाह एक शूद्रा से हुआ, जिससे अनेक बच्चे हुए। इन सब के पोषण के लिये यह चोरी और राहजनी करते-करते पूरे व्याध बन गए।

एक बार उसने सप्तर्षियों को भी लूट लिया, तो उन्हें इस पर दया आई। उन्होंने इससे पूछा कि क्या जिस पाप को वह करता है, उसके भागीदार परिवार के सभी सदस्य होंगे, या वह अकेला ही। उन्होंने उसे अपने घर से पूछ आने को कहा। परिवार के जनों ने अपने को उसके पापों का भागी नहीं बताया, तो व्याध की आंखें खुल गईं। उसने मुनियों से अपने उद्धार का उपाय पूछा। मुनियों ने उसे राम-राम जपने को कहा। संस्कारवश जब वह ऐसा नहीं कर सका, तो उसे मरा-मरा जपने को कहा।

ऋषि चले गए। व्याध जप करता रहा और तेरह वर्ष तक राम के नाम का उल्टा जप करते-करते वह तदाकार हो गया। उसे अपने शरीर की सुध-बुध भी न रही। बहुत समय बाद पुनः मुनि उस मार्ग पर आए। तब वह व्याध बांबी से ढक गया था। ऋषियों के बुलाने पर वह बाहर आया। वालमीक से पुनर्जन्म होने के कारण, ऋषियों ने उसका नाम वालमीक रखा, और रामायण जैसा महाकाव्य लिखने का वरदान दिया।

---

1. अध्यात्म रामायण : अयोध्या काण्ड, सर्ग ६
2. स्कन्द पुराण : अवन्ती खण्ड, अ० २४,
3. प्रभास खण्ड, प्रभासक्षेत्र माहात्म्य, अ० २७८,
4. वैष्णव खण्ड, वैशाखमास माहात्म्य, अ० १७.

वामन-बलि आख्यान

सोइ कृपालु केवटहि निहोरा।
जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा ॥

—रामचरितमानस : अयोध्या कणड, १००/२

बलि प्रहलाद् का पौत्र और विरोचन का पुत्र था। विरोचन के बाद इसने देवताओं को जीत कर, स्वर्ग पर अधिकार कर लिया। इस पर देव-माता अदिति ने व्रत, तप आदि से भगवान विष्णु को प्रसन्न करके, यह वचन ले लिया, कि वे उसके पुत्र के रूप में प्रकट होंगे। इसी बीच बलि ने और अधिक शक्ति प्राप्त करने की इच्छा से, एक यज्ञ करना आरम्भ किया।

यज्ञ पूर्ण करके, कहीं बलि सदा के लिए देवताओ को स्वर्ग से न निकाल दे, यह सोच भगवान विष्णु वामन-रूप में यज्ञ भूमि में ही बलि के पास गये। बलि उनके तेज पर मुग्ध हो गया और उसने उनकी पूजा करके वर मांगने को कहा। गुरू शुक्राचार्य ने वामन का रहस्य बलि को बताया और उसे दान देने से रोकने की चेष्टा की, पर बलि न माना।

वामन ने तीन पग भूमि दान में मांगी। बलि ने जल लेकर तीन पग भूमि दान कर दी। वामन ने तत्काल विराट रूप धारण कर लिया। एक पग से पृथ्वी, दूसरे से स्वर्गादि लोक नाप लिए और जब तीसरे पग के लिए कुछ न बचा, तो बलि ने एक पैर के बदले अपना शरीर नपा दिया। तब भगवान ने उसे बन्दी बनाया। प्रहलाद की प्रार्थना पर उसे बन्धन मुक्त कर के पाताल का राज्य दे दिया।

वामन और बलि का यह आख्यान भारत में बहुत प्रसिद्ध है।

---

1. ब्रह्म पुराण : अ० ७३
2. पद्म पुराण : उत्तर खण्ड, अ० २६६-२६७
3. विष्णु पुराण : अंश १, अ० २१
4. भागवत पुराण : स्कन्द ८, अ० १५-२३
5. अग्नि पुराण : अ० ४
6. वामन पुराण : अ० २४-३१
7. कूर्म पुराण : पूर्वार्ध, अ० १७
8. मत्स्य पुराण : अ० २४४-४६.

विश्वामित्र-वसिष्ठ द्वेषाख्यान

मुनि मन अगम गाधि सुत करनी।
मुदित वसिष्ठ विपुल विधि बरनी॥
—रामचरितमानस : बालकाण्ड, ३५८/३

विश्वामित्र राजा गाधि के पुत्र थे। राज्य प्राप्ति के उपरान्त, एक बार घूमते-घूमते वह अपनी सेना के साथ वसिष्ठ के आश्रम पर पहुंचे। वसिष्ठ ने अपनी होमधेनु नन्दिनी की सहायता से विश्वामित्र और उसकी सेना का अतिथि सत्कार किया, और उनकी इच्छानुसार भोजनादि भी प्रदान किया।

यह देखकर विश्वामित्र ने वसिष्ठ से नन्दिनी को मांगा। उसके बदले में वह ऋषि को एक करोड़ गौएं, घोड़े, हाथी एवं रथ देने को तत्पर थे। वसिष्ठ के अस्वीकार करने पर, विश्वामित्र ने अपनी सैन्यशक्ति से नन्दिनी का अपहरण करना चाहा। वसिष्ठ तो चुप रहे, पर नन्दिनी ने हुंकार रव से सेना की सृष्टि की। इस सेना ने विश्वामित्र की सेना का नाश कर दिया।

इसके बाद विश्वामित्र के सौ पुत्रों ने वसिष्ठ को मारना चाहा, तो वसिष्ठ ने उन्हें भस्म कर दिया। यह देखकर विश्वामित्र राज्य त्याग कर, तप करने चले गये। उन्होंने क्षत्रिय बल को धिक्कारते हुए, ब्रह्मबल को प्राप्त करने के लिए कठोर तप किया। इन्द्र ने मेनका और रंभा के द्वारा उनकी तपस्या भंग करवाई।

एक बार शुन: शेप की रक्षा के कारण भी उनका तप क्षीण हुआ, परन्तु विश्वामित्र कठोर से कठोर तप करते गये। अन्त में ब्रह्मा ने उन्हें ब्रह्मर्षि कह कर पुकारा। तदनन्तर देवताओं की प्रार्थना पर वसिष्ठ ने भी विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि कह कर पुकारा। बाद में देवों ने दोनों में समझौता करा दिया।

अन्यत्र प्रसंग है कि कठोर तप से ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लेने पर भी जब वसिष्ठ विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि कहने को तैयार न हुए, तब विश्वामित्र ने वसिष्ठ के विनाश के लिए कृत्या और ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। इस पर भी वे वसिष्ठ का कुछ भी न बिगाड़ सके। दोनों के संघर्ष में सृष्टि का अहित देख, ब्रह्मा ने दोनों में मेल करा दिया।

---

1. वाल्मीकि रामायण : सर्ग ५२-६२
2. महाभारत : आदिपर्व, अ० १७८
3. मार्कण्डेय पुराण : अ० ७-९
4. स्कन्द पुराण : नागर खण्ड, अ० १६५-७३.

राजा वेन का आख्यान

लोक वेद ते विमुख भा अधम को वेनू समान।

—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, २२८

ध्रुव की वंशपरम्परा में अंग नामक राजा था। उसका पुत्र वेन हुआ, जो दुष्ट प्रकृति का एवं अधार्मिक था। इस कुपुत्र के कारण राजा अंग राज्य त्याग कर वन में चला गया। राज्य में अराजकता फैलने लगी तो ऋषियों ने वेन को राजा बना दिया। राजा बनते ही उसने अपने राज्य में यज्ञ, तप, दान आदि बन्द करवा दिये। अपने आपको ही यज्ञपति और प्रभु घोषित कर दिया।

वेन के इस प्रकार के अन्याय और अनीति पूर्ण आचरण से धर्म की हानि होने लगी और अधर्म बढ़ने लगा। राजा विना किसी चिन्ता और भय के प्रजा पर अत्याचार करने लगा। उसके पाप कर्मों से पीड़ित होकर प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी। राजा की देखा देखी राज्य के कर्मचारी भी प्रजा से मनमाना व्यवहार करने लगे। यह सब देख कर ऋषि-मुनियों को जनता की दशा पर दया आई। उन्होंने परस्पर परामर्श किया। राजा को समझाने की बहुत चेष्टा की, पर उसने उनके उपदेश की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। अन्त में उन्होंने मिल कर मन्त्रों से पवित्र कुशाओं के प्रहार से उसे मार दिया।

देश में कोई राजा न रहा तो और उत्पात होने लगे। तब ऋषियों ने परामर्श कर वेन की जंघा का मंथन किया। वहां से वेन के पापों को वहन करने वाला एक काला और छोटे कद का पुरुष उत्पन्न हुआ। ऋषियों ने उसे निषीद (बैठ जा) कहा। अतः उसका नाम निषाद पड़ गया। वेन के पाप दूर हो जाने के बाद ऋषियों ने उसके दक्षिण हाथ का मंथन किया, जिससे पृथु का जन्म हुआ। इसी पुत्र के कारण वेन नरक में न जाकर स्वर्ग लोक का अधिकारी बना।

राजा पृथु द्वारा किए धर्म-कर्मों का फल वेन को मिला और वह अपने पाप कर्मों के परिणाम से बच गया।

---

1. पद्म पुराण : भूमि खण्ड, अ० २९-३७
2. विष्णु पुराण : अंश ०-१, अ० १३-१४
3. भागवत पुराण : स्कन्ध ४, अ० १३-१४

शबरी आख्यान

दोउ भाइ आये सबरिका के प्रेम पन पहिचान कै।

—गीतावली : अरण्य काण्ड, गीत नं० ३

तेहि मातु ज्यों रघुनाथ अपने हाथ जल-अंजलि दई।

—गीतावली, अरण्य काण्ड, गीत नं० ८

शबरी का आख्यान लोक प्रियता की दृष्टि से विशेष प्रसिद्ध है। शबरी का जन्म निषाद् जाति में हुआ था। अपने पूर्व-जन्म में यह एक गन्धर्व कन्या थी, जो किसी शाप के कारण भीलनी बनी थी। उसे कहा गया था, कि उसकी शाप से मुक्ति श्री राम के द्वारा होगी। वह अपने आश्रम में श्री राम की प्रतीक्षा करती रही और जब लम्बी प्रतीक्षा के उपरान्त श्री राम उसके आश्रम पर पधारे, तो भक्ति की तीव्रता में उन्हें चख-चख कर बेर खिलाने लगी। वह अपने आराध्य श्री राम को केवल मीठे बेर ही खिलाना चाहती थी।

शबरी ने श्री राम के वन में आगमन की प्रतीक्षा अपने वृद्ध होने तक की थी, अतः जब श्री राम के साथ उसका साक्षात्कार हुआ, तो उसके आनन्द की सीमा न रही। उसने अत्यंत उत्साह और प्रेम से दोनों भाईयों का स्वागत-सत्कार किया और दोनों भाईयों को अपने पास बिठा कर फल खिलाए। भक्ति-भावना की तीव्रता के कारण वह आत्म-विस्मृत हो गई।

जब राम और लक्ष्मण बेर खा रहे थे तो शबरी अत्यंत मुग्धावस्था में उन को निहारती रही। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था, मानों उसकी जन्म-जन्म की साध पूरी हो रही हो। भक्ति की तीव्रता में उसे पता ही न चला, कि उसने कितने बेर श्री राम को खिला दिए। श्री राम शबरी की भक्ति भावना से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे मुक्ति प्राप्त होने का वरदान दिया।

जब श्री राम शबरी से विदा होकर आगे चले, तो उनके बाद शबरी को अपना जीवन व्यर्थ लगा, और उसने अपने देह का त्याग कर दिया। श्री राम के वर के फलस्वरूप उसे विष्णु लोक प्राप्त हुआ। जब श्री राम को पता चला तो उन्होंने उसे माता के समान जान अपने हाथों से जलांजलि दी।

---

1. वाल्मीकि रामायण : अरण्य काण्ड, सर्ग ७४
2. पद्म पुराण : उत्तर खण्ड, अ० २४२/२६६-२७९

शिवि आख्यान

सिबि दधीचि हरिचंद कहानी।
एक एक सन कहहिं बखानी ॥

—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, ४७/३

शिवि, राजा उशीनर का पुत्र था। वह बड़ा धर्मातमा था। एक बार देवताओं ने उसके धर्म की परीक्षा करने के लिए अग्निदेव को कबूतर और इन्द्र को बाज के रूप में भेजा। कबूतर राजसभा में बैठे शिवि की गोद में गिरा। उसने मानव की वाणी में ही राजा से अपना आहार मांगा। राजा ने शरणागत की रक्षा का निश्चय करके बाज को कबूतर के बदले अपना सब कुछ देने को कह दिया।

इस पर बाज ने राजा की दाईं जांघ का मांस मांगा। राजा ने तराजू के एक पलड़े पर कबूतर रखा और दूसरे तराजू पर अपने शरीर का मांस काट-काट कर रखने लगा। जब बहुत अधिक मांस रखने पर भी तराजू बराबर न हुआ तो राजा स्वयं तराजू पर बैठ गया। उसी समय बाज तो अन्तर्धान हो गया, परन्तु कबूतर बने हुए अग्निदेव ने राजा को सब रहस्य कहा। राजा को पुण्यवान और यशस्वी होने का वर दिया।

अन्यत्र प्रसंग है कि इन्द्र और अग्नि के चले जाने के बाद, भगवान विष्णु प्रकट हुए, और उन्होंने राजा शिवि को मुक्ति प्रदान की।

एक और प्रसंग में लिखा है कि एक बार ब्रह्मा ब्राह्मण का रूप धारण कर, अतिथि के रूप में शिवि के पास पहुंचे, और भोजन में उनके पुत्र का मांस खाने की इच्छा प्रकट की। राजा शिवि ने बिना किसी संकोच के अतिथि धर्म का पालन करते हुए, पुत्र का मांस पका कर उनके आगे रखा, तो ब्रह्मा ने प्रकट हो कर राजकुमार को जीवित कर दिया।

धर्म के लिए कठोर से कठोर कष्ट सहन करने को तत्पर रहने के कारण शिवि की गणना दधीचि और हरिश्चन्द्र के साथ की गई है।

---

1. महाभारत : वनपर्व, अ० १९७,
2. अनुशासनपर्व, अ० ३२
3. भागवत पुराण : स्कन्ध ९, अ० २३
4. मत्स्य पुराण : अ० ४८

संपाति आख्यान

अनुज क्रिया करि सागर तीरा।
कहि निज कथा सुनहुं कपि बीरा ॥

—रामचरितमानस : किष्किन्धा काण्ड, २७/१

संपाति रामायण का ख्यात् पक्षी है। अपनी युवावस्था में यह अपने साहस और शूर-वीरता सम्बन्धी कृत्यों के कारण पक्षी-राज के नाम से संबोधित किया जाता था। अपने हठ और साहस के कारण इसे लम्बे समय तक समुद्र तट के एक पर्वत पर अस्वस्थ होकर रहना पड़ा था।

यह जटायु का बड़ा भाई और भगवान् विष्णु के वाहन गरूड का पुत्र था। एक बार दोनों भाई आकाश में उड़ रहे थे, कि बातों-बातों में दोनों में इस बात पर बहस हो गई, कि उन दोनों में सूर्य का स्पर्श कौन कर सकता है। इस बात को जानते हुए भी कि सूर्य की दाहक शक्ति के कारण उसके समीप तक जाना असंभव है, स्पंश की तो बात ही नही, दोनों भाई शक्ति के मद में एक दूसरे को ललकारते रहे, और एक दिन दोनों भाई होड़ा-होड़ी सूर्य का स्पर्श करने के लिए आकाश में गए। सूर्य की गरमी से भयभीत होकर जटायु सूर्य मण्डल के समीप न जाकर लौट आया, परन्तु संपाति अपनी शक्ति के मद में आगे ही आगे बढ़ता गया। सूर्य के समीप पहुंते ही उत्तप्त किरणों से उसके पंख जल गए और वह माल्यवान पर्वत पर आकर गिरा। वह लम्वी अवधी तक इसी अवस्था में रहा।

सीता हरण के उपरान्त, हनुमान और सुग्रीव के नेतृत्व में सीता की खोज करते-करते जव वानर और रीछ माल्यवान पर्वत पर पहुंचे, तो संपाति के साथ उनकी भेंट हुई। संपाति का परिचय जान लेने के बाद, हनुमान आदि ने उसे सीता-हरण प्रसंग में उसके अनुज जटायु द्वारा देह त्याग की बात कही, तो संपाति ने पहले तो समुद्रतट पर जटायु का क्रिया-कर्म किया, और बाद में अपनी कहानी बताई। सीता के विषय में भी पूरी जानकारी दी।

संपाति द्वारा प्रदत्त सूचना से हनुमान जी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनकी कृपा से संपाति के पुनः पंख उग आए, और उसके नेत्रों में ज्योति आ गई, तथा उन्हें दिव्य शरीर प्राप्त हो गया।

---

1. वाल्मीकि रामायण : किष्किंधा काण्ड, ५६-६३

सिंहिका आख्यान

जलधि लंघन सिंह सिंहिका मद-मथन।

—विनय पत्रिका : पद २५

'मानस' में भगवान श्री राम अथवा उनके परम भक्त और प्रमुख सहायक हनुमान द्वारा राक्षसवध के अनेक प्रसंगों का वर्णन हुआ है। ये राक्षस अपने पूर्व जन्मों में कृत कुकर्मों के कारण ही इस योनि को प्राप्त हुए थे और समय-समय पर इनका उद्धार हुआ था। ऐसे ही प्रसंगों में सिंहिका नामक राक्षसी का आख्यान भी आता है जो पूर्व जन्म के किसी शाप के कारण इस योनि में उत्पन्न हुई थी और हनुमान के द्वारा उसका उद्धार हुआ था।

सिंहिका लंका नगरी की सीमा के साथ लगने वाले समुद्र में रहती थी। इसकी शक्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि समुद्र के अथाह जल में इसका निवास था परन्तु अपने स्थान पर बैठे-बैठे ही यह समुद्र में पड़ने वाली परछाई मात्र से पशु-पक्षियों को पकड़ लेती थी। जब भी कोई पक्षी आकाश मार्ग से उड़ता हुआ समुद्र के ऊपर से गुजरता और उसकी परछाई जल में दिखाई देती, तो यह तत्काल उसे पकड़ के खा जाती। यदि कोई पशु चरता हुआ समुद्र तट पर आ जाता और उसकी परछाई जल में पड़ती तो उसे भी पकड़ लेती।

जटायु के बड़े भाई संपाति से जब हनुमान आदि को यह सूचना मिली कि सीता लंका में है, तो जामवन्त, सुग्रीव आदि सब ने हनुमान को पवन पुत्र होने के कारण उड़ कर समुद्र पार करके, सीता का पता करने का आग्रह किया, क्योंकि हनुमान के अतिरिक्त कोई भी उस रूप से समुद्र पार करने में समर्थ नहीं था।

अपने साथियों के निवेदन तथा संपाति द्वारा सीता के लंका में होने की निश्चित सूचना पाकर, हनुमान समुद्र पार करने के उद्देश्य से आकाश मार्ग से उड़कर जब जा रहे थे तो समुद्र के मध्य में अचानक उनकी गति रुक गई। उन्हें ऐसा लगा जैसे उन्हें किसी ने पकड़ लिया हो। अकस्मात् उन्होंने देखा कि एक राक्षसी उन्हें पकड़ के खा जाना चाहती है। जब बार-बार रोकने पर भी वह आक्रमण करती रही, तो हनुमान ने एक शक्तिशाली घूंसे के प्रहार से उसका अन्त कर दिया।

---

1. वाल्मीकि रामायण : सुन्दर काण्ड, १-२

सीतोत्पत्ति आख्यान

सिय पितु मातु स्नेह बस बिकल न सकी संभारि।
धरनिसुता धीरजु धरेउ समउ सुधरमु बिचारि॥

—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, २८६

सीता के जन्म के सम्वन्ध में अनेक ग्रन्थों में प्रसंग मिलते हैं, जिन में स्पष्ट कहा गया है कि सीता लक्ष्मी का अवतार थी। कहीं उसे पद्माक्ष राजा की पुत्री वताया गया है तो कहीं उसका जन्म रावण की पत्नी मन्दोदरी के गर्भ से वर्णित है। कहीं उसका नाम वेदवती है जो दूसरे जन्म में सीता बनी। ग्राम जनता में प्रचलित आख्यान इस प्रकार है।

एक बार गन्धर्वराज तुंवरु और नारद, विष्णु के महल में गए। वहां संगीत का कार्य-क्रम चल रहा था। लक्ष्मी की दासियों ने गान-विद्या में प्रवीण तुंबरु को तो अन्दर जाने दिया, पर गान-विद्या से अनभिज्ञ नारद को वहीं रोक दिया। नारद ने इसे अपना अपमान समझा और लक्ष्मी को राक्षसी के गर्भ से उत्पन्न होने का शाप दिया। लक्ष्मी को जब पता चला तो उसने नारद से प्रार्थना की कि—कलश में भरे हुए मुनियों के थोड़े-थोड़े रक्त को जो राक्षसी अपनी इच्छा से पी लेगी, उसी के गर्भ से उसका जन्म हो। लक्ष्मी ने सोचा ऐसा होना असंभव है।

उस समय दण्डकवन में रावण का राज्य था। इस वन में अनेक ऋषियों के आश्रम थे। वे तपस्वी और तेजस्वी थे। रावण ने भी ब्रह्मा की तपस्या करके यह वर प्राप्त कर लिया कि उसकी मृत्यु तभी हो, जब वह अपनी कन्या से ही रति की इच्छा करे, अन्यथा नहीं।

रावण ने दण्डकवन में रहने वाले ऋषि-मुनियों को सताने की कामना से 'कर' के रूप में उनके शरीर से थोड़ा-थोड़ा रक्त लेकर एकत्रित करना आरम्भ किया। उन्हीं दिनों इसी वन में रहने वाले गृत्समद नामक ऋषि ने लक्ष्मी को अपनी पुत्री के रूप में प्राप्त करने के लिए यज्ञ आरम्भ किया। यज्ञभूमि में मन्त्रों से दीक्षित करके दूध से पूरित एक कलश की स्थापना की।

एक दिन रावण ने मुनि की अनुपस्थिति में उस कलश को उठा लिया और उसमें मुनियों के शरीर से प्राप्त रक्त को डाल कर लंका में ले गया।

लंका में वह यक्ष और गन्धर्व कन्याओं के साथ रमण में लीन हो गया। रावण के इस आचरण से दुःखी होकर मन्दोदरी ने विष से भी भयंकर उस रक्त को पी लिया। मन्दोदरी मरी नहीं, गर्भवती हो गई। रावण ने एक वर्ष से

उसकी सुध तक न ली थी। अतः इस गर्भ से वह घबरा गई। पाप से बचने के लिए उसने तीर्थ यात्रा के बहाने कुरुक्षेत्र में जाकर गर्भपात किया और उसे पृथ्वी में गाड़ दिया।

इसी कुरुक्षेत्र में यज्ञ की कामना से राजा जनक ने सोने का हल जोता। इसी हल की फाल से सीता का जन्म हुआ। अन्यत्र प्रसंग है कि पूर्वजन्म में रावण ने वेदवती नामक तपस्विनी से अनुचित व्यवहार किया था, वही सीता-रूप में उसे दण्डित करने अवतरित हुई।

दूसरा प्रसंग है कि सीता पूर्वजन्म में कुशध्वज राजा की वेदवती नामक कन्या थी। जब वह बड़ी हुई तो भगवान विष्णु को पतिरूप में पाने के लिए गन्धमादन पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगी। एक दिन संयोग वश रावण उस स्थान पर आया और वेदवती की सुन्दरता से मोहित होकर उससे प्रणय की याचना करने लगा। वेदवती ने पहले तो उसे समझाया और फिर कठोर शब्द भी कहे।

इस पर भी रावण नहीं माना और उसने वेदवती से बलात्कार करने का असफल प्रयत्न किया। अपमानित और तिरस्कृत वेदवती ने रावण को यह शाप देकर कि वह दूसरे जन्म में उसके सर्वनाश का कारण बनेगी, अपने प्राणों का त्याग कर दिया। यही वेदवती सीता के रूप में पृथ्वी से उत्पन्न हुई।

1. वाल्मीकि रामायण : बाल काण्ड, सर्ग ६६, श्र० १३-१५
2. अद्भुत रामायण : सर्ग ८, श्र० ६
3. ब्रह्मवैवर्त पुराण : प्रकृति खण्ड, श्र० १४
4. देवी भागवत : स्कन्ध ९, श्र० १६

सीता निन्दक रजाख्यान

सिय निन्दक अघ ओघ नसाए।
लोक बिसोक बनाइ बसाए॥

—रामचरितमानस : बाल काण्ड, १५/२

राम धर्मानुसार राज्य का शासन चला रहे थे। गुप्तचरों द्वारा प्रजा के विचारों का भी पता करते रहते थे। एक दिन एक गुप्तचर ने सूचना दी कि एक रजक (धोवी) अपनी पत्नी को पीटते समय—रावण के घर में रहने के कारण—सीता की निन्दा कर रहा था। उसका कहना था कि 'यथा राजा तथा प्रजा' की नीति के अनुसार अब दूसरे लोगों को भी अपनी स्त्रियों के दोषों को सहन करना पड़ेगा। राम ने इस लोक-अपवाद अथवा निन्दा के भय से सीता का त्याग किया।

इस रजक ने सीता से अपने पूर्व जन्म के बैर का बदला लेने के लिए ऐसा किया था। रजक पूर्व जन्म में एक शुक था। एक दिन वह अपनी पत्नी के साथ खेल में मस्त था तो वालिका सीता ने उन दोनों को पकड़ लिया। शुक ने सीता से प्रार्थना की कि उसकी पत्नी गर्भवती है, इसलिये बच्चों को जन्म देने के लिए उन्हें मुक्त कर दिया जाए।

शुक और शुकी ने सीता को राम की कथा सुनाने के साथ-साथ यह भी बताया था कि वे दोनों पहले बालमीकि के आश्रम में रहते थे। अतः सीता ने उनसे कहा कि जब तक—श्री राम विवाह करके उसे नहीं ले जाते, वह उन्हें स्वतन्त्र नहीं करेगी। सीता के इस निर्णय से शुक और शुकी बड़े दुखी हुए, पर बन्दी होने के कारण मन मार कर रह गए।

कुछ समय के बाद शुक ने पुनः सीता से मुक्ति की प्रार्थना की तो सीता ने केवल गर्भवती शुकी को स्वतन्त्र कर दिया। अपने पति के वियोग में शुकी ने सीता को शाप दिया कि उसी की तरह सीता भी गर्भावस्था में अपने पति से वियुक्त होगी। इतना कह कर उसने प्राण त्याग किया। अपनी पत्नी के वियोग में शुक का भी प्रणान्त हो गया। उसी शुक ने दूसरे जन्म में, धोबी के रूप में जन्म लेकर, बदले की भावना से सीता की निन्दा की।

---

1. पद्म पुराण : पाताल खण्ड, अ० ५६-५७

त्रिशंकु आख्यान

सहसबाहु सुरनाथ त्रिशंकू।
केहि न राजमद दीन्ह कलंकू ॥

—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, २२८/१

यह एक ऐसे राजा का आख्यान है जो अपने हठ और राजमद के कारण बड़ा दुखी हुआ और जिसे कलंकित होकर आकाश में उलटा लटकना पड़ा। अहंकार के कारण इसने मानव शरीर में ही स्वर्गलोक में जाने का हठ किया, जिससे भारतीय इतिहास के दो महर्षियों में कई वर्ष तक संघर्ष होता रहा।

त्रिशंकु इक्ष्वाकुवंशी राजा था। पिता का असंतोष, गुरु की गाय का बध, किसी अप्रोक्षित कन्या का हरण, इन तीन शंकुओं से युक्त होने के कारण, वसिष्ठ ने इसे त्रिशंकु नाम दिया था। सशरीर स्वर्ग जाने की कामना से, इस ने पहले गुरु वसिष्ठ को यज्ञ करने को कहा और उनके पुत्रों को भी। जब उन्होंने यह असंभब बताया तो उसने किसी अन्य गुरू की शरण में जाने की धमकी दी। इस अनादर पर गुरु-पुत्रों के शाप से वह चाण्डाल हो गया।

इस वेष में घूमते-घूमते उसकी भेंट विश्वामित्र से हुई। कभी त्रिशंकु ने विश्वामित्र की अनुपस्थिति में उसकी पत्नी और बच्चों की बड़ी सहायता की थी। अतः विश्वामित्र ने तीर्थ-यात्रा करवा कर, उसका चाण्डालत्व दूर किया और फिर उसकी कामना जानकर, यज्ञ करके उसको सदेह स्वर्ग भेज दिया।

इन्द्र ने उसे स्वर्ग से नीचे गिरा दिया। त्रिशंकु जब सिर के बल नीचे गिरने लगा तो उसने बचाओ का शोर किया। विश्वामित्र ने अपनी तपस्या के प्रभाव से त्रिशंकु को स्वर्ग में ही रोक कर, सप्तर्षियों और नक्षत्रों की रचना आरम्भ की। देवता उनकी शरण में आए तो उन्होंने बताया कि उन्होंने त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेजने की प्रतिज्ञा की थी। अतः उससे निर्मित नक्षत्र और सप्तर्षि, उसकी परिक्रमा करते रहेंगे। देवताओं ने इसे स्वीकार कर लिया।

---

1. ब्रह्म पुराण : अ० ७-८
2. विष्णु पुराण : अंश ४, अ० ३
3. शिव पुराण : उमा संहिता, अ० ३७
4. भागवत पुराण : स्कन्ध ९, अ० ७
5. स्कन्द पुराण : नागर खण्ड, अ० २-७
6. ब्रह्माण्ड पुराण : उपोद्घात, अ० ६३

उलूखल बंधन आख्यान

बड़े भाग पायो पूत विधि हरि हर तें।
ताहि बांधिबे को धाई .... ।।

—कृष्णगीतावली : पद, १७

एक वार यशोदा ने घर की दासियों को दूसरे काम में लगा दिया और स्वयं दही मथने लगीं। उसी समय श्री कृष्ण स्तन पीने के लिये उसके पास आए। उन्होंने माता को दही मथने से रोक दिया और गोद में बैठ कर दूध पीने लगे। तभी अंगीठी पर रखे दूध में उफान आया तो यशोदा कृष्ण को अतृप्त ही छोड़ कर दूध उतारने चली गई। कृष्ण बड़े क्रोधित हुए, उन्होंने दही का मटका फोड़ दिया और दूसरे कमरे में जाकर माखन विखेरने लगे।

जव यशोदा लौट कर आई तो वहां कृष्ण को न देख कर उन्हें ढूंढने लगी। उसने देखा कि कृष्ण एक उलटे हुए ऊखल पर खड़े हैं और छींके पर रखा हुआ माखन ले-लेकर इधर-उधर बिखेर रहे हैं। यशोदा ने छड़ी उठाई और चुपके से उनके पास जा पहुंची। कृष्ण भाग खड़े हुए।

बड़ी कठिनता से जब यशोदा ने कृष्ण को पकड़ लिया तो वे छड़ी देख कर जोर-जोर से रोने लगे। यशोदा ने छड़ी फैंक दी और कृष्ण को ऊखल से बांधने का निश्चय किया। वह रस्सी से कृष्ण को बांधने लगी तो रस्सी दो अंगुल छोटी पड़ गई। उन्होंने उसके साथ दूसरी रस्सी जोड़ी, तव भी वह कम ही रही। इस प्रकार अनेक रस्सियां जोड़ने पर भी वह कृष्ण को न बांध सकी। इस प्रकार अनेक बार यत्न करने पर भी जब यशोदा माता कृष्ण को बांधने में असफल रही तो वह वहुत परेशान हो गई। वह कृष्ण को उस दिन की शरारतों के कारण अवश्यमेव दण्डित करना चाहती थी। अतः उसने फिर कृष्ण को रस्सियों से बांधने का निश्चय किया। श्री कृष्ण ने जब माता को बहुत परेशान देखा तो चुपचाप बन्धन में बंध गए।

इसी प्रकार की लीला श्री कृष्ण ने एक दिन माटी खाते समय पकड़े जाने पर भी की थी। जब माता ने सोटी लेकर उन्हें माटी उगलने पर विवश किया, तो कृष्ण ने शरारत करने के मन से अपना मुख खोला, जिसमें यशोदा को सारा ब्रह्मांड दिखाई दिया।

---

1. भागवत पुराण : स्कन्ध १०, अ० ९

कर्ण आख्यान

ठाढो द्वार न दे सकें तुलसी जे नर नीच।
निंदहिं बलि हरिचन्द को का कियो करन दधीच॥
—दोहावली, ३८२

कर्ण कुन्ती का पुत्र था जो उसकी कुमारी अवस्था में सूर्य के अंश से उत्पन्न हुआ था। लोक लज्जा के भय से कुन्ती ने नवजात शिशु को सन्दूक में रखकर यमुना नदी में प्रवाहित कर दिया था। इसका पालन-पोषण राधा नाम की सूत-पत्नी ने किया जो निःसंतान थी। इसी कारण कर्ण सूतपुत्र के रूप में विश्रुत हुआ।

बड़े होने पर वह महान पराक्रमी, वीर योधा तथा महादानी के रूप में ख्यात् हुआ। इसके वीरतापूर्ण कार्यों का उल्लेख महाभारत के विभिन्न प्रसंगों में हुआ है। और तो और इसने मांगने पर कृष्ण को अपने अजेय कवच और कुण्डल भी दान कर दिये थे तथा जब माता कुन्ती ने इससे अपने पुत्रों के प्राणों की भीख मांगी, तो इसने अर्जुन के अतिरिक्त दूसरे पाण्डवो को न मारने का वचन दे दिया था। कर्ण प्रतिदिन गौओं तथा सोने का दान किया करता था।

इसकी चारित्रिक विशेषताओं से प्रभावित होकर कुरुराज सुयोधन ने इसे अपना परम मित्र बनाकर, इसे अंगदेश का राजा बना दिया था। सुयोधन से उपकृत होकर इसने अपने भाग्य की डोर कौरवों के साथ बांध दी और विषम से विषम संकट की स्थिति में भी उनके साथ रहा। यह पता चल जाने पर भी कि पाण्डव उसके भाई हैं, वह अपनी मित्रता पर अटल रहा।

महाभारत के युद्ध में गुरू द्रोणाचार्य की मृत्यु के उपरान्त कर्ण को सर्व-सम्मति से कौरव सेना का सेनापति नियुक्त किया गया। अपनी वीरता, साहस और शस्त्रविद्या में कुशल प्रशिक्षण के कारण इसने पाण्डव सेना का नाश करना आरम्भ किया, परन्तु परशुराम द्वारा दिये गये शाप के कारण वह उपयुक्त समय पर शस्त्रों का प्रयोग भूल गया और अर्जुन से मारा गया।

---

1. महाभारत, वनपर्व,
2. कर्णपर्व,
3. उद्योगपर्व,
4. शान्तिपर्व,
5. विष्णु पुराण : अंश ४, अ० १४
6. भागवत पुराण : स्कन्ध ९, अ० २४

कालिय आख्यान

कृष्ण करुणा भवन दवन कालीय खल-
विपुल कंसादि निर्वंसकारी।

—विनय पत्रिका-४९

यमुना नदी में कालिय नामक एक अत्यन्त भयंकर सर्प रहता था। यह कद्रू का पुत्र था और गरुड़ के भय से समुद्र में रहना छोड़ कर व्रज के समीप यमुना सरोवर में सपरिवार छिप कर रहता था। इसकी विषाग्नि के प्रसार से यमुना नदी के किनारे के वृक्ष जल गए थे और वायु के थपेड़ों से उछलते हुए हुए जल-कणों का स्पर्श होने से पक्षिगण दग्ध हो जाते थे।

एक दिन श्रीकृष्ण ने यह सोच कर कि कालिय ने समुद्र गामिनी सम्पूर्ण यमुना को दूषित कर दिया है, जिससे उसका जल प्यासे मनुष्यों और गौओं के काम नहीं आता, उसका दमन करने का निश्चय किया।

वे उचित अवसर पर कालिय नाग के महाभयंकर कुण्ड में कूद गये। कालिय, उसकी पत्नियों तथा अन्य सर्पों ने उनको अपने विषाग्नि-संतप्त-मुखों से काटना आरम्भ किया।

व्रज-वासी यह दृश्य देखकर रोने लगे। चारों ओर हा-हा-कार मच गया। कृष्ण अपने दोनों हाथों से कालिय का बीच का फण झुका कर उसके मस्तक के ऊपर चढ़ कर वेग से नाचने लगे। इससे वह मृत प्राय होने लगा और अपने प्राणों की भीख मांगने लगा। नाग पत्नियों ने भी पति के जीवन की भिक्षा मांगी। इस पर श्री कृष्ण ने उसे समुद्र में चले जाने का आदेश देते हुए कहा - तेरे मस्तक पर मेरे चरण-चिह्नों को देखकर गरुड़ तुझ पर प्रहार नहीं करेगा।

अन्यत्र प्रसंग है कि एक बार कृष्ण तथा अन्य ग्वालो की गौएं घास चरती हुई, यमुना तट के उस स्थान पर पहुंच गईं, जहां कालिय का निवास था। वहां पर जब उन्होंने जलपान किया तो विष की ज्वालाओं से संतप्त होकर उन्होंने तत्काल प्राण त्याग दिए। यह देख कृष्ण ने कालिय को दण्डित करने का निश्चय किया।

---

1. ब्रह्म पुराण : अ० १८५
2. विष्णु पुराण : अंश ४, अ० ७-८
3. भागवत पुराण : स्कन्ध १०, अ० १६
4. ब्रह्मवैवर्त पुराण : कृष्णजन्म खण्ड, अ० १९

कुब्जा आख्यान

पंडुसुत गोपिका बिदुर कुबरी सबहि।
सोध किये सुद्धता लेस कैसो ।।

—विनय पत्रिका : पद १०६

कुब्जा कंस की दासी थी। उसका नाम अनेकवक्रा था। कुबड़ी होने पर भी वह अत्यंत रूपवती थी। उसका काम कंस के लिए प्रतिदिन माला और चन्दन ले कर आना था। जब कृष्ण मथुरा में कंस के दरबार में जा रहे थे तो यह उन्हें रास्ते में मिली। वह कंस के लिये सुगन्धमय अवलेपन लेकर जा रही थी। कृष्ण के कहने पर उसने वह सुगन्धमय अवलेपन कृष्ण और बलराम दोनों को प्रदान कर दिये।

कृष्ण बड़े प्रसन्न हुए। वह उल्लापन (सीधे करने की) विधि जानते थे। अतः उन्होंने उसकी ठोढ़ी में अपनी दो अंगुलियां लगा कर, उसे उचका कर हिलाया तथा उसके पैर अपने पैरों से दबा दिए। इस प्रकार कृष्ण ने उसे ऋजुकाय-सीधे शरीर वाली-कर दिया। सीधी हो जाने पर वह सम्पूर्ण स्त्रियों में सुन्दरी हो गई।

कृष्ण द्वारा किए गए इस उपकार से अत्यंत कृतज्ञ होकर कुब्जा ने श्री कृष्ण से आग्रह किया कि वे उसके घर में पधार कर, उसका आतिथ्य स्वीकार करें। कृष्ण ने उसे वचन दिया कि उपयुक्त समय पर वे अवश्यमेव उसके घर आएंगे। ऐसा कह कर कृष्ण आगे बढ़ गए।

कंसवध के उपरान्त कृष्ण ने कुब्जा का आतिथ्य स्वीकार किया। कुब्जा ने अत्यंत प्रेमभाव से स्वागत सत्कार और सेवा की। पर ब्रज में जब गोपियों को इस प्रसंग का पता चला तो वे बड़ी कुपित हुईं। उन्होंने कुब्जा को तो बुरा-भला कहा ही कृष्ण को भी उपालम्भ भेजे कि वे ब्रज की गोपियों और दूसरे आत्मीय जनों को कुब्जा के प्रति अनुरक्त हो जाने के कारण भूल गए हैं और उसी कारण से गोकुल में नहीं लौट रहे।

---

1. भागवत पुराण : दशम स्कन्ध, अ० ४२
2. विष्णु पुराण : अंश ५. अ० २०
3. ब्रह्म पुराण : अ० १९३
4. ब्रह्मवैवर्त पुराण : श्रीकृष्णजन्म खण्ड, अ० ७२

कृष्ण-सत्राजित मणि आख्यान

अपजस जोग कि जानकी मनि चोरी की कान्ह ।

—दोहावली, दोहा ४९२

मथुरा में वृष्णिवंश में सत्राजित का जन्म हुआ था। भगवान् आदित्य उसके मित्र थे। उन्होंने सत्राजित को स्यमन्तक नामक अद्‌भुत मणि प्रदान की। उसने वह मणि अपने घर में रखी। वह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना देती थी, उसके प्रभाव से सम्पूर्ण राष्ट्र में रोग, अनावृष्टि तथा सर्प, अग्नि, चोर या दुर्भिक्ष आदि का भय नहीं रहता था।

भगवान् कृष्ण की भी इच्छा हुई कि वह दिव्य रत्न तो राजा उग्रसेन के योग्य है, किन्तु जातीय विद्रोह के भय से, समर्थ होते हुए भी उन्होंने उसे छीना नहीं। सत्राजित को जब पता चला कि कृष्ण उससे रत्न मांगने वाले हैं तो उसने उसे अपने भाई प्रसेन को दे दिया। प्रसेन उसे गले में बांध मृगया के लिये वन में गया। वहां उसे सिंह ने मार डाला। सिंह को मार कर ऋक्ष-राज जाम्बवान ने मणि ले ली और उसे अपने सुकुमार नामक बालक को खेलने को दे दिया।

दूसरी ओर प्रसेन के न लौटने पर, लोगों ने कृष्ण पर मणि चोरी का सन्देह किया। लोकापवाद का पता चलने पर कृष्ण सेना सहित खोज करते-करते जाम्बवान की गुफा तक जा पहुंचे। उसे मल्लयुद्ध में हराया तो उसने अपनी कन्या जाम्बवती के साथ वह मणि रत्न भी श्री कृष्ण को अर्पित कर दिया। श्री कृष्ण ने वह मणि सत्राजित को सौंप कर मणि चोरी के कलंक को दूर कर दिया।

इसके उपरान्त सत्राजित ने भी यह विचार कर कि उसने ही कृष्ण को मिथ्याकलंक लगाया था, डरते-डरते कृष्ण से अपनी कन्या सत्यभामा का विवाह कर दिया। इसके वाद भी स्यमन्तक मणि को लेकर बलराम ने श्री कृष्ण पर सन्देह किया था, किन्तु कृष्ण ने वह मणि अक्रूर के पास दिखा कर उनका सन्देह दूर कर दिया।

---

1. ब्रह्म पुराण : अ० ४
2. विष्णु पुराण : अंश ४, अ० १३
3. भागवत पुराण : स्कन्ध १०, श्लोक ५६-५७

कृष्ण-दौत्यकर्मा आख्यान

तुलसी हरि अपमान ते होइ अकाज समाज।
राजकरत रज मिलि गए सदल सकुल कुरूराज।

—दोहावली : दोहा ६७

महाभारत युद्ध में भीषण नरसंहार न हो, देश युद्ध की आग में न जले और उसकी सामाजिक, साहित्यक और वैज्ञानिक प्रगति में बाधा उत्पन्न न हो, इसके लिए बहुत प्रयास किया गया था। इस भावि विपत्ति को टालने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं प्रयत्न किया था।

युधिष्ठर ने महाभारत के युद्ध से पूर्व श्रीकृष्ण को दूत बन कर, कौरव सभा में जाने की प्रार्थना की और कहा कि धृतराष्ट्र लोभी होने के कारण दुर्योधन की हां में हां मिलाते जा रहे हैं और उससे मिथ्या व्यवहार कर रहे हैं। उसकी स्थिति ऐसी हो गई है कि वह अपनी माता, पत्नी और भाईयों का भी अच्छी तरह से भरणपोषण नहीं कर पाता। यदि उन्हें पांच गांव या पांच नगर मिल जाते, तो वे पांचों भाई मिलकर आराम से रह लेते, परन्तु दुर्योधन पांच गांव भी देने को तैयार नहीं। अब दो ही रास्ते हैं, या तो वे अपना राज्य त्याग दें अथवा कौरवों को मार कर, सारा राज्य अपने अधिकार में कर लें। वे न तो राज्य का त्याग करना चाहते हैं और न ही कुल के विनाश की इच्छा रखते हैं। इसलिये कृष्ण कौरवों को जाकर पूछ आएं।

युधिष्ठर की प्रार्थना पर श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत बन कर, कौरव सभा में गये। उन्होंने पहले धृतराष्ट्र को तथा बाद में दुर्योधन को समझाते हुए कहा कि कुन्तीपुत्र सन्धि के लिये भी तैयार हैं और युद्ध के लिये भी। इस पर भी दुर्योधन ने पाण्डवों को राज्य का भाग न देने का निश्चय प्रकट करते हुए कहा कि उसके जीते जी सूई की नोक के बराबर भूमि का अंश भी पाण्डव प्राप्त नहीं कर सकते।

दुर्योधन के इस प्रकार के आचरण पर, जब श्रीकृष्ण ने उसे फटकारा तो वह अपने सहयोगियों समेत सभा से उठ कर चला गया। श्रीकृष्ण ने कुरुवंश को विनाश से बचाने की कामना से धृतराष्ट्र को परामर्श दिया कि वे दुर्योधन को कैद करके पाण्डवों से सन्धि करलें। धृतराष्ट्र ने गान्धारी से कहा। उस ने भी बेटे को बहुत समझाया, पर उसने एक न मानी।

दुर्योधन को श्रीकृष्ण पर बड़ा क्रोध आया। उसने कर्ण, शकुनि, दुःशासन आदि से मिलकर श्रीकृष्ण को कैद कर लेने का षड़यन्त्र रचा। सात्यकी ने

इसकी सूचना सभा में ही श्रीकृष्ण को दी तो उन्होंने अपने विश्वरूप का दर्शन करा कर, सब को चकाचौंध करते हुए, कौरव-सभा से प्रस्थान किया। इस प्रकार हरि के अपमान के कारण दुर्योधन महाभारत के युद्ध में सवंश विनाश को प्राप्त हुआ।

1. भागवत पुराण : स्कन्ध ३, अ० १
2. महाभारत : उद्योग पर्व, अ० ९१,
3. सभापर्व, अ० ७२

गोवर्धन धारण आख्यान

व्रज पर घन घमण्ड करि आए।
अति अपमान बिचारि आपनो, कोपि सुरेस पठाए ।।

—कृष्ण गीतावली : पद १८

एक वार श्रीकृष्ण ने जब व्रज-वासियों को इन्द्र की पूजा के लिये विशेष तैयारियां करते देखा तो उन्होंने उनसे पूछा कि—"ग्राप लोग जिसके लिए फूले नहीं समाते, वह इन्द्र-यज्ञ क्या है ?" इस पर नन्द गोप ने कहा कि मेघ ग्रौर जल का स्वामी देवराज इन्द्र है। उसकी प्रेरणा से ही मेघगण जलरूप रस की वर्षा करते हैं। समस्त देहधारी उस वर्षा से उत्पन्न हुए ग्रन्न को उपयोग में लाते हुए, देवताग्रों को भी तृप्त करते हैं। उस वर्षा से उत्पन्न घास से तृप्त, तुष्ट ग्रौर पुष्ट होकर गौएं वत्सवती ग्रौर दूध देने वाली होती हैं। यह इन्द्रदेव पृथिवी के जल को सूर्य किरणों द्वारा खींच कर, सम्पूर्ण प्राणियों की वृद्धि के लिए उसे मेघों द्वारा पृथ्वी पर बरसा देते हैं। इसलिए वर्षा ऋतु में यज्ञ द्वारा इन्द्र की पूजा की जाती है।

इस पर श्रीकृष्ण ने कहा—"हमारे देवता तो गौएं ही है। गौपालन हम लोगों की उत्तम वृत्ति है। जो व्यक्ति जिस विद्या से युक्त है, उसका वही इष्ट देवता है, वही पूजा-ग्रर्चना के योग्य है। खेतों के ग्रन्त में सीमा है, सीमा के ग्रन्त में वन हैं ग्रौर वनों के ग्रन्त में समस्त पर्वत हैं, वे पर्वत ही हमारी परम गति हैं। ग्रतः ग्राज से इन्द्रयज्ञ के स्थान पर गिरियज्ञ ग्रथवा गोयज्ञ का प्रचार होना चाहिए। हमारे देवता तो गौएं ग्रौर पर्वत ही हैं।

नन्द ग्रौर दूसरे लोगों ने श्रीकृष्ण की बात को मान लिया ग्रौर गिरिराज पर जा पहुंचे। हवन-पूजन हुग्रा। गौग्रों को ग्रागे करके गोवर्धन की परिक्रमा की गई। फिर भोज हुग्रा। तदुपरान्त गोपगण ग्रपने-ग्रपने घर गये।

ग्रपने यज्ञ के रुक जाने से, इन्द्र ने कुपित होकर संवर्तक नामक मेघों के दल को प्रलयंकारी वर्षा करने का ग्रादेश दिया। गौग्रों को नष्ट करने के लिए मेघों ने समस्त लोक को जलमय कर दिया। वर्षा ग्रौर वायु से गौएं मूर्छित होने लगीं तो श्रीकृष्ण ने व्रज की रक्षा करने का निश्चय करके, गोवर्धन पर्वत को उखाड़ कर, छत्र के समान व्रज के ऊपर स्थिर कर दिया।

इन्द्र की प्रेरणा से गोकुल पर प्रलयकारी मेघ वरसते रहे, परन्तु जब इन्द्र ने देखा कि श्रीकृष्ण द्वारा पर्वत-धारण के कारण गोकुल का वह कोई ग्रहित नहीं कर सका तो उसने मेघों को रोक दिया। ग्राकाश के मेघहीन हो जाने

पर समस्त गोकुलवासी वहां से निकल कर प्रसन्नता पूर्वक अपने-अपने स्थानों पर आ गए। श्रीकृष्ण ने भी विस्मित गोकुल वासियों के देखते-देखते गोवर्धन पर्वत को उसके अपने स्थान पर रख दिया।

इस प्रकार गोकुल की रक्षा हो जाने पर देवराज इन्द्र गजराज ऐरावत पर सवार होकर, गोवर्धन पर्वत पर आए और श्रीकृष्ण की बहुत प्रकार से स्तुति करने के उपरान्त उनका विशेष सत्कार करने की इच्छा से, एक तो उन्हें उपेन्द्र पद पर अभिषिक्त किया तथा गौओं के स्वामी होने के कारण उन्हें गोविन्द नाम प्रदान किया। इन्द्र के स्वर्गलोक चले जाने के उपरान्त श्रीकृष्ण भी गौओं और गोप कुमारों के साथ व्रज में लौट आए।

---

1. ब्रह्म पुराण : अ० १८८
2. विष्णु पुराण : अंश ५, अ० १०
3. भागवत पुराण : स्कन्ध १०, अ० २४-२५
4. ब्रह्मवैवर्त पुराण : श्रीकृष्ण जन्म खण्ड, अ० २२

द्रौपदी लाज रक्षण

द्रुपद सुता को लग्यो दुसासन नगन करन।
'हा हरि पाहि' कहत पूरे पट विविध बरन॥

—विनयपत्रिका : पद २१३

जब युधिष्ठर द्रौपदी को द्यूत में हार गए तो दुर्योधन ने सूतपुत्र प्रति-कामी के द्वारा द्रौपदी को राजसभा में बुला भेजा। जब द्रौपदी न आई तो दुर्योधन की आज्ञा से दुःशासन उसे बालों से पकड़ सभा में खींच लाया। सभा में द्रौपदी ने वृद्ध जनों से न्याय की मांग की पर सब मौन रहे, केवल दुर्योधन के एक भाई विकर्ण ने इसे अन्याय बताया। इस पर कर्ण ने विकर्ण को बहुत झाड़ डाली तथा पाण्डवों की अनेक प्रकार से निन्दा करते हुए, द्रौपदी को वेश्या के समान बताकर, उसने दुःशासन को पाण्डवों तथा द्रौपदी के वस्त्र उतार लेने को कहा। कर्ण की बात सुन कर समस्त पाण्डव अपने-अपने उत्तरीय वस्त्र उतार कर सभा में बैठ गए।

दुःशासन ने भरी सभा में द्रौपदी का वस्त्र बलपूर्वक पकड़ कर खींचना आरम्भ किया। द्रौपदी ने अपने सम्मान की सुरक्षा के लिए अपने पांचों वीर पतियों की ओर देखा। वे सब नज़रे झुका कर बैठे थे। फिर उसने सभा में बैठे भीष्म, द्रोण आदि से प्रार्थना की। जब किसी ने भी उस की विनय पर ध्यान न दिया, तो सभी ओर से निराश द्रौपदी ने आर्त्तवाणी से भगवान् श्रीकृष्ण को अपनी लाज-रक्षा के लिए पुकारना आरम्भ किया—"कौरवों के बीच कष्ट पाती हुई मुझ शरणागत की रक्षा कीजिए" ऐसा उसने बार-बार कहा।

द्रौपदी की करुण पुकार सुन कर श्रीकृष्ण गद्गद् हो गए तथा शय्या और आसन छोड़कर दौड़ पड़े। श्रीकृष्ण ने अव्यक्त रूप से उसके वस्त्र में प्रवेश करके भान्ति-भान्ति के सुन्दर वस्त्रों द्वारा द्रौपदी को आच्छादित कर दिया। द्रौपदी के वस्त्र खींचे जाते समय, उसी तरह के दूसरे अनेक वस्त्र प्रकट होते रहे। दुःशासन वस्त्र खींच-खींच कर थकने लगा तो भीमसेन ने यह प्रतिज्ञा की कि—"मैं युद्ध में बलपूर्वक इस पापी दुःशासन की छाती फाड़ कर, इसका रक्त पीऊंगा"। जब सभा में वस्त्रों का ढ़ेर लग गया, तब दुःशासन थक कर लज्जित हो चुपचाप बैठ गया।

---

1. महाभारत : सभापर्व, अ० ६७-६८

नरकुंजर आख्यान

सो हौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत परुसि धरो।
स्वारथ औ परमारथ कहू को नहिं कुजरो नरो॥

—विनय पत्रिका : पद २२६

पाण्डु के पांचों पुत्रों युधिष्ठर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव में युधिष्ठर ही एकमात्र ऐसे थे जो किसी भी स्थिति में असत्य का आश्रय नहीं लेना चाहते थे। अपने पिता पाण्डु की मृत्यु के बाद आने वाले कठिन समय में, वनवास की संकट पूर्ण स्थिति में अनेक ऐसे अवसर आए, जब वे असत्य भाषण के द्वारा संकटमुक्त होकर, सुख-सुविधापूर्ण जीवन बिता सकते थे पर उन्होंने ऐसा कभी नहीं किया। वह सत्यव्रत का पालन करने के धर्म पर अड़िग रहे। इसी कारण उन्हे धर्मराज भी कहा जाता था, परन्तु युद्ध के मैदान में एक दिन ऐसा अवसर आ गया कि धर्मराज को भी राजनीति के चक्कर में फंसना पड़ा।

महाभारत युद्ध में जब द्रोणाचार्य पाण्डवसेना का संहार करने लगे तो हा-हा-कार मच गया। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को द्रोणाचार्य के बध के लिए प्रेरित किया, परन्तु अर्जुन गुरु-बध के लिए उद्यत न हुआ। तब श्रीकृष्ण ने युधिष्ठर से मन्त्रणा की और एक निर्णय लेकर तदनुसार भीमसेन के द्वारा कौरव सेना का अश्वत्थामा नामक गज मरवा दिया और यह घोषित करवा दिया कि अश्वत्थामा मारा गया है।

द्रोण के एकमात्र पुत्र का नाम भी अश्वत्थामा था। उसने जब यह सुना तो स्तब्ध रह गया। फिर भी उसने हिम्मत करके युधिष्ठर से सत्य जानना चाहा। युधिष्ठर धर्मराज थे और असत्य नहीं बोलते थे। युष्धिठर ने कहा—"अश्वत्थामा हतः नरो वा कुंजरो वा" जब युधिष्ठर ने कहा कि अश्वत्थामा मारा गया है, तब पाण्डव सैनिक मौन रहे, पर जब उसने यह कहा—पता नहीं, वह हाथी था या मनुष्य, पाण्डव सैनिकों ने इतना शोर मचाया कि द्रोण युधिष्ठर के वाक्य का उत्तरार्ध न सुन सका। वह पुत्र की मृत्यु सुनकर मूर्छित हो गया। उस स्थिति में द्रौपदी के भाई धृष्टद्युम्न ने उसका सिर काट दिया।

---

1. महाभारत : द्रोणपर्व, अ० १६५-६५

परीक्षित-कलियुग आख्यान

सुखी हरिपुर बसत होत परीछत हिं पछिताय।

—विनय पत्रिका : पद २२०

एक बार राजा परीक्षित दिग्विजय के लिए चलते-चलते सरस्वती नदी के तट पर पहुंचे। वहां उन्होंने देखा कि एक राजवेषधारी शूद्र हाथ में एक लाठी लिए हुए एक गौ तथा एक बैल को मारते हुए ले जा रहा है। श्वेत रंग का लंगडा बैल, एक चरण से खड़ा शूद्र की ताड़ना से कांप रहा था। गाय भी शूद्र के पैरों की ठोकरें खा कर अत्यन्त दीन हो रही थी।

शूद्र के इस अत्याचार को देखकर परीक्षित ने उसका बध करने के लिये जब उसे ललकारा तो पता चला कि वह शूद्र कलियुग है, बैल धर्म तथा गाय पृथ्वी है। राजा ने अधर्म के कारणरूप कलियुग को मारने के लिये तलवार उठाई तो वह उनके पैरों पर गिर पड़ा और प्राणों की भीख मांगी।

परीक्षित ने कलियुग से कहा कि अधर्म का सहायक होने के कारण, वह उसके राज्य में निवास नहीं कर सकता। इस पर कलियुग ने कहा कि वह जहां भी निवास करने का विचार करता है, उसी स्थान पर उसे राजा परीक्षित दिखाई देते हैं। वह तो प्रयास करते-करते श्रान्त हो गया है। अतः महाराज स्वयं कृपा करके वह स्थान बतायें, जहां पर वह रह सके।

कलियुग की प्रार्थना पर महाराजा परीक्षित ने उसे द्यूत, मद्यपान, स्त्रीसंग और हिंसा—ये चार स्थान निवास के लिए दिये। इन स्थानों में क्रमशः असत्य, मद, आसक्ति और निर्दयता—ये चार प्रकार के अधर्म निवास करते हैं। जब कलियुग ने कुछ और स्थान निवास के लिये मागें तो राजा ने उसे एक और स्थान स्वर्ण (धन) दिया।

इस प्रकार कलियुग झूठ, मद, काम, बैर और रजोगुण इन में निवास करने लगा। परीक्षित ने वृषभ रूप धर्म के दूसरे तीनों चरण—तपस्या, शौच और दया जोड़ दिए और आश्वासन देकर पृथ्वी का संवर्धन किया।

---

1. भागवत पुराण : प्रथम स्कन्ध, अ० १७

पूतना आख्यान

गई शरन पूतना कुत्र कालकूट लगाई।
मातु की गति दई ताहि कृपालु जादवराई ।।

—विनय पत्रिका : पद २१४

पूतना किसी जन्म में अप्सरा थी । भगवान् वामन के रूप-सौन्दर्य पर मोहित होकर उसने कामना की थी कि उसे उन जैसे वालक को अपने स्तनों का दूध पिलाने का सौभाग्य प्राप्त हो ।

समय वीत जाने पर वह अप्सरा किसी पाप-कर्म के कारण पूतना के रूप में उत्पन्न हुई । कंस ने उससे अनेक नए जन्मे शिशुओं की हत्या करवाई और फिर उसे गोकुल में श्रीकृष्ण को मारने भेजा। पूतना मन के समान वेग से चलने वाली और मायशास्त्र में निपुण थी । वह माया से विविध रूप धारण कर सकती थी । उसने महर्षि दुर्वासा से महामन्त्र की दीक्षा लेकर, सर्वत्र जाने और सव प्रकार का रूप धारण करने की समर्थ प्राप्त कर ली थी ।

वह रूप वदल कर गोकुल पहुंची । अपने स्तनों पर विष लगाया और अवसर पाकर श्रीकृष्ण को फुसलाकर, अपना दूध पिलाने लगी। श्रीकृष्ण ने दूध पीते-पीते ही उसके प्राण खींच लिये । इस प्रकार पूतना ने पूर्व-जन्म में जो कामना की थी, उसकी भी पूर्ति हो गई और उसे उस पापी जीवन से भी मुक्ति मिली और स्वर्ग लाभ भी हुआ ।

अन्यत्र प्रसंग है कि पूतना पाताल के राजा वलि की रत्नमाला नामक पुत्री थी । वलि के यज्ञ में जव भगवान वामनरूप धारण कर पधारे तो उन का मनोहर रूप देखकर रत्नमाला को उनके प्रति पुत्र-स्नेह हुआ । उसने मन ही मन यह संकल्प किया कि यदि वामन के समान उसका पुत्र होता तो वह उसे गोद में विठा कर स्तन-पान कराती । भगवान् उसके मनोरथ को समझ गए । उन्होंने इस प्रकार दूसरे जन्म में उसका स्तन-पान किया ।

1. ब्रह्म पुराण : अ० ८४
2. विष्णु पुराण : अंश ५, अ० ५
3. भागवत पुराण : स्कन्ध १०, अ० ६
4. ब्रह्मवैवर्त पुराण : श्रीकृष्ण जन्म खण्ड, अ० १०

भस्मासुर आख्यान

जाप जोग जग छेम बिनु तुलसी के हित राखि।
बिनुऽपराध भृगुपति नहुष बेनु वृकासुर साखी ॥

—दोहावली : ४७२

तपस्या से शक्ति प्राप्त कर मदमत्त होकर अन्याय और अनीतिपूर्ण आचरण करने वाले असुरों में भस्मासुर का नाम भी विशेष है। इसका पूर्व-नाम बकासुर था पर बाद में लोगों को भस्म करने के कारण इसे भस्मासुर के नाम से अभिहित किया जाने लगा।

इस असुर ने सर्वशक्तिमान बनने की कामना से भगवान शिव की कठोर तपस्या की। भगवान शिव जब प्रसन्न हुए और उसे कोई वर मांगने को कहा तो उसने प्रार्थना की कि 'वह जिसके भी सर पर हाथ रखे, वहीं भस्म हो जाए'। भगवान शिव ने उसे समझाया बुझाया कि वैसा वर लोक-कल्याण की दृष्टि से उचित नहीं। वह कोई और वर मांग ले। पर जब वह नहीं माना तो शिव ने उसे वह वर प्रदान कर दिया।

कुछ ही समय के उपरान्त अपनी शक्ति के मद से मतवाला होकर वह असुर अन्यायी और अत्याचारी हो गया। जो भी उसके सामने आने का साहस करता, वह क्षण में ही उसे भस्म कर देता। और तो और, वह इस तथ्य को भी विस्मृत कर बैठा कि उसके असीम बल का कारण केवल भगवान् शिव का वरदान था। वह शिव की भार्या पार्वती के सौन्दर्य पर ही आसक्त हो गया और उसने शिव को संदेश भेजा कि वे पार्वती को यथाशीघ्र उसे सौंप दें। एक दिन वह पार्वती को प्राप्त करने उनके निवास स्थान पर पहुंच गया।

जब भगवान् शिव ने उसे उस कुकृत्य से रोकना चाहा तो वह उन्हें ही भस्म करने को उद्यत हो गया। कोई चारा न देख शिव वहां से भाग खड़े हुये। दैत्य ने उनका पीछा न छोड़ा। इस विषम परिस्थिति में भगवान् विष्णु ने एक ब्राह्मण वटु का रूप धारण कर, छल से भस्मासुर का हाथ उसके अपने सिर पर ही फिरवा दिया। ऐसा होने पर वह स्वयं ही भस्म हो गया।

1. भागवत पुराण : स्कन्ध १०, अ० ८८

यमलार्जुन आख्यान

पाहन पसु विटप विहंग अपने कर लीन्हे।

—विनय पत्रिका : पद, ७८

नलकूबर और मणिग्रीब दोनों कुबेर के पुत्र थे। ये दोनों ही विलासी और मदिरा का सेवन करने वाले थे। मदिरापान के उपरान्त ये दोनों इस प्रकार का आचरण करते कि देखने वाले आश्चर्य में पड़ जाते, परन्तु इन दोनों को न तो किसी का डर था और न ही किसी बात की चिन्ता।

एक बार इन दोनों ने बहुत अधिक मात्रा में मदिरापान किया और मस्ती में आकर स्त्रियों से विहार करने लगे। काफी समय तक यह अनेक प्रकार की काम-क्रीड़ाओं में खोए रहे। तभी देवर्षि नारद भ्रमण करते-करते उसी स्थान पर आ गए। इन दोनों ने नारद की तरफ देखा पर उनकी उपस्थिति की चिन्ता किए बिना, वे पहले की तरह स्त्रियों के साथ मनोरंजन करने में मग्न रहे।

नारद कुछ देर तो चुपचाप उन्हें देखते रहे, पर जब उन्होंने देखा कि उन दोनों को उनके आने की कोई चिन्ता नहीं है और न ही उन दोनों ने उन का अभिवादन ही किया है, तो नारद ने अपने आपको अपमानित समझा और उन दोनों को जड़वत व्यवहार करने के कारण वृक्ष हो जाने का शाप दिया।

दोनों गोकुल में अर्जुन नामक युगल वृक्ष बन गए। एक दिन माता यशोदा ने श्रीकृष्ण को ऊधम मचाने पर इन दोनों वृक्षों से बांध दिया और स्वयं गृहस्थी के कार्यों में व्यस्त हो गईं। यशोदा ने जब दीर्घकाल तक श्रीकृष्ण को बंधन मुक्त नहीं किया तो उन्होंने अपने दोनों पैर अड़ा कर, दोनों वृक्षों को गिरा दिया। वृक्षों के गिरते ही उनके स्थान पर दो अत्यन्त सुन्दर पुरुष हाथ जोड़े श्रीकृष्ण के सामने खड़े हो गए। श्रीकृष्ण ने उन्हें यज्ञ-लोक में भेज दिया।

---

1. भागवत पुराण : दशम स्कन्ध, अ० ९
2. ब्रह्मवैवर्त पुराण : श्रीकृष्ण जन्म खण्ड, अ० १४
3. ब्रह्म पुराण : अ० १८४

शिशुपाल आख्यान

नेम ते सिसुपाल दिन प्रति देत गनि गनि गारि।
कियो लीन सु आपु में हरि राज सभा मंझारि॥

—विनय पत्रिका : पद, २१४

पूर्वजन्म में यह महा पराक्रमी हिरणयकश्यप के नाम से दैत्यों का मूल पुरुष हुआ था, जिसे भगवान् ने नृसिंह अवतार के रूप में मारा था। तदनन्तर यह शौर्य, सम्पत्ति और पराक्रम आदि गुणों से सम्पन्न तथा देवराज इन्द्र के प्रभाव को भी दबाने वाले रावण के रूप में जन्मा और बहुत समय तक नाना भोगों को भोग कर, रामरूप धारी भगवान् के ही द्वारा मारा गया। यही फिर शिशुपाल के रूप में उत्पन्न हुआ।

शिशुपाल चेदीराज दमघोष तथा श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव की भगिनी श्रुतदेवा का पुत्र था। यह स्वभाव से वड़ा दुष्ट था। विदर्भराज रुक्मिन की बहन रुक्मिणी से इसकी सगाई हुई थी। रुक्मिणी श्रीकृष्ण के प्रति आकर्षित थी और उनसे ही विवाह करना चाहती थी।

जब शिशुपाल बारात लेकर आ गया तो विवाह की पूर्वसन्ध्या को रुक्मिणी पूजा के लिए देवालय में गई और वहां गुप्त रूप से आहूत, श्रीकृष्ण उसका अपहरण करके, उसे रथ पर बैठा कर भगा ले चले। रुक्मिन और शिशुपाल ने उनका पीछा किया तो श्रीकृष्ण ने उन्हें बन्दी बना लिया। रुक्मिन के अनुरोध से वे दोनों मुक्त हुए।

श्रीकृष्ण से शिशुपाल की शत्रुता का यही प्रधान कारण था। युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ में जब वह श्री कृष्ण को अपशब्द कहते-कहते सीमातिक्रमण कर गया तो श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से उसका मस्तक काट दिया।

अन्यत्र प्रसंग है कि जब शिशुपाल वच्चा ही था तभी उसकी माता को पता चल गया था कि उसकी मृत्यु श्रीकृष्ण के हाथों होगी, पर उसने श्रीकृष्ण से शिशुपाल के सौ अपराध क्षमा करने का वचन ले लिया था। सौ अपराध पूर्ण हो जाने पर ही श्रीकृष्ण ने इसका संहार किया था।

---

1. भागवत पुराण : स्कन्ध १०, अ० ४७, ७४
2. विष्णु पुराण : अंश ४, अ० १५

सत्यभामा-पारिजात आख्यान

जौ पै हरि जन मे अवगुन सहते।
तौ सुरपति कुरुराज बालि सों कत हठि बैर बिसहते ।।
—विनय पत्रिका : पद ९७

एक वार नारद स्वर्ग से कल्पवृक्ष का एक फल लेकर कृष्ण की पटरानी रुक्मिणी को दे गये। इस पर श्रीकृष्ण की दूसरी रानी सत्यभामा ने भी श्रीकृष्ण से वैसे ही फल की मांग की। श्रीकृष्ण ने स्वर्ग में जाकर इन्द्र से जब एक और फल मांगा तो उसके इन्कार करने पर श्रीकृष्ण उसे युद्ध में पराजित कर कल्पवृक्ष को ही उखाड़ लाए और उसे सत्यभामा के आंगन में लगा दिया।

अन्यत्र प्रसंग है कि नरकासुर का वध करने के उपरान्त श्रीकृष्ण सत्यभामा सहित स्वर्गलोक में गए। देवमाता अदिति की आज्ञा से इन्द्र ने श्रीकृष्ण का पूजन किया, किन्तु कल्पवृक्ष के पुष्पों से अलंकृत। इन्द्राणी ने सत्यभामा को मानुषी समझकर उस पर कोई ध्यान न दिया। वाद में नन्दनवन में पारिजात वृक्ष को देखकर सत्यभामा ने श्रीकृष्ण से आग्रह किया कि अमृत्-मन्थन के समय प्रकट हुए सुनहरी छाल वाले पारिजात वृक्ष को द्वारिकापुरी ले चलें। यदि वे उसे अपनो सब से प्रिय पत्नी समझते हैं तो उन्हें उसकी यह कामना-अवश्यमेव पूर्ण करनी चाहिए। इसपर श्रीकृष्ण पारिजात वृक्ष को गरुड़ पर रखने लगे वो नन्दनवन के रक्षकों ने उन्हें चेतावनी देते हुए कहा कि इन्द्राणी की सम्पत्ति को वे कुशल पूर्वक नहीं ले जा सकते।

रक्षकों के रोकने पर सत्यभामा ने इन्द्राणी के प्रति कटु शब्द कहे। परिणाम में इन्द्र और श्रीकृष्ण में युद्ध हुआ। पराजित इन्द्र ने श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहा—'आप लोकरक्षा में तत्पर हैं। पारिजात को द्वारिकापुरी ले जाइये। जब आप मर्त्यलोक छोड़ेंगे तो यह भी भूलोक में नहीं रहेगा।' द्वारिका में आकर श्रीकृष्ण ने पारिजात को सत्यभामा के आंगन में लगा दिया।

---

1. भागवत पुराण : स्कन्ध १०, अ० ५९
2. विष्णु पुराण : अंश ५, अ० ३०
3. ब्रह्म पुराण : अ० २०३

सुदामा आख्यान

ध्रुव प्रहलाद बिभीषण कपिपति जड़ पतंग पांडव सुदाम को ।

—विनय पत्रिका : पद ९९

सुदामा एक निर्धन ब्राह्मण था। बाल्यावस्था में उसने श्रीकृष्ण के साथ ही सान्दीपनी मुनि से विद्याध्ययन किया था। गुरू-आश्रम में एक साथ रहने से इनका श्रीकृष्ण के साथ अत्यन्त अनुराग हो गया। श्रीकृष्ण भी इनसे अत्यधिक स्नेह रखते थे।

विद्याध्ययन के उपरान्त अपने घर लौटने पर इनका विवाह हुआ। अत्यन्त विद्वान् होने पर भी दरिद्रता ने इनका पीछा नहीं छोड़ा। इनकी पत्नी बड़ी साध्वी थी, पर अपने पति से बड़ी दुःखी थी। जब सुदामा अपने बाल सखा श्रीकृष्ण की चर्चा पत्नी से करते तो वह यह सोच कर और भी खिन्न होती कि श्रीकृष्ण जैसा मित्र होने पर भी धनाभाव में वह दुःखपूर्ण जीवन बिता रहे हैं। वह समय-समय पर अपने पति को श्रीकृष्ण के पास जाने का अनुरोध करती, परन्तु सुदामा एक दरिद्र के रूप में श्रीकृष्ण के पास जाना उचित न समझते।

एक बार जब सुदामा की पत्नी ने बड़ा हठ किया तो सुदामा श्रीकृष्ण के पास द्वारिका जाने को तैयार हो गए। भेंट के रूप में, पड़ोसियों से कुछ चावल मांग कर, उन्हें पोटली में बांध कर, पत्नी ने पति को दे दिए।

जब सुदामा द्वारिका पहुंचे तो श्रीकृष्ण ने उनका अपूर्व स्वागत और सत्कार किया। भाभी द्वारा भेजे चावलों को बड़े प्यार से खाया। सुदामा कई दिनों तक राज महलों में सुख पूर्वक रहे, पर अपने मन की बात कहते उन्हें संकोच होता था। भगवान् श्रीकृष्ण सब समझ गए थे। कुछ दिनों के बाद जब सुदामा विदा होकर अपने घर जाने लगे, तब भी श्रीकृष्ण ने उन्हें कुछ नहीं दिया। श्रीकृष्ण की कृपणता पर सुदामा को बड़ा खेद हुआ, पर जब वे अपने गांव पहुंचे तो अपनी टूटी-फूटी कुटिया के स्थान पर, सुन्दर भवन और ऐश्वर्य के साज-सामान देखकर आश्चर्यचकित रह गए।

उन्हें अपनी कुटिया और पत्नी आदि दिखाई न दिए तो वे बड़े दुखी हुए और सोचने लगे कि अब पत्नी को कहां खोजें। फिर उन्हें भ्रम होने लगा कि वे किसी दूसरे गांव में आए गए हैं। वे लौट कर जाने ही वाले थे कि महल से दासियों से घिरी हुई उनकी पत्नी सामने आ गई और उसने उन्हें बताया कि वह महल, सुख और ऐश्वर्य के साधन भगवान् श्रीकृष्ण की देन है। जितनी

देर वे द्वारिकापुरी में रहे, उस अवधि में भगवान् श्रीकृष्ण ने उनके लिए भवन निर्माण करवा कर उसमें सुख के सभी साधन उपलब्ध करवा दिए हैं।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की दानशीलता और भक्तवत्सलता के कारण, सुदामा दीर्घकाल तक अपनी पत्नी के साथ सुखपूर्वक जीवन बिताकर, अन्त में स्वर्ग के अधिकारी बने।

1. भागवत पुराण : स्कन्ध १०, अ० ८०-८१
2. ब्रह्मवैवर्त पुराण : श्रीकृष्ण जन्म खण्ड, अ० १०२

वाणासुर आख्यान

वृत्र बलि वाण प्रहलाद मय व्याध ।
गज गृदध द्विजवन्धु निजधर्म त्यागी ॥

—विनय पत्रिका : पद, ५७

वाणासुर पाताललोक के महायशस्वी और महादानी दानवराज वलि का पुत्र था। भगवान् शिव की तपस्या करके इसने उनकी इतनी अनुकम्पा प्राप्त कर ली थी कि केवल शिव ही नहीं, उनके पूरे परिवार की उस पर कृपा दृष्टि थी। इसकी पुत्री का नाम ऊषा था, जो एक वार भगवान् श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को स्वप्न में देखकर मोहित हो गई। उसने अपनी सखी चित्र-लेखा को जब स्वप्न में देखे पुरुष के विषय में सब कुछ वताया तो उसने एक चित्र तैयार किया। इस चित्र की सहायता से पता चला कि वह व्यक्ति श्री-कृष्ण का पौत्र अनिरुद्ध है।

ऊषा ने गुप्त रूप से प्रवन्ध करके अनिरुद्ध को अन्तःपुर में बुला लिया। जब ये वृत्त वाणासुर को ज्ञात हुआ तो उसने अनिरुद्ध को बन्दी वना लिया। जब श्रीकृष्ण के कहने पर भी वाणासुर ने अनिरुद्ध को मुक्त न किया तो श्री-कृष्ण और वाणासुर में घोर युद्ध होने लगा। भगवान् शिव भी अपने भक्त की ओर से युद्ध में भाग ले रहे थे। जब वाणासुर के अन्य सब वाहु कट गए, केवल दो ही वचे, तो उसने भगवान् के आगे सिर झुका दिया। शिव की स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्ण ने वाणासुर को अभय कर दिया। तत्पश्चात् ऊषा और अनिरुद्ध का विवाह हो गया।

अन्यत्र प्रसंग है कि एक वार ऊषा ने शिव के साथ पार्वती जी को क्रीड़ा करते देख स्वयं भी अपने पति के साथ रमण की इच्छा की। ऐसा कब होगा ? पति कौन होगा ? ऐसी जिज्ञासा करने पर, पार्वती ने उसे कहा कि वैशाख द्वादशी की रात्रि को जो पुरुष स्वप्न में उससे हठात् सम्भोग करेगा, वही उसका पति होगा।

यह पुरुष अनिरुद्ध था। इस बात का पता ऊषा की सखी चित्रलेखा द्वारा बनाए गए बहुत से विशेष पुरुषों के चित्रों से चला। ऊषा को व्याकुल और विषण्ण देखकर चित्रलेखा अनिरुद्ध को लाने के लिए द्वारकापुरी की ओर चल पड़ी। महर्षि दुर्वासा की शिष्या और योगिनी होने के कारण वह श्री-कृष्ण के भवन में प्रवेश कर गई और सोते हुए अनिरुद्ध को उठाकर शोणितपुर ले आई। दोनों ही एक दूसरे पर आसक्त थे, अतः ऊषा और अनिरुद्ध का

गन्धर्व विवाह कर दिया गया। दोनों पति-पत्नी गुप्त रूप से महल में रहने लगे।

कुछ ही समय के उपरान्त अन्त: पुर के रक्षकों ने अपने स्वामी वाण से सारा वृत्त कहा तो उसने अनिरुद्ध को बन्दी बना लेने का संकल्प किया। परिजनों द्वारा समझाए जाने पर भी कि दूसरों द्वारा ग्रहण की गई वह कन्या ऊषा, अब दूसरे को देने के योग्य नहीं हैं, वाण ने उनकी बात नहीं मानी।

दूसरी ओर पता चला कि अनिरुद्ध को छुड़ाने के लिए श्रीकृष्ण सेना समेत शोणितपुर में आ पहुंचे हैं। युद्ध की संभावना देख, वलि ने भगवान् शिव से वचन ले लिया कि वे वाण को अवश्यमेव बचा लेंगे। युद्ध आरम्भ हुआ। शिव और उनके सहयोगी वाणासुर की ओर से युद्ध करने लगे। शिव और श्रीकृष्ण में भी भीषण संग्राम हुआ। जब श्रीकृष्ण ने अपने चक्र से वाणासुर की दो भुजाओं को छोड़ कर, अन्य सभी भुजाएं काट दीं, और जब वह मरणासन्न होकर धरती पर गिर पड़ा तो भगवान् शिव के अनुरोध पर श्रीकृष्ण ने वाणासुर को जीवित छोड़ दिया।

अन्त में वाणासुर ने श्रीकृष्ण की स्तुति की और बहुत से दहेज के साथ ऊषा को श्रीकृष्ण को समर्पित किया। श्रीकृष्ण ने द्वारकापुरी में आकर नवविवाहिता वधू को देवकी और रुक्मिणी को सौंप कर, उन्हें मंगल महोत्सव करने का आदेश दिया।

---

1. ब्रह्म पुराण : अ० २०५-२०६
2. विष्णु पुराण : अंश ५. अ० ३३
3. भागवत पुराण : स्कन्ध १०, अ० ६३
4. ब्रह्मवैवर्त पुराण : श्रीकृष्ण जन्म खण्ड, अ० १२०

वृन्दा आख्यान

भलो भले से छल किएं जनम कनौडो होइ।
श्रीपति सिर तुलसी लसति बलि बामन मति सोइ ॥

—दोहावली : दोहा ३९५

एक कथा के अनुसार समुद्र-मंथन के समय में जब अमृतकलश मिला तो विष्णु उसे दोनों हाथों में धारण कर अतीव हर्षित हुए। हर्षातिरेक में उनके आंसू निकल आए। आंसूओं की कुछ बून्दे अमृत पर गिरीं। इन्हीं बून्दों से तुलसी का जन्म हुआ। देवों ने लक्ष्मी के साथ तुलसी को भी विष्णु की सेवा में अर्पित कर दिया।

अन्यत्र प्रसंग है कि एक गोपी राधा के शाप से वृन्दा रूप में जन्मी। उस के तप से प्रसन्न ब्रह्मा ने उसे राधा के शाप से शंखचूड़ बने श्रीदामा नामक गोप से विवाहित होने का वर दिया और यह भी कहा कि बाद में वह तुलसी का पौदा वन कर संसार को पवित्र करती हुई सदैव भगवान् के साथ रहेगी।

अनेक दिनों तक युद्ध होने पर भी जब जलंधर दैत्य किसी तरह भी पराजित न किया जा सका। भगवान् शिव भी युद्ध करते-करते उसका वध करने में असफल रहे तो भगवान् विष्णु ने सारी बात जानकर उस दैत्य के वध के लिये, उसकी पतिव्रता पत्नी वृन्दा का सतीत्व भंग किया। वृन्दा के सतीत्व भंग से ही शिव जलंधर का नाश करने में समर्थ हुए।

वृन्दा को जब पता चला कि उससे छल किया गया है तथा छल करने वाले स्वयं भगवान् विष्णु हैं, तो उसने उसी समय चिता बनाई और अपने आप को भस्म कर दिया। फिर वह तुलसी के रूप में जन्मी। तुलसी के पौदे में विष्णु को वृन्दा का रूप प्रतिभासित हुआ और वे उसे वैकुण्ठ में ले गए। विष्णु ने वृन्दा से छल किया था। अतः उसके प्रायश्चित्त-स्वरूप आज भी विष्णु वन्दा को तुलसी के रूप में अपने सिर पर धारण किये हुए हैं।

1. पद्म पुराण : भूमि खण्ड, अ० ९८-१०७
2. शिव पुराण : रूद्रसंहिता, युद्ध काण्ड, अ० १३-२६
3. स्कन्द पुराण : वैष्णव खण्ड, कार्तिक माहात्म्य ८, ३३-३७

वृत्रासुर आख्यान

वृत्र वलि वाण प्रहलाद मय व्याध गज गृद्ध
दि्वज बन्धु निज धर्म त्यागी ।

—विनय पत्रिका : पद ५७

वृत्रासुर पूर्व जन्म में चित्रकेतु नामक राजा था । अंगिरा और नारद के उपदेश से राज्य त्याग कर उसने इतना कठोर तप किया कि उसे विद्याधरों का अखण्ड आधिपत्य प्राप्त हो गया । बाद में शेष भगवान् की कृपा से वह 'सिद्ध' हो गया ।

एक दिन वह भगवान् द्वारा प्रदत्त विमान पर आरूढ़ होकर, कहीं जा रहा था तो उसने देखा कि भगवान् शंकर मुनियों की सभा में बैठे हुए हैं और साथ ही पार्वती को गोद में बिठा कर, एक हाथ से उनका आलिंगन किये हुए हैं। जब उसने वहां पहुंच कर, शिव का उपहास किया तो शिव मौन रहे, परन्तु पार्वती ने उसे असुर होने का शाप दे दिया ।

पार्वती के शाप के कारण, यही चित्रकेतु विश्वरूप की मृत्यु के वाद उस के पिता त्वष्टा द्वारा इन्द्र के पराभव के लिये किये जाने वाले यज्ञ से वृत्रासुर के रूप में जन्मा और इसने अपनी शक्ति से देवताओं को पराजित कर दिया। देवता भगवान् नारायण की शरण में गये और वृत्रासुर के नाश के लिये प्रार्थना की ।

भगवान् नारायण ने देवताओं को दधीचि ऋषि के अंग से एक आयुध तैयार करके, उससे वृत्र का नाश संभव बताया । देवताओं की प्रार्थना पर दधीचि ने अपने को भगवान् में लीन करके, अपना स्थूल शरीर त्याग दिया । विश्वकर्मा ने दधीचि की अस्थियों से वज्र बनाकर इन्द्र को दिया । तदनन्तर जव देवसेना और असुर सेना का इन्द्र और वृत्र के नेतृत्व में युद्ध आरम्भ हुआ तो उसमें वृत्र अपने भाई विश्वरूप के हन्ता इन्द्र को ऐरावत समेत निगल गया । इन्द्र नारायण कवच से सुरक्षित था । अतः वह उसके पेट में जाकर भी नहीं मरा । उसने वज्र से वृत्र की कोख फाड़ दी और उसके पेट से निकल कर उसका सिर काट दिया ।

1. ब्रह्म पुराण : अ० ३७
2. भागवत पुराण : स्कन्ध ६, अ० १०-१२
3. स्कन्द पुराण : माहेश्वर खण्ड, अ० १७
4. शिव पुराण :

हरिश्चन्द्र आख्यान

सिव दधीचि हरिचद नरेसा।
सहे धरम हित कोटि कलेसा॥

—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, ९४/२

हरिश्चन्द्र अयोध्या के सूर्यवंशी राजा थे। इनके दान और सत्यवादिता की प्रशंसा सब जगह होती थी। एक बार नारद ने इन्द्र से जब इस बात की चर्चा की तो इन्द्र ने विश्वामित्र को उसकी परीक्षा करने भेजा।

विश्वामित्र ने पृथ्वी पर आकर राजा हरिश्चन्द्र से सारी पृथ्वी दान में मांग ली और फिर एक हजार सोने की मुद्राएं दक्षिणा के रूप में भी मांगी। राजा ने पृथ्वी दान में दे दी और दक्षिणा के लिये काशी में जाकर, एक ब्राह्मण के हाथ अपनी पत्नी और पुत्र को बेच कर तथा अपने को एक चाण्डाल के हाथ बेच कर, दक्षिणा भी चुका दी। राजा उस चाण्डाल के सेवक के रूप में मर-घट की रखवाली करने लगे।

एक दिन उनकी रानी शैव्या सर्पदंश से मृत उनके पुत्र रोहिताश्व को लेकर श्मशान-भूमि में आई तो राजा ने उसे पहचानते हुए भी नियम के अनुसार उससे 'कर' मांगा। जब रानी 'कर' के रूप में अपनी साड़ी फाड़ कर देने को उद्यत हुई तो उसी समय भगवान् विष्णु प्रकट हुए और राजा को सपरिवार अपने लोक में ले गए।

अन्यत्र प्रसंग है कि हरिश्चन्द्र द्वारा संपादित यज्ञ में अतिपूजित होने के उपरान्त वसिष्ठ ने इन्द्रलोक में जाकर विश्वामित्र से राजा की दानशीलता, सत्यप्रियता, और धीरता आदि की प्रशंसा की तो विश्वामित्र और वसिष्ठ में विवाद हो गया। क्रोध में विश्वामित्र ने कह दिया कि यदि वे राजा को—असत्यवादी सिद्ध न कर दे, तो उनके पुण्य क्षय हो जाएं विश्वामित्र ने अपनी माया की शक्ति से राजा को अनेक संकटों में डाला, पर वह सत्यव्रत पालन पर अडिग रहा और अन्त में रोहित को राजा बनाकर स्वयं पत्नी समेत स्वर्ग को गया।

---

1. ब्रह्म पुराण : अ० १०४
2. मार्कण्डेय पुराण : अ० ७-८
3. भागवत पुराण : स्कन्ध ७, अ० १४-२७

हिरण्याक्ष-वराह आख्यान

अति बल मधु कैटभ जेंहि मार।
महावीर दिति सुत संहारै॥

—रामचरितमानस : लंका काण्ड, ५/४

हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष महर्षि कश्यप के औरस से दिति के पुत्र थे। यह दोनों पूर्व जन्म में जय-विजय नामक विष्णु के सेवक थे जो सनकादि मुनियों के शाप से ग्रस्त होकर राक्षस योनि में उत्पन्न हुए थे।

हिरण्याक्ष ने तप करके शिव को प्रसन्न किया और उनसे महाबाहु अन्धक नामक पुत्र प्राप्त किया। इस पुत्र के राज्य के लिये वह पृथ्वी को पाताल में ले गया। तब देवताओं की प्रार्थना पर विष्णु ने वराह का रूप धारण कर पृथ्वी को दांतों पर उठा, शेषनाग के मस्तक पर स्थिर कर दिया और फिर युद्ध करके हिरण्याक्ष का वध किया।

अन्यत्र प्रसंग है कि हिरण्याक्ष ने पहले देवताओं को युद्ध में पराजित किया। फिर विष्णु से युद्ध करते समय भयंकर आकार धारण करके पृथ्वी को उठा कर पाताल लोक में चला गया। इस पर भगवान् विष्णु ने वराह रूप धारण करके उसका पीछा किया और अपने दांतों पर पृथ्वी को उठा, जल के ऊपर पर्वतों की सहायता से पृथ्वी को स्थिर करके हिरण्याक्ष का युद्ध में संहार कर दिया।

कुछ दूसरे प्रसंगों के अनुसार महाप्रलय से धरती के जल में डूब जाने से सभी जीव नष्ट हो गए तो ब्रह्म ने धरती के उद्धार और द्वारा सृष्टिरचना करने के लिए, पवन-रूप धारण कर धरती की खोज की। धरती का कुछ अंश दिखाई दिया तो उन्होंने वराह रूप धारण कर, उसे दांतों से उठा जल पर स्थापित कर दिया। तदुपरान्त उन्होंने सृष्टि रचना का कार्य किया।

---

1. विष्णु पुराण : अंश १, अ० ४
2. पद्म पुराण : सृष्टि खण्ड, अ० ४
3. भागवत पुराण : स्कन्ध ३, अ० १५
4. शिव पुराण : रूद्र संहिता, अ० ४२
5. लिंग पुराण : पूर्वभाग, अ० ९४
6. कूर्म पुराण : पूर्वार्ध, अ० ६
7. ब्रह्माण्ड पराण : पूर्वभाग, प्रक्रियापाद, अ० ५

चतुर्थ अध्याय

तुलसी साहित्य में प्रयुक्त पौराणिक आख्यानों के प्रयोग का स्वरूप

चतुर्थ अध्याय

पौराणिक आख्यान सम्बन्धी तुलसी की धारणा और उसका औचित्य

तुलसी पर पुराण साहित्य का प्रभाव अप्रतिम था। इसका मूल कारण यही है कि पुराणों का जितना महत्व ऐतिहासिक घटनाओं के वर्णन में है, उस की अपेक्षा उनका धार्मिक महत्व कई गुणा अधिक है।

तुलसी के युग में भारत की सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियां बडी अस्त-व्यस्त थीं। परतन्त्र भारतीय संस्कृति पतनोन्मुख थी। व्यक्ति, परिवार, समाज और राज्य सबमें गिरावट आ गई थी। विदेशी शासन के अत्याचारों से त्रस्त मानवता की रक्षा के उद्देश्य से, उन्होंने राम की कथा का अवलम्ब ग्रहण किया। इसके लिए "सबसे पहले उन्होंने राम को चुना। राम में मनुष्यता की पूर्णता की कल्पना की। फिर दशरथ का एक परिवार चुना, जिसमें भिन्न-भिन्न स्वभावों के लोग अपनी-अपनी निश्चित मर्यादा में एक होकर रहते थे। फिर एक राम-राज्य का ढांचा तैयार किया और हिन्दुओं के सामने एक आदर्श समाज और एक आदर्श राज्य का नमूना रखा[1]।"

अपने इस उद्देश्य को मूर्त रूप देने के लिए तथा जनता में अन्य उदात्त भावनाओं का प्रचार करने के लिए, तुलसी को पुराण-साहित्य से अपेक्षित सामग्री उपलब्ध हुई। उनसे पहले भी अनेक भक्त कवियों को अपने प्रतिपाद्य अर्थ की सिद्धि के लिए पौराणिक आख्यानों से अनुपम सहयोग मिला था। अतः उन्होंने भी श्रीराम के प्रमुख आख्यान के साथ-साथ अनेक प्रासंगिक कथाओं के रूप में भी नाना पुराणों से अनेक आख्यानों को ग्रहण किया।

1. राम नरेश त्रिपाठी, तुलसी और उनका काव्य : पृ० २७४

पुराण साहित्य तथा तुलसी के मन्तव्य में कोई विशेष अन्तर न था। पुराण साहित्य में प्रत्येक विषय को धर्म, सदाचार और नीति का पुट देकर लोकशिक्षा का माध्यम बनाने की चेष्टा की गई है। भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति, सदाचार तथा सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित अनेक विषयों को मनोरंजक ढंग से विविधाख्यानों द्वारा संपुष्ट किया गया है। पौराणिक आख्यान परोपकार, उदारता, त्याग तपस्या आदि जीवन के वृहदादर्शों की भावनाओं से मण्डित हैं। अतः उनका अपने प्रतिपाद्य के सन्दर्भ में पुनराख्यान जीवन को ऊंचा उठाने का प्रभावपूर्ण उपकरण सिद्ध हुआ।

सामाजिक जीवन में चरित्र-रक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। चरित्रवान व्यक्ति कभी अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं होता। कर्त्तव्य पालन करने से समाज में धर्म व्यवस्था की स्थापना होती है और धर्म पर चलने वाला व्यक्ति जीवन में कभी पराजित नहीं होता—तुलसी की आख्यान परायणता का यही उद्देश्य था। आदर्शवादी श्रीराम ने अपने जीवन में कृत सुकर्मों से लोक को जो प्रेरणा दी, उससे लोकमानस धर्म की ओर प्रवृत्त हुआ। तुलसी का विश्वास था कि उनकी मान्यता के स्पष्टीकरण के लिए पुराण साहित्य ही एक ऐसा साहित्य भण्डार है जिस में प्रभूत सामग्री विद्यमान है। यही कारण है कि रामचरितमानस के सबसे बड़े स्रोतग्रन्थ पुराण ही स्वीकार किये गये हैं।

मानस के अतिरिक्त अपनी अन्य रचनाओं में भी कवि अपना मत प्रस्तुत करते समय पुराणों को साक्षी के रूप में उपस्थित करता है। विभिन्न कथा-प्रसंगों के वर्णन में तथा अपने मत के समर्थन के लिए तुलसी ने पुराणों का ही प्रमुख रूप से आश्रय लिया है। यद्यपि तुलसी ने पुराण शब्द के साथ-साथ वेद-शब्द का भी उल्लेख किया है, परन्तु इससे उनका तात्पर्य वेद और पुराण की अभिन्नता से है। पुराण-साहित्य में वेदार्थ की ही व्याख्या की गई है क्योंकि जो वेदार्थ को पूर्ण करता है, वह पुराण कहलाता है।

उक्त विवेचन में हमारा तात्पर्य इतना ही है कि गोस्वामी जी पुराणों के प्रति इतने श्रद्धावान थे कि उनके मत में दोनों में कोई अन्तर न था। पुराणों का सन्देश तुलसी के प्राण थे। उससे हट कर चलने में न वे अपना और न लोक का कल्याण मानते थे। तुलसी ने अपनी इस भावना को 'रामचरितमानस' के अनेक पात्रों द्वारा स्पष्ट किया है। अत्रि की पत्नी अनुसूया सीता को पातिव्रत धर्म का उपदेश देते समय पुराणों का ही आधार लेती है[1]। विभीषण वेद-पुराण का उदाहरण देकर ही रावण को समझाने की चेष्टा करता

1. जग पतिव्रता चारि विधि अहहिं।
   वेद पुराण संत सब कहहिं॥

—रामचरितमानस, अरण्य काण्ड, ४/६

है[1]। वनवास के आदेश के उपरान्त जब सुमन्त राम को वन में घुमा कर वापस अयोध्या में चलने का आग्रह करता है तो राम उसे वेद और पुराण-वर्णित सत्य पर दृढ़ रहने की बात कह कर समझाते हैं[2]। विनय-पत्रिका, बरवैरामायण, वैराग्यसंदीपनी, दोहावली, कवितावली, गीतावली तथा मानस का उत्तरकाण्ड ऐसे वर्णनों से भरा पड़ा है, जिनमें पुराणों की महत्ता की चर्चा है। अवधपुरी के वर्णन में, रामराज्य, कलियुग, सत्-संगति एवं सन्तों के गुण-वर्णन आदि के प्रसंग में भी कवि ने बार-बार पुराणों की दुहाई दी है।

तुलसी की पुराण सम्बन्धी धारणा को ही पौराणिक आख्यानों के सम्बन्ध में भी स्वीकार किया जा सकता है। तुलसी का प्रमुख और प्रधान उद्देश्य श्रीराम के चरित्र का वर्णन है। अन्य छोटे-बड़े आख्यानों का विनियोग इसी आधिकारिक आख्यान के सन्दर्भ में किया गया है। रामचरित के वर्णन में अन्य रचनाओं से प्रभावित होते हुए भी तुलसी इस तथ्य से अभिज्ञ नहीं है कि पुराण-साहित्य में राम की जिन विशेषताओं का वर्णन उपलब्ध है, वह इन रचनाओं से भिन्न नहीं है। पुराणों में रामकथा विष्णु के अवतारवाद से प्रभावित है। मार्कण्डेय, लिंग, वामन तथा मत्स्य पुराण को छोड़ कर शेष सभी पुराणों में रामकथा का उल्लेख हुआ है। इन पुराणों से रामकथा तथा सहायक आख्यानों को लेकर अपने साहित्य में आवश्यकतानुसार उनका प्रयोग करके तुलसी ने अपने मन्तव्य की व्याख्या की है।

तुलसी साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी जो बात कहना चाहते हैं, उसकी व्याख्या अथवा स्पष्टीकरण वह पौराणिक आख्यानों के माध्यम से करते हैं। प्रसंग नाममाहात्म्य का हो, या धर्म का, नीति का हो, या त्याग का, राजमद का हो, या सत्संगति का, वह उसके स्पष्टीकरण में कोई न कोई आख्यान अवश्य देते हैं।

मानस के आरम्भ में राम के नाम की महत्ता बताते समय, कवि ने नारद, प्रह्लाद, ध्रुव, अजामिल, गज, गणिका आदि की चर्चा करते हुए कहा है कि राम के नाम का स्मरण करने से ही नारद, हरि और हर दिनों के प्रिय हुए[3]।

---

1. सुमति कुमति सबके उर रहहिं।
   नाथ पुराण निगम अस कहहिं॥ —रामचरितमानस : सुन्दर काण्ड, ३९/५
2. धर्म न दूसर सत्य समाना।
   आगम निगम पुराण बखाना॥ —रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, ९४/३
3. नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू॥
   —रामचरितमानस : बाल काण्ड, २५/२

ध्रुव ने हरिनाम जपा और उसके प्रताप से अनुपम लोक प्राप्त किया[1]। नीच अजामिल, गज और गणिका भी नाम के प्रभाव से मुक्त हो गये। कवितावली में नाम की चर्चा करते समय गोस्वामी जी ने कहा है कि राम के नाम का उल्टा जाप करने से भी वाल्मीकि का बिगड़ा काम सुधर गया, गज ग्राह से मुक्त हुआ, जीवन्ती नाम की वेश्या पापों से छूट गई, वेश्यागामी अजामिल नारायण शब्द का उच्चारण मात्र करने से वैकुण्ठ का अधिकारी बना और इसी नाम के प्रताप से द्रौपदी की लाज रक्षा हुई[2]।

भगवान् राम शरणागत रक्षक हैं। अपने भक्त उन्हें अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। जब भी भीर पड़ी है, उन्होंने अपने भक्तों की लाज रखी है। अतः व्यक्ति को सब प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त होकर राम का नाम जपना चाहिये। अपने इस भाव की संपुष्टि के लिए तुलसी नृसिंह, गज-ग्राह तथा द्रौपदी आख्यान का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि अपने शरणागत भक्त प्रहलाद की बात को रखने के लिए भगवान् नृसिंह रूप में खंभा फाड़ कर प्रकट हुए, ग्राह ग्रसित गजराज को छुड़ाने में तनिक भी बिलम्ब नहीं किया तथा राजसभा में द्रौपदी का चीर बढ़ा कर उसकी लाज बचाई[3]।

राम के विरोधी का संसार में कोई रक्षा नहीं कर सकता। जिस किसी ने भी जान बूझ कर अथवा माया के कारण राम से बैर ठाना तो उसे कोई बचा नहीं पाया। वायस, विराध, खर-दूषण, कबंध, वालि आदि के आख्यानों के माध्यम से गोस्वामी जी ने इसी मत को परि-पुष्ट किया है[4]।

---

1. ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊं। पायउ अचल अनूपम ठाऊं ॥

—रामचरितमानस : बाल काण्ड, २५/३

2. राम बिहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कवि कोकिल हूकी।
नामहि ते गज की गनिका की, अजामिल की चलि गै चूकी।
नाम प्रताप बड़े कुसमाज बचाइ रही पति पांडुवधू की।

—कवितावली : ७/८९

3. प्रभु सत्य करी प्रहलाद गिरा, प्रगटे नर केहरी खंभ महां।
झखराज ग्रस्यो गजराज कृपा तत्काल विलंब कियो न तहां॥
सुरसाखी दै राखी है पांडुवधू पट लूटत कोटिक भूप जहां।
तुलसी भुज सोच विमोचन को जन को पन राम न राख्यो कहां॥

—कवितावली : ७/८

4. वायस विराध, खर-दूषन कबंध बालि।
बैर रघुवीर के न पूरी काहू की परी ॥ —कवितावली : ६/२७

अपने धर्म सम्बन्धी विचारों के समर्थन में तुलसी ने अनेक आख्यानों का आश्रय लिया है। तुलसी के राम का अवतार ही धर्म की रक्षा हेतु हुआ था[1]। धर्म की स्थापना, अधर्म का नाश, सज्जनों की सुरक्षा और असज्जनों का विनाश उनके राम का मुख्य प्रयोजन था। तुलसी ने धर्म सम्बन्धी अनेक भूमियों की चर्चा करते समय धर्म को गृह-धर्मं, कुल-धर्म, समाज-धर्म, लोक-धर्म और विश्व-धर्म के रूप में चित्रित किया है। "किसी परिमित-वर्ग के कल्याण से सम्बन्ध रखने वाले धर्म की अपेक्षा विस्तृत जनसमूह के कल्याण से सम्बन्ध रखने वाला धर्म उच्चकोटि का है। धर्म की उच्चता, उसके लक्ष्य के व्यापकत्व के अनुसार समझी जाती है। गृहधर्म या कुलधर्म से समाज धर्मं श्रेष्ठ है समाजधर्म से लोकधर्म, लोकधर्म से विश्वधर्म[2]"

गोस्वामी जी ने श्रीराम के आख्यान द्वारा इन सभी प्रकार के धर्मों की अभिव्यंजना करते हुए मुख्यतः धर्म को व्यक्तिगत और सामूहिक दो वर्गों में विभाजित करके अनेक आख्यानों द्वारा उनका स्पष्टीकरण किया है। धर्म पर चलने से जिन लोगों को व्यक्तिगत लाभ पहुंचा उनमें ध्रुव, प्रहलाद, अम्ब-रीष, अजामिल आदि को लिया जा सकता है जबकि लोक-कल्याण को लेकर धर्म की साधना करने वाले लोगों में शिवि, दधीचि, अगस्त्य, हरिश्चन्द्र आदि के आख्यान विशेष महत्वपूर्ण हैं[3]। भगवान के विभिन्न अवतारों का मुख्य प्रयोजन भी सामूहिक धर्म साधना ही था।

तुलसी के मत में चरित्र का विशेष महत्व है। चरित्रहीन व्यक्ति अपने परिवार, समाज अथवा देश के लिये कलंक होता है। भारतीय संस्कृति में चरित्र का विशेष महत्व मानते हुए कवि ने राम को एक आदर्श चरित्रवान् व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। अपनी चारित्रिक विशेषताओं के कारण ही राम अपने जीवन संघर्ष में सफलतम व्यक्ति प्रमाणित हुए। चरित्र स्खलन के दुष्परिणामों के दृष्टान्त रूप में तुलसी ने इन्द्र-अहल्या का आख्यान प्रस्तुत किया। चन्द्रमा का चारित्रिक पतन विश्वव्यापी भयानक संघर्ष का कारण बना। नहुष, इन्द्रपद पाकर भ्रष्ट हुआ तथा अपने गुरू शुक्राचार्य की ज्येष्ठ कन्या अरजा के साथ बलात्कार करने से राजा दण्ड भी सर्वनाश का पात्र बना।

माया के प्रभाव से व्यक्ति बहुत से पापकर्म करता है। वह विनाशशील शरीर को स्थायी समझने लगता है और अनेक प्रलोभनों में पड़ कर अनैतिक

---

1. धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। —रामचरितमानस : किष्किन्धा काण्ड, ८/३
2. मानस की धर्मभूमि : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
3. सिवि दधीचि हरिचन्द नरेसा।
   सहे धरम हित कोटि कलेसा॥ —रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, १४/२

आचरण में लिप्त होता है। भगवान् राम की भक्ति से माया का यह भ्रम-जाल टूट सकता है और मानव सच्चा ज्ञान प्राप्त करके अपना कल्याण कर सकता है। माया के भ्रम जाल में पड़ कर पुत्र शोक से पीड़ित होते हुए राजा चित्रकेतु नारद के ज्ञानोपदेश से शोक मुक्त हुए थे। दक्षपुत्र, हर्यश्व-शवलाश्वों को जब नारद के द्वारा संसार की अनित्यता का पता चला तो वे सृष्टि रचना के कार्य से विरत होकर, मुक्ति की खोज में निकल गए।

पौराणिक आख्यानों में कुछ आख्यान तो ऐसे हैं जो कवि को अत्यन्त प्रिय हैं और जब भी उसे अवसर मिलता है वह अपनी बात के समर्थन में दृष्टान्त रूप में उनका प्रयोग कर देता है। यह बात किसी एक रचना के सम्बन्ध में नहीं अपितु कवि की प्रत्येक रचना के सम्बन्ध में कही जा सकती है। ये सारे आख्यान पुराण-साहित्य की देन हैं। इन आख्यानों में अजामिल का आख्यान भागवत पुराण में, अंबरीष का शिव, भागवत और ब्रह्मवैवर्त पुराण में, अहल्या का ब्रह्म, पद्म, भागवत, ब्रह्मवैवर्त, लिंग तथा स्कन्द पुराण में है। गजमोक्ष का आख्यान भागवत, पद्म और स्कन्द पुराण में, गणिका-आख्यान भागवत में, ध्रुव-आख्यान विष्णु, भागवत, अग्नि, भविष्य तथा लिंग पुराण में प्राप्त होता है। नहुष-आख्यान, भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त में, प्रहलाद-आख्यान विष्णु, पद्म, वायु, शिव, भागवत, लिंग तथा कूर्म पुराण में, वलि-आख्यान, अग्नि, स्कन्द, वामन, कूर्म और मत्स्य पुराण में, वाल्मीकि-आख्यान स्कन्द पुराण में, हरिश्चन्द्र-आख्यान ब्रह्म, भागवत, वायु तथा मार्कण्डेय पुराण में, शवरी-आख्यान पद्म पुराण में तथा जटायु का आख्यान भागवत तथा अग्नि-पुराण में प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त गोस्वामी जी ने कुछ ऐसे आख्यानों का भी दृष्टान्त रूप में उपयोग किया है जो केवल पुराण साहित्य में ही उपलब्ध होते हैं अन्यत्र नहीं। उनकी इस धारणा से स्पष्ट होता है कि वह जिस प्रकार के धर्म और नीति का प्रचार करना चाहते थे उसके अनुरूप सामग्री और आख्यान उन्हें पुराण साहित्य में ही उपलब्ध हुए। पौराणिक आख्यानों का दृष्टान्त रूप में प्रयोग करके वे अपने उद्देश्य को अधिक स्पष्ट रूप में जनता के समक्ष उपस्थित कर रहे थे। यदि ऐसा न होता तो गोस्वामी जी गणिका आख्यान का दृष्टान्त १२ बार, वाल्मीकि का १५ बार, अजामिल का १७ बार, गज मोक्ष का १८ बार, शवरी का २२ बार, अहल्या का २५ बार तथा जटायु आख्यान का दृष्टान्त ३६ बार न देते।

राम तथा कृष्ण सम्बन्धी पौराणिक आख्यानों का तुलसी साहित्य में उपयोग

यद्यपि रामकथा अत्यन्त प्राचीन है और मौखिक रूप से भी इसके

प्रचलन के प्रमाण मिलते हैं, किन्तु सर्वप्रथम वाल्मीकि ने इसे
साहित्यिक जीवन प्रदान किया[1]। रामायण के बाद महाभारत के द्रोणपर्व,
शान्तिपर्व और वनपर्व में रामचरित का उल्लेख हुआ है, परन्तु तुलसी दास
'रामचरितमानस' के आधार ग्रन्थों की चर्चा करते समय सर्वप्रथम स्थान नाना
पुराण को ही देते है। महाभारत के अनुसार भी सत्यवती पुत्र व्यास ने प्रथमतः
अट्ठारह पुराण लिखे और उसके बाद पुराणों के उपबृंहण के रूप से महाभारत
की रचना की[2]। रामायण और महाभारत में पुराण सम्बन्धी अन्य प्रसंग भी इस
बात की पुष्टि करते हैं[3]। तुलसी ने नाना पुराण के अनन्तर जो 'क्वचिद-
न्यतोऽपि' शब्द लिखा है, उसका तात्पर्य यही है कि उन्होंने अपने कविकर्म में
पुराणों के अतिरिक्त अन्य स्रोतों का भी उपयोग किया है। यहां हम उसी
सामग्री की चर्चा करेंगे जिसका सम्बन्ध पुराण-साहित्य के साथ है।

तुलसी धर्म के कवि थे और हमारे देश के धार्मिक-साहित्य में पुराणों का
एक विशेष स्थान रहा है। वेदों और उपनिषदों की अपेक्षा पुराण-साहित्य
अधिक लोकप्रिय रहा है, क्योंकि पुराणों में सीधी-सादी धार्मिक कथाओं और
दृष्टान्तों द्वारा जनता को उपासना, पूजा, भक्ति, जप, व्रत, नीति, सदाचार
आदि की शिक्षा दी गई है, जिससे प्रेरणा पाकर सामान्य व्यक्ति भी अपने
जीवन को शुद्ध और पवित्र बनाकर समाज के लिये मंगलमय हो सकता है।

तुलसी का भी यही उद्देश्य था। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने
एक तो राम के धर्ममय वृत्त को आधार बनाया और दूसरा पुराणों से अनेक
आख्यानों को लेकर उनका सन्दर्भ के अनुसार विनियोग किया। जहां तक राम-
कथा का सम्बन्ध है,—"पुराणों की रामकथा में वाल्मीकीय कथा से कोई
विशिष्टता नहीं है। इनके वर्णन अधिकांशतः आदि काव्य के अनुसार ही
हैं[4]।" इस सम्बन्ध में एक दूसरे विद्वान का मत है कि—"पुराणों का तो न
केवल अध्ययन वरन् उपयोग भी 'रामचरितमानस' में हुआ दिखाई पड़ता
है[5]।" कवि ने अपनी दूसरी मुक्तक रचनाओं में भी पुराणों तथा संस्कृत
साहित्य के अन्य ग्रन्थों से स्फुट सामग्री ली है। तुलसी ने रामचरितमानस

---

1. माताप्रसाद गुप्त, तुलसीदास : पृ० २८६
2. अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवती सुतः।
   पश्चाद् भारतमाख्यान चक्रे तदप बृंहितम्॥
3. (क) वाल्मीकि रामायण : बाल काण्ड, ९/१, अयोध्या काण्ड, १५/१८, १६/१
   (ख) महाभारत : वनपर्व, १९१/१६
4. डा० रामेश्वरप्रसाद सिंह, तुलसीमानससन्दर्भ : पृ० ६२
5. माताप्रसादगुप्त, तुलसीदास : पृ० २८७

के आरंभिक पृष्ठों में रामकथा की परम्परा के विषय में जो संकेत दिये हैं, उन में – अध्यात्म रामायण तथा भुशुण्डि रामायण को विशेष प्रामाणिक माना जाता है, क्योंकि उन्होंने अपने साहित्य में वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण और भुशुण्डि रामायण का ही विशेष उपयोग किया है। यद्यपि खोज करने पर तुलसी की रचनाओं में हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव, उत्तररामचरित, योगवशिष्ठ, कुमारसंभव, चाणक्यनीति, हितोपदेश, भगवद्गीता, अभिज्ञानशाकुन्तल, आनन्दरामायण, अद्भुत रामायण, पराशर स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, हारीतस्मृति आदि के उपयोग के प्रमाण मिलते हैं, परन्तु अपने मन्तव्य को अधिक सारगर्भित बनाने के लिये उन्होंने पुराणों से ही अधिक सामग्री प्राप्त की है।

तुलसी भारतीय संस्कृति के आख्याता थे और रामकथा भारतीय संस्कृति का उज्वलतम प्रतीक है। यही कारण है कि प्रायः सभी पुराणों में रामकथा के वर्णन उपलब्ध होते हैं। पुराणसाहित्य में वर्णित रामकथा सम्बन्धी प्रसंगों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

ब्रह्म पुराण

इस पुराण में राम कथा का उल्लेख अनेक बार हुआ है। तीर्थ माहात्म्य एवं अवतार वर्णन प्रसंग में रामकथा की चर्चा हुई है। रावणवध, सीतालक्ष्मण सहित राम का अयोध्यागमन, श्रीराम द्वारा आयोजित अश्वमेध यज्ञ में लव और कुश के आने का वर्णन है[1]। एक दूसरे स्थान पर रावण-वध के उपरान्त, सीता के पापशमन के लिये राम का सीता आदि के साथ गौतमीं गंगा पर जाने का उल्लेख है[2]। राम-रावण युद्ध[3] तथा राम के अवतार धारण का प्रसंग भी उपलब्ध होता है[4]।

पद्म पुराण

इस पुराण में रामकथा अत्यन्त विस्तार से वर्णित है। पाताल खण्ड के ६८ अध्यायों में रामकथा कही गई है[5]। इसी पुराण में सीता की निन्दा करने वाले धोबी के पूर्व जन्म का वृत्तान्त भी मिलता है[6]। लव-कुश की

---

1. ब्रह्म पुराण : अ० १५४
2. ब्रह्म पुराण : अ० १५७
3. ब्रह्म पुराण : अ० १७६
4. ब्रह्म पुराण : अ० २१३
5. पद्म पुराण : पाताल खण्ड, अ० ६८
6. पद्म पुराण : अ० ५७

उत्पत्ति तथा राम की सेना के साथ उनके युद्ध का उल्लेख है[1]। एक अन्य स्थल पर वाल्मीकि रामायण के सातों काण्डों में वर्णित कथा का सार दिया गया है[2]। इन प्रसंगों के अतिरिक्त सृष्टि खण्ड में भी अनेक स्थानों पर राम-कथा की चर्चा प्राप्त होती है[3]।

विष्णु पुराण

विष्णु पुराण में राम के जन्म से लेकर रावण-वध तक की कथा का संक्षिप्त वर्णन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त सीता की उत्पत्ति की कथा का भी प्रसंग प्राप्त होता है[4]।

शिव पुराण

इस पुराण में रामवनवासकथा, नारदमोहकथा, सती द्वारा राम की परीक्षा आदि का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। इस पुराण के शिव प्रधान देवता हैं, अतः राम भी शिव से प्रभावित दिखाए गये हैं[5]।

भागवत पुराण

यह पुराण वैष्णव धर्म का सर्वप्रमुख ग्रन्थ माना जाता है। इसमें भगवान विष्णु की महिमा का विस्तार से गान हुआ है। इसमें दो स्थानों पर रामकथा वर्णित है। एक स्थान पर राम-रावण युद्ध की समस्त कथा का संक्षिप्त वर्णन है[6] तथा दूसरे स्थान पर दशावतार वर्णन प्रसंग में रामकथा का उल्लेख है[7]।

नारद पुराण

इस पुराण के पूर्वखण्ड तथा उत्तरखण्ड दोनों में रामकथा की संक्षिप्त चर्चा है। दोनों स्थानों पर बाल काण्ड से लेकर युद्ध काण्ड तक की घटनाओं का संकलन है[8]।

अग्नि पुराण

अग्नि पुराण में वाल्मीकि रामायण के सातों काण्डों में वर्णित रामकथा

---

1. पद्म पुराण : अ० ५९-६६
2. पद्म पुराण : अ० ११२
3. पद्म पुराण : सृष्टि खण्ड, अ० ३२
4. विष्णु पुराण : अंश ४, अ० ५
5. शिव पुराण : ज्ञान संहिता, अ० ३०
6. भागवत पुराण : स्कन्ध ९, अ० १०-१२
7. भागवत पुराण : स्कन्ध २, अ० ७
8. नारद पुराण : पूर्व खण्ड, अ० ७९, उत्तर खण्ड, अ० ७५

अत्यन्त संक्षिप्त रूप में दी गई है। कुछ प्रसंगों को छोड़कर वाल्मीकिरामायण और इस पुराण की रामकथा में कोई अन्तर नहीं है[1]।

ब्रह्मवैवर्त पुराण

इस पुराण में वेदवती की कथा-वर्णन के प्रसंग में सीता का वर्णन हुआ है[2]। अग्निदेव द्वारा एक मायामयी सीता का उल्लेख तथा रावण द्वारा सीता-हरण के प्रसंग का भी वर्णन मिलता है। एक अन्य स्थल पर भी रामायण की संक्षिप्त कथा प्राप्त होती है[3]।

वराह पुराण

इस पुराण में स्वतन्त्र रूप में रामकथा का विवरण प्राप्त नहीं होता। केवल एक स्थान पर दशावतारचरित प्रसंग में राम के अवतार ग्रहण का संकेत मिलता है[4]। कुछ प्रसंग अन्य स्थानों पर भी उपलब्ध होते हैं[5]।

स्कन्द पुराण

यह एक शैव पुराण है। शिव पुराण की तरह इसमें वर्णित रामकथा पर भी शिव का प्रभाव दिखाई देता है। इसके अनेक खण्डों में रामकथा का वर्णन आया है। महेश्वर खण्ड में रावणोपाख्यान के अन्तर्गत रावण की तपस्या, सीताहरण एवं राम द्वारा उसके वध की कथा है[6]। वैष्णव खण्ड में अयोध्या-माहात्म्य वर्णन प्रसंग में रामचरित का वर्णन हुआ है[7]। ब्रह्म खण्ड के अनेक अध्यायों में भी रामकथा सम्बन्धी प्रसंग मिलते हैं[8]। यद्यपि स्कन्द पुराण में रामकथा से सम्बन्धित कुछ आख्यानों की चर्चा है किन्तु प्रमुख रूप से इसमें फुटकर प्रसंगों की ही प्रधानता है।

कूर्म पुराण

इस पुराण में दो स्थानों पर रामकथा का वर्णन उपलब्ध होता है। एक स्थान पर सूर्यवंश वर्णन में रामचरित का संक्षिप्त वर्णन हुआ है, जिसमें राम

---

1. अग्नि पुराण : अ० ५-११
2. ब्रह्मवैवर्त पुराण : प्रकृति खण्ड, अ० १४
3. ब्रह्मवैवर्त पुराण : श्रीकृष्णजन्म खण्ड, अ० ६२
4. वराह पुराण : अ० ४
5. वराह पुराण : अ० १२, ४५, १३६, १७८
6. स्कन्द पुराण : महेश्वर खण्ड, अ० ९
7. स्कन्द पुराण : वैष्णव खण्ड, अ० ६
8. स्कन्द पुराण : ब्रह्म खण्ड, अ० २, १८, ३०, ४४, ४५, ४९,

के जन्म से लेकर रावण-वध तक की सारी कथा कही गई है[1]। अन्यत्र पतिव्रतोपाख्यान प्रसंग में रावण द्वारा मायारुपिणी सीता के हरण का वर्णन है[2]।

गरुड़ पुराण

इस पुराण में विष्णु के अवतारों के वर्णन प्रसंग में रामकथा का सांकेतिक उल्लेख है[3]। एक दूसरे स्थल पर वाल्मीकि-रामायण की कथा का संक्षिप्त वर्णन हुआ है[4]।

ब्रह्माण्ड पुराण

इस पुराण में इक्ष्वाकुवंश[5] वर्णन प्रसंग में राम का तथा उसके अनन्तर मिथिला के राजवंश का परिचय देने के अवसर पर सीता की कथा का संक्षिप्त वर्णन हुआ है[6]। एक दूसरे स्थल पर अन्य अवतारों के साथ राम का भी उल्लेख है[7]।

इसी प्रकार वामन[8], लिंग[9], तथा भविष्य पुराण[10] में भी रामकथा का कुछ श्लोकों में सांकेतिक वर्णन उपलब्ध होता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रायः सभी पुराणों में, किसी न किसी रूप में रामकथा वर्णित है, किन्तु तुलसी ने विषय के अनुरूप तथा अपने आदर्श की पुष्टि के लिए उन्हीं प्रसंगों और आख्यानों का चयन किया जो उन के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक थे। भक्ति संम्बधी निजी आस्था की दृष्टि से गोस्वामी जी भागवत पुराण से सर्वाधिक प्रभावित थे। काव्य में अपेक्षित अन्य आवश्यक वर्णनों के लिये भी उन्होंने दूसरी रचनाओं की अपेक्षा पुराणों से ही अधिक सामग्री प्राप्त की है। जो सामग्री उन्होंने 'अध्यातम रामायण' से ली है, वह भी पुराण-साहित्य की ही देन है, क्योंकि—ब्रह्माण्ड पुराण में जो रामायणी कथा है, वही अलग करके 'अध्यातम रामायण' के नाम से प्रकाशित

1. कूर्म पुराण : पूर्व भाग, अ० २१
2. कूर्म पुराण : उत्तर भाग, अ० ३४
3. गरुड़ पुराण : पूर्व खण्ड, अ० १४६
4. गरुड़ पुराण : पूर्व खण्ड अ० १४७
5. ब्रह्माण्ड पुराण : मध्य भाग, अ० २०
6. ब्रह्माण्ड पुराण : मध्य भाग अ० २१
7. ब्रह्माण्ड पुराण : मध्य भाग अ० ७३
8. वामन पुराण : अ० १६, १८
9. लिंग पुराण : पूर्व भाग, अ० ६६, उत्तर भाग, अ० ५
10. भविष्य पुराण : प्रतिसर्ग पर्व, प्रथम खण्ड, अ० २, चतुर्थ खण्ड, अ० १३

हुई है[1]। उन की रचनाओं में पद-पद पर पुराण-साहित्य के श्लोकों के अनुवाद मिलते हैं। "कहीं-कहीं एक चौपाई के भाव किसी एक पुराण से लिये गये हैं तो उसके आगे की चौपाई के भाव किसी दूसरे पुराण के हैं[2]।" कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:—

अध्यात्म रामायण	**राम चरित मानस**
प्रातरुत्थाय सुस्नातः, पितरावभिवाद्य च। पौर कार्याणि सर्वाणि, करोति विनयान्वितः —बाल काण्ड : १/६४	प्रातकाल उठिके रघुनाथा। माता पिता गुरु नावहिं माथा॥ आयसु मांगि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषहिं मन राजा॥ —बाल काण्ड : २०४/४
वन्धुभिर्सहितो नित्यं, भुक्त्वा मुनिभिरन्वहम्। धर्मशास्त्र रहस्यानि, श्रृणोति व्याकरोति च॥ बाल काण्ड : १/६५	वेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजहिं समुझाई॥ बाल काण्ड : १०४/३

पद्म पुराण	**राम चरित मानस**
यत्र यत्र ययौ काकः, शरणार्थी स वायसः। तत्र-तत्र तदस्त्रं तु, प्रविवेश भयावहम्॥ —उत्तर काण्ड : २६९/१९९	जिमि जिमि भाजत सक्रसुत। व्याकुल अति दुख दीन॥ तिमि तिमि धावत रामसर। पाछे परम प्रवीन॥

विष्णु पुराण	**राम चरित मानस**
ऊहुरुन्मार्ग गामीनि, निम्नगाम्भांसि सर्वतः। मनांसि दुर्विनीतानां, प्राप्य लक्ष्मी नवामिव॥ —५/६/३८	छुद्र नदी भरी चली तोराई। जस थोरेहु धन खल इतराई॥ —किष्किन्धा काण्ड : १३/३

---

1. (क) राम दास गौड, हिन्दुत्व : पृ० १४३
   (ख) विण्टर नित्ज़, हिस्ट्री आफ़ इण्डियन लिटरेचर : भाग २, पृ० ५७८
2. राम नरेश त्रिपाठी, तुलसी और उनका काव्य : पृ० १२४

शिव पुराण

मितं ददाति हि पिता,
मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य तु दातारं,
भर्तारं यो न सेवते ॥
—पार्वती खण्ड, ५४/५०

रामचरितमानस

मातु पिता भ्राता हितकारी।
मितप्रद सुनु सब राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता वैदेही।
अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
—अरण्य काण्ड, ४/३

स्कन्द पुराण

चापमानय सौमित्रे,
शरांश्चाशी विषोपमान्।
सागरं शोषयिष्यामि,
पद्भ्यां यान्तु प्लवंगमाः॥
—ब्रह्म खण्ड, २/६७

रामचरितमानस

लछिमन बान सरासन आनू।
सोखौं बारिधि बिसिख कृसानू॥
—सुन्दर काण्ड, ५७/१

भागवत पुराण

शूद्रा प्रतिगृहीष्यन्ति,
तपोवेषोपजीविनः।
धर्मं वक्ष्यन्ति अधर्मज्ञा,
अधिरुह्योत्तमासनम्॥
—स्कन्ध, १२, ३/३६

रामचरितमानस

शूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना।
बैठि बरासन कहहिं पुराना॥
—उत्तर काण्ड, ९९/५

वित्तमेव कलौ नृणां,
जन्माचार गुणोदय :।
—स्कन्ध, १२,२/२

धनवंत कुलीन मलीन अपी।
—उत्तर काण्ड, १००/४

पतिं त्यक्ष्यन्ति निर्द्रव्यं।
—स्कन्ध, १२,३/३६

गुन मन्दिर सुन्दर पति त्यागी।
—उत्तर काण्ड, ९८/२

पाण्डित्ये चापलं वचः।
स्कन्ध, १२, २/४

पण्डित सोई जो गाल बजावा।
—उत्तर काण्ड, ९७/२

ब्रह्मवैवर्त पुराण

लक्ष्मणो नैव वुबुधे
गोप्यमन्यस्य का कथा।
—प्रकृति खण्ड, १४/३५

रामचरितमानस

लछिमन हूं यह मर्म न जाना।
जो कछु चरित रचा भगवाना॥
—आरण्य काण्ड, २३/३

गरुड़ पुराण	रामचरितमानस
दुर्जना: शिल्पिनो दासा, दुष्टाश्च पटहा: स्त्रिय: । ताड़िता मार्दवं यन्ति, न ते सत्कार भाजनम् ॥ —आचार काण्ड, १०९/३१	ढ़ोल गंवार शूद्र पशु नारी । सकल ताड़ना के अधिकारी ॥ —सुन्दर काण्ड, ५८/३
वरं हि नरके वासो, न तु दुश्चरिते गृहे । —आचार काण्ड, १०९/३	बरु भल बास नरक कर ताता । दुष्ट संग जनि देइ बिधाता ॥ —सुन्दर काण्ड, ४५/४

इस प्रकार प्राय: सभी पुराणों के छायानुवाद तुलसी की रचनाओं में प्राप्त होते हैं। रामचरितमानस में नियोजित मुख्य तथा आनुषंगिक आख्यानों के लिये भी तुलसी पुराण-साहित्य के अपार ऋणी रहे हैं। जय-विजय, तुलसी, ध्रुव, अगस्त्य, महिषासुर, अहल्या, गंगावतरण, गणिका, गणेश, जलंधर, नारदमोह, नारद-दक्षशाप, प्रहलाद, रन्तिदेव, हरिश्चन्द्र, शिवि आदि से संबन्धित सभी आख्यान पुराण-साहित्य की देन हैं।

अग्निपुराण तथा रामचरितमानस के रामाख्यान की विषय सूची तो केवल मात्र उसी की ही अनुकृति है। केवट, शवरी, समुद्र पर कोप और लक्ष्मण मेघनाथ युद्ध, इसके अपवाद ठहरते हैं। केवल सातवें काण्ड की विषय वस्तु पृथक् है। अग्निपुराण की रामायणी कथा के उत्तर काण्ड में राम का अगस्त्य से मिलन, वालमीकि आश्रम में लव-कुश की उत्पत्ति तथा राम के वैकुण्ठ गमन का वर्णन है जबकि मानस में इन में से किसी भी प्रसंग की चर्चा तक नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि 'रामचरितमानस' में घटनाओं के क्रम-निर्धारण में तुलसी अग्निपुराण से विशेष प्रभावित थे। जिन आख्यानों का वर्णन अग्निपुराण में नहीं मिलता वे आख्यान, जैसे सतीमोह, दक्षयज्ञविध्वंस, नारदमोह आदि कवि ने शिव पुराण से प्राप्त किये हैं। इन्द्र-अहल्या का आख्यान-पद्म पुराण एवं ब्रह्म पुराण से तथा अन्धतापस का आख्यान ब्रह्म पुराण से लिया गया है।

कृष्णपरक आख्यानों की दृष्टि से भागवत पुराण, विशेष कर इसका दशम स्कन्ध, तुलसी के लिए सर्वाधिक जीवन्त स्रोत सिद्ध हुआ है। वर्षा और शरद ऋतु का वर्णन, सज्जनप्रशंसा, खलनिन्दा, चतुर्युगवर्णन आदि में तुलसी ने इसी पुराण से प्रभूत सामग्री प्राप्त की है। 'विनयपत्रिका', 'कृष्ण गीतावली, एवं 'दोहावली' में भगवान श्रीकृष्ण से सम्बन्धित आख्यानों को कवि ने

इसी पुराण से लिया है। परीक्षित और कलियुग का आख्यान प्रथम स्कन्ध से, वराह अवतार, हिरण्यकशिपु व हिरण्याक्ष का आख्यान तृतीय स्कन्ध से, दक्ष-यज्ञ विध्वंस और ध्रुव आख्यान चतुर्थ स्कन्ध से, अजामिल, दक्ष का नारद को शाप, वृत्रासुरवध षष्ठ स्कन्ध से, प्रहलाद का आख्यान सप्तम स्कन्ध से, गज-मोक्ष, शिवविषपान, विष्णुमोहिनीरूपधारण, वलि-वामन तथा मत्स्यावतार आख्यान अष्टम स्कन्ध से, त्रिशंकु, हरिश्चन्द्र तथा गंगावतरण नवम स्कन्ध से, पूतनाउद्धार, ऊखलबन्धन, यमलार्जुन, कालियदमन, गोवर्धनधारण, रुक्मिणीहरण, सीमन्तकमणि, सत्यभामा-पारिजात, वाणासुर, नृग, शिशुपाल तथा सुदामा के आख्यान दशम स्कन्ध से लिये गए हैं।

अन्य प्रसंगों में मानवधर्म, वर्णधर्म, स्त्रीधर्म, गृहस्थ सम्वन्धी सदाचार, गृहस्थों के लिए मोक्षधर्म आदि का वर्णन सप्तम स्कन्ध से, गोपीविरह, गोपी उपालम्भ, कुब्जा पर कृपा तथा भगवान् के अवतारों का वर्णन दशम स्कन्ध से, सत्संग की महिमा, भक्ति की महिमा, ज्ञान, कर्म और भक्ति तथा नाम कीर्तन का महत्व आदि प्रसंग एकादश स्कन्ध से लिये गये हैं।

स्पष्ट है कि पुराण-साहित्य में राम और कृष्णकथा से सम्वन्धित जो भी सहायक सामग्री उपलब्ध हुई, उसका अवसर तथा प्रसंग के अनुकूल पूरा-पूरा लाभ उठाया गया है। राम और कृष्ण सम्वन्धी आख्यान तुलसी द्वारा व्याख्येय भारतीय दर्शन को सहज एवं सर्वजन ग्राह्य बनाने में अत्यन्त प्रभावोत्पादक थे, इसीलिए तुलसी इन आख्यानों की ओर विशेष रुचि एवं तत्परता से अग्रसर हुए हैं।

तुलसी-साहित्य में प्रयुक्त पौराणिक आख्यानों में समन्वय

तुलसी समन्वयवादी कवि थे। देश तथा जाति की भलाई के लिए उन्हों ने समन्वयवादी दृष्टि को ही प्रश्रय दिया। तुलसीयुग में देश में विदेशी शासन के प्रभुत्व के परिणाम स्वरुप समाज आदर्शहीन हो चुका था। उच्चवर्ग विलासिता तथा निम्नवर्ग अन्याय एवं अत्याचार से आतंकित था। सन्त कवि, वेदों और पुराणों से उदासीन होकर जनता को भी अपनी प्राचीन साहित्यिक उपलब्धियों से पराङमुख कर रहे थे। सिद्ध तथा योगमार्गी अपने चमत्कारों से जनता को दिग्भ्रमित करने में लीन थे। विभिन्न धार्मिक संप्रदाय अपने-अपने देवता को श्रेष्ठ बता कर, दूसरे देवताओं के उपासकों की कटु आलोचना करने में व्यस्त थे। संक्षेप में तुलसीयुग राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि

से विश्रृंखलता का युग था। भोली-भोली जनता कोई निर्णय नहीं कर पा रही थी कि वह किस संप्रदाय का आश्रय ग्रहण करे। इस प्रकार की स्थिति में दिग्भ्रमित जनता का मार्गदर्शन करने के लिए गोस्वामी जी ने समन्वय के सिद्धान्त को स्वीकार किया।

जब हम तुलसी के समन्वय की बात करते हैं तो उसका अर्थ केवल पारस्परिक सम्बन्ध का निर्वाह मात्र नहीं, "उसका एक विशिष्ट अर्थ भी है—परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली वस्तुओं या बातों का विरोध—परिहारपूर्वक सामंजस्य"[1]। इस दृष्टि से गोस्वामी जी ने जनता का उचित मार्गदर्शन तथा उस के कष्टों और समस्याओं के उपचार के लिए समन्वय का अवलम्ब ग्रहण किया। उनके समन्वय के अनेक आधार थे, जैसे :—

१. भक्ति, ज्ञान और कर्म,
२. शक्ति, शील और सौन्दर्य,
३. व्यक्तिधर्म और लोकधर्म,
४. धर्म और नीति,
५. सगुण और निर्गुण,
६. शिव और विष्णु,
७. ब्राह्मण और शूद्र।

१. भक्ति, ज्ञान और कर्म का समन्वय—

'भक्ति' का अर्थ है 'भगवान में परम अनुरक्ति'। भागवत के अनुसार सांसारिक विषयों का ज्ञान देने वाली इन्द्रियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति, जब निष्काम रूप से भगवान् में लगती है, तब इस प्रवृत्ति को भक्ति कहते हैं। शास्त्रों में कर्म और ज्ञान को भी भगवत् प्राप्ति का साधन माना गया है। कर्ममार्ग के अनुसार ब्रह्मचर्य आश्रम के अनन्तर गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होकर वेदविहित यज्ञ आदि कर्मों का अनुष्ठान करना ही श्रेयस्कर है।

ज्ञानमार्ग में सम्पूर्ण सांसारिक कर्म त्याग कर, साधना और तपस्या पर ही बल दिया गया है, क्योंकि ज्ञानमार्गी कर्म को ज्ञान की प्राप्ति में बाधक मानते हैं। कर्मवादियों के अनुसार वेदविहित कर्मों के अनुष्ठान तथा निषिद्ध कर्मों के त्याग से ही परमगति प्राप्त हो जाती है, परन्तु ज्ञानवादियों के अनुसार कर्म का फल अवश्यमेव भोगना पड़ता है। अतः कर्म के द्वारा मोक्ष-

---

1. डा० उदयभानु सिंह, तुलसी काव्य मीमांसा : पृ० ३२३

प्राप्ति संभव नहीं। उनके मत में कर्म चाहे जैसा भी हो, बन्धन का ही कारण है।

इस समस्या का समाधान तुलसी ने भक्ति-भावना में कर्म और ज्ञान का समन्वय करके उसे सभी के लिये ग्राह्य बना दिया। तुलसी जानते थे कि भक्ति के लिये ज्ञान तथा कर्म दोनों आवश्यक हैं। ज्ञान और कर्म से हीन भक्ति निरर्थक है। भगवान् को प्रसन्न करने के लिए कर्म आवश्यक है तथा विनश्वर शरीर एवं अविनश्वर आत्मा के रहस्य को समझने के लिये ज्ञान भी उपेक्षित नहीं रह सकता।

कवि ने काकभुशुंडि के आख्यान द्वारा इन तीनों में समन्वय का उपदेश देते हुए बताया है कि काकभुशुंडि पहले कट्टर संप्रदायवादी थे। अपने प्रथम जन्म में ज्ञानमार्गी थे। भक्ति पर उन्हें तनिक भी विश्वास नहीं था। इसी ज्ञान के अहंकार के कारण वे तीन जन्मों तक कष्ट उठाते रहे। ज्ञान के साथ-साथ जब उनमें भक्ति का उदय हुआ तभी उनका उद्धार हो सका। वस्तुतः भक्ति और ज्ञान में कोई भेद नहीं है[1]। दोनों के समन्वित रूप में संसार के सभी क्लेश नष्ट हो जाते हैं।

२. शक्ति, शील और सौन्दर्य का समन्वय—

तुलसी ने राम के चरित में शक्ति, शील और सौन्दर्य का समन्वय किया है। इन तीनों का पृथक्-पृथक् उतना महत्व नहीं जितना इनके समन्वित रूप का। कवि ने राम के आख्यान के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि इन तीनों विशेषताओं के कारण ही राम एक आदर्श मानव तथा आदर्श भगवान् के रूप में स्थापित हुए थे। राम सौन्दर्य के आगार हैं, शक्ति के प्रतीक हैं तथा शील की मूर्ति हैं। जनकपुरी में, तथा राम के वनगमन प्रसंग में सौन्दर्य का, सुबाहु, मारीच, विराध, खर-दूषण, रावण, कुम्भकर्ण आदि के दमन में शक्ति का तथा परिवार एवं जनता के साथ किये जाने वाले राम के कोमल व्यवहार में शील का परिचय मिलता है।

३. व्यक्तिधर्म तथा लोकधर्म का समन्वय—

तुलसी ने अपनी रचनाओं में धर्म की विशद व्याख्या करते हुए उसकी अनेक ऊंची-नीची भूमियों का वर्णन किया है। प्रमुख रूप से धर्म के दो भेद हैं :— व्यक्तिधर्म तथा लोकधर्म। व्यक्तिधर्म में अपना कल्याण निहित होता

---

1. भगतिहिं ग्यानहिं नहिं कछु भेदा।
   उभय हरहिं भव संभव खेदा।। —रामचरितमानस : उत्तर काण्ड, ११४/७

है तथा लोकधर्म में सामान्य जनता का। अपनी एकांगिता में इनमें से कोई धर्म अनुकरणीय नहीं। धर्म तो वही है, जिससे आत्मकल्याण भी हो तथा लोककल्याण भी। तुलसी ने अपने इसी मन्तव्य का सन्देश राम के आख्यान द्वारा दिया है। राम के चरित्र में सभी धर्मों का समन्वय है। व्यक्ति का आदर्श क्या हो, यह राम के चरित्र से स्पष्ट होता है। व्यक्ति का परिवार के लोगों से कैसा व्यवहार हो, इसका आदर्श भी राम का परिवार धर्म है। पारिवारिक जीवन में वह एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई तथा आदर्श पति हैं। समाज एवं लोकधर्म के क्षेत्र में भी वे एक आदर्श लोकरक्षक राजा के रूप में हमारे सामने आते हैं। कवि ने राम के आख्यान के माध्यम से व्यक्ति-धर्मऔर लोक-धर्म का सुन्दर समन्वय किया है।

४. धर्म और नीति का समन्वय —

मानव के जिस कर्त्तव्यपालन में मानवता की रक्षा और विश्व का कल्याण सन्निहित है, उस कर्त्तव्य को धर्म तथा उसके विपरीत आचरण को अधर्म कहा जाता है। शास्त्रों के अनुसार—"जिस सदाचार के पालने से मानव को लोक में अभ्युदय और परलोक में परम कल्याणरूप शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है, वही धर्म है[1]। भारतीय धर्मशास्त्रों में सदा ही आत्मशुद्धि, आध्यात्मिक उन्नति तथा अन्तःकरण की पवित्रता को ही धर्म का मुख्य अंग स्वीकार किया गया है। व्यास के मत में सत्य, दया, पवित्रता, जितेन्द्रियता, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, संतोष, भगवान् की सेवा, पूजा, कीर्तन व नामगुण स्मरण आदि भी धर्म के अंग हैं[2]।

नीति का अर्थ है—व्यवहार। जिस मार्ग पर चलने से सभी प्राणियों का कल्याण हो, उसे नीति कहा जाता है। शील, शिष्टता, सदाचार आदि भी नीति के अंग हैं।

धर्म या नीति का एकांगी पालन श्रेयस्कर नहीं होता। अतः तुलसी ने इन दोनों तत्वों में समन्वय का संदेश देने के लिए जिन आख्यानों का विनियोग किया है, उनमें शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, बलि आदि के आख्यान विशेष हैं। बालिवध आख्यान द्वारा कवि ने स्पष्ट किया है कि धर्म के लिए

---

1. यतोभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः। वैशेषिक दर्शन : १/१/२
2. सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
   अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥
   संतोषः समदृक सेवा ग्राम्येहो परमः शनैः।
   श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः॥ —भागवत पुराण : ७/११/८-१२

अवतरित होने वाले राम ने जब बालि को नीति विरुद्ध आचरण करते देखा तो तुरन्त उसका वध कर दिया। कवि ने राम के चरित्र में धर्म और नीति के समन्वय का सुन्दर निदर्शन प्रस्तुत किया है।

५. सगुण और निर्गुण का समन्वय—

तुलसीयुग में साकार तथा निराकार ईश्वर की आराधना के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद था। सन्त कवियों तथा उनके पूर्ववर्ती नाथपन्थी योगियों ने साकार और निराकार उपासना में गहरी खाई खोद कर विरोध एवं वैमनस्य का वातावरण उत्पन्न कर दिया था, जिसका निराकरण तुलसी के लिये आवश्यक हो गया था। उनके राम वेदोक्त ब्रह्म हैं, जिन्हें पुत्र के रूप में प्राप्त करने के लिये मनु-सतरूपा ने तप किया था। फिर यही दशरथ-कौसल्या के पुत्र के रूप में अवतरित हुए थे। ये राम सगुण भी हैं और निर्गुण भी। निर्गुण, अरूप, अलख और अजन्मा ब्रह्म ही भक्तों के प्रेम-वश सगुण हो जाता है। जिस निर्गुण ब्रह्म का वेद और बुध गान करते हैं, जिसका मुनि ध्यान करते हैं, वही ब्रह्म भक्तों के हित के लिए दशरथसुत राम के रूप में अवतरित हुआ[1]।

कवि ने काकभुशुण्डि तथा सती आख्यान में निर्गुण तथा सगुण के समन्वय का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। काकभुशुण्डि अपने पूर्वजन्म का वृत्त बताते हुए कहते हैं कि उन्हें निर्गुण मत बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था। इसके विपरीत सगुण ब्रह्म पर ही उन्हें अगाध विश्वास था[2]। अपनी इसी भावना के कारण उनका अपने गुरु से विवाद हो गया तथा गुरु द्वारा सगुण-निर्गुण की एकता समझाने पर भी वे अपनी बात पर अड़े रहे[3]। परिणाम में गुरु के शापवश उन्हें काक बनना पड़ा। सगुण व निर्गुण में समन्वय स्थापित कर लेने के उपरान्त ही उनके मन को सुख, सन्तोष तथा शान्ति लाभ हुआ।

शिव-विष्णु का समन्वय—

गोस्वामी जी के युग में शैव और वैष्णव दोनों सम्प्रदाय एक दूसरे के प्रति अनास्था एवं अश्रद्धा से पीडित थे। शैव, वैष्णवों तथा उनके देवताओं पर तथा वैष्णव शैवों तथा उनके देवताओं पर आक्रमण करते थे। साधकों की

---

1. जेहि इमि गावहिं वेद बुध जाहिं धरहिं मुनि ध्यान।
   सोइ दसरथसुत भगतहित कोसलपति भगवान॥
   —रामचरितमानस : बाल काण्ड, २१८

2. निर्गुन मत नहिं मोहि सुहाई।
   सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई॥ —रामचरितमानस : उत्तर काण्ड, १०९/८
   —रामचरितमानस : उत्तर काण्ड, १११/६

3. पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा।

इस प्रकार की संकीर्ण मनोवृत्ति के फलस्वरूप समाज में घृणा और द्वेष की प्रवृत्ति बढ़ रही थी।

इस प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए तुलसी ने अनेक आख्यानों द्वारा शिव और विष्णु का समन्वय स्थापित किया। उन्होंने अनेक स्थानों पर शिव से राम की तथा राम से शिव की महिमा का गान करवाया। सती आख्यान के द्वारा कवि ने राम के प्रति शिव की भक्ति को स्पष्ट किया है तथा सेतुबन्ध आख्यान में रामेश्वर की स्थापना शिव के प्रति राम की भक्ति सूचित करता है। रामेश्वर शब्द का अर्थ ही यह है कि राम शिव को अपना ईश्वर मानते हैं। पार्वती आख्यान में शिव राम के कहने पर ही पार्वती से विवाह करने को तैयार होते हैं। दक्ष-यज्ञ से सम्बन्धित जो आख्यान पुराणों में मिलते हैं[1], उनमें दक्ष के यज्ञ में भाग लेने के लिए केवल शिव ही नहीं जाते अपितु ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि सभी देवता सम्मिलित होते हैं[2], किन्तु मानस में तीनों देवताओं में से कोई भी नहीं जाता। ऐसा होने पर उन्हें वहां शिव का अपमान देखना पड़ता। इसके विपरीत जब शिव पार्वती से परिणय करने बारात लेकर चले तो उनके साथ विष्णु, ब्रह्मा आदि भी विद्यमान थे[3]। काकभुशुण्डि भी पहले विष्णुद्रोही थे[4]। एक बार गुरु द्वारा शिव को विष्णु का सेवक कहने पर उनका मन जल उठा था[5] पर गुरु ने उन्हें यह समझा दिया कि शिव-सेवा का अन्तिम फल राम में भक्ति होना है, क्योंकि मूलतः वे एक हैं[6]।

ब्राह्मण और शूद्र का समन्वय –

तुलसी-साहित्य में अनेक ऐसे प्रसंग मिलते हैं जिनमें तुलसी के आराध्य राम जातिवाद अथवा छूतछात की भावना से मुक्त चित्रित किये गये हैं। कुछ आख्यानों के माध्यम से तुलसी ने उच्च और नीच जातियों में समन्वय प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। इस सम्बन्ध में शबरी और अहल्या के आख्यान प्रसिद्ध

---

1. भागवत पुराण : चतुर्थ स्कन्ध।
2. विष्णु विरंचि महेसु विहाई।
   चले सकल सुर जान बनाई॥
   —रामचरितमानस : बाल काण्ड, ६०/१
3. विष्णु विरंचि आदि सुरव्राता।
   चढ़ि चढ़ि वाहन चले वराता॥
   —रामचरितमानस : बाल काण्ड, ९१/४
4. करऊं विष्णु कर द्रोह।
   —रामचरितमानस : उत्तर काण्ड, १०५
5. हर कहुं हर सेवक गुरु कहेऊ।
   सुनि खगनाथ हृदय मम दहेउ॥
   —रामचरितमानस : वही, १०५/३
6. सिवसेवा कर फल सुत सोई।
   अविरल भगति रामपद होई॥
   —रामचरितमानस : वही, १०५/१

हैं। शबरी शूद्रा थी और अहल्या विप्रा, परन्तु राम ने दोनों से समान व्यवहार किया। तुलसी लिखते हैं—जब राम अहल्या के यहां गए तो उन्हें एक आश्रम दिखाई दिया[1] और जब शबरी के निवास पर गये तब भी[2]। अहल्या के आश्रम में राम को कथा सुनने को मिली[3] और शबरी के आश्रम में भी[4]। राम को देख अहल्या ने उनके चरण छुए[5]। शबरी तो राम के चरणों से लिपट ही गई[6]। राम ने विना मांगे ही अहल्या को भक्ति प्रदान की तथा शबरी को भी नवधा-भक्ति का उपदेश दिया।

इसके अतिरिक्त निषाद के आख्यान द्वारा भी कवि ने इसी भाव को स्पष्ट किया है। निषाद को भरत भी गले लगाते हैं तथा वशिष्ठ भी। अन्य अनेक वर्णनों द्वारा भी कवि ने शूद्र और ब्राह्मण के समन्वय का सन्देश दिया है।

स्पष्ट है कि यद्यपि सिद्धान्तरूप में तुलसी विशिष्टाद्वैत दर्शन के पक्ष-पाती थे किन्तु भक्ति के क्षेत्र में अपनी उदारता तथा व्यापकता के कारण अपने समय में प्रचलित सभी धार्मिक भावनाओं को उन्होंने श्रद्धा की दृष्टि से देखा। इसी कारण राम के अनन्य अनुयायी होते हुए भी उन्होंने साम्प्रदायिक भावना का त्याग करके समन्वय की भावना का आदर्श स्थापित किया "परस्पर विरोधी तत्वों के सार को ग्रहण करके एक ऐसे रसायन को प्रस्तुत किया जो सबके लिए ग्राह्य बन सका[7]"।

तुलसी-साहित्य में प्रयुक्त पौराणिक आख्यानों का वर्गीकरण

पुराण-साहित्य के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी पुराणों के कर्ता पृथक् पृथक् थे। कालान्तर में व्यास शब्द किसी एक व्यक्ति विशेष का वाचक न रह कर एक पदाधिकारी का वाचक हो गया। पराशर के आत्मज

---

1. आश्रम एक दीख मग मांही। —रामचरितमानस : बाल काण्ड, २०९/६
2. शबरी के आश्रम् पगु धारा। —रामचरितमानस : अरण्य काण्ड, ३३, ३
3. पूछा मुनिहिं सिला प्रभु देखी।
   सकल कथा मुनि कहहि विसेषी॥ —रामचरितमानस : बाल काण्ड, २०९/७
4. बार बार प्रभु पद सिर नाई।
   प्रेम सहित सब कथा सुनाई॥ —रामचरितमानस : अरण्य काण्ड, ३५/७
5. बार बार हरि चरण परी। —रामचरितमानस : वही, २१०/छन्द ४
6. शबरी परी चरन लपटाई। —रामचरितमानस : वही, ३३/४
7. डा० स्नेहलता, तुलसीमानससन्दर्भ : पृ० १४७

व्यास के पूर्व २७ व्यासों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। विष्णु पुराण के अनुसार प्रत्येक द्वापर में भगवान् विष्णु व्यासरूप में अवतीर्ण होते हैं[1]। शिव पुराण भी इसी मत का समर्थन करता है[2]।

इससे स्पष्ट है कि सभी पुराणों के वक्ता और श्रोता पृथक्-पृथक् हैं और वे पुराण भी पृथक्-पृथक् देशकाल में कहे और सुने गए हैं। यही कारण है कि पुराणों में पंचदेवोपासना की बात सिद्धान्तरूप में स्वीकार कर लेने पर भी किसी पुराण में एक देवता की सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है तो दूसरे में अन्य देवता की। विभिन्न युगों में जिस देवता की उपासना को प्रधानता प्राप्त थी, उसका उनके प्रवचनों में प्रतिपादन हुआ। जब भगवान् एक हैं तो किसी भी देवता की श्रेष्ठता से एक की ही श्रेष्ठता निरुपित होती है। संसार में लोकरुचि भिन्न है और प्रत्येक व्यक्ति स्वेच्छा से उपासनारत होने में स्वतन्त्र है। अतः भगवान् के विभिन्न रूपों और लीला-चरित्रों की सर्वश्रेष्ठता से प्रेरित होकर वह यथारुचि उसे उपास्य मानता रहा। यही उद्देश्य पुराणों में पंचदेवोपासना का मूलाधार है। यही कारण है कि पुराण विभिन्न सम्प्रदायों के प्रभाव से प्रभावित हैं। दस पुराण शैव हैं[3], दो ब्राह्म, दो शाक्त और चार वैष्णव।

शिव, भविष्य, मार्कण्डेय, लिंग, वराह, स्कन्द, मत्स्य, कूर्म, वामन और ब्रह्माण्ड – ये दस पुराण शैव हैं। ब्रह्म और पद्म, ब्रह्मा के पुराण हैं। विष्णु, भागवत, नारद और गरुड़ – वैष्णव पुराण हैं। अग्नि, मार्कण्डेय और ब्रह्मवैवर्त पुराण में अग्नि और प्रकृति की महिमा का गान हुआ है।

शैव पुराणों में भगवान् शिव, ब्रह्मा और विष्णु के स्रष्टा के रूप में निरूपित किये गये हैं। विष्णु से संबंधित पुराणों में शिव और विष्णु समान हैं, जबकि ब्रह्मा को विष्णु से हीन ठहराया गया है। ब्रह्म पुराण में ब्रह्मा, विष्णु और शिव को समान ठहराते हुए भी ब्रह्मा को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया है। इसी प्रकार विष्णु के चरित्र सम्बन्धी चार पुराणों में विष्णु को शिव तथा ब्रह्मा का स्रष्टा घोषित किया गया है। शाक्त पुराणों में शक्ति को इन तीनों

---

1. द्वापरे द्वापरे विष्णु र्व्यासरूपी महामुने। —विष्णु पुराण : ३/३/४
2. द्वापरान्तेषु विश्वात्मा विष्णुः सर्वजगन्मयः।
   व्यास नाम्ना चरत्यस्मिन् अवतीर्य महीतले॥
   —शिव पुराण : वायवी संहिता, ७/१
3. अष्टादश पुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः।
   —स्कन्द पुराण : केदार खण्ड, अ० १

की जनयित्री माना गया है तथा सौर सम्प्रदाय वाले भगवान् सूर्य को ही इन सब का जनक स्वीकार करते हैं।

कुछ पुराण सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्धित होने पर भी त्रिदेवो की एकता स्वीकार करते हैं। इस सम्बन्ध में स्कन्द पुराण का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। यद्यपि मूलरूप में यह एक शैव पुराण है, परन्तु इसमें विष्णु की अपार महिमा का वर्णन मिलता है। इस पुराण के वैष्णव खण्ड में बेंकटाचल, जगन्नाथपुरी, वद्रीनारायण आदि तीर्थों के वर्णन प्रसंग में विष्णु की पूजा, उपासना, स्तुति आदि का परिचय और विधि-विधान दिया गया है। इस पुराण के दूसरे खण्डों में भी विष्णु की चर्चा करते समय उनको शिव के समान स्वीकार किया गया है[1]। यह सद्भावना सभी देवताओं के साथ है। इस पुराण में ब्रह्मा, विष्णु, शिव से सम्बन्धित अनेक आख्यान उपलब्ध होते हैं, जिनमें सभी देवताओं की एक जैसी महिमा वर्णित है। इस पुराण के महेश्वर खण्ड के अन्तर्गत (कौमारिकाखण्ड) एक ऐसा आख्यान मिलता है, जिसमें साम्प्रदायिक भावना की भर्त्सना की गई है।

एक बार राजा करन्धम ने भेदभाव करने वाले उपदेशकों की बातों से भ्रम में पड़ जाने के कारण महाकाल से पूछा—"हे भगवान्! मोक्ष की प्राप्ति के लिए कोई शिव की, कोई विष्णु की और कोई ब्रह्मा की भक्ति करने का उपदेश देता है। आप उचित मार्गदर्शन करने की कृपा करें"[2]। इस पर महाकाल ने कहा :—

एक बार नैमिषारण्य में रहने वाले ऋषि-मुनियों के मन में यह जानने की इच्छा हुई कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव में कौन सर्वश्रेष्ठ है? वे इस सन्देह के निवारण के लिए ब्रह्मलोक में गए[3]। वहां उन्होंने ब्रह्मा जी को यह कहते हुए सुना :—

"अनन्त भगवान् विष्णु को नमस्कार है, जिनका कहीं अन्त नहीं मिल

---

1. यो विष्णुः स शिवो ज्ञेयः यः शिवः विष्णुरेव सः।
—स्कन्द पुराण : महेश्वर खण्ड, अ० ४०

2 केचिच्छिवं समाश्रित्य विष्णुमाश्रित्य वेधसम्।
वर्णयन्ति परं मोक्षं त्वन्तु कस्मात्तु मन्यसे॥
—वही

3. पुरा किलैवं मुनयो नैमिषाण्य वासिनः।
सन्दिह्याऽतः श्रेष्ठतायां ब्रह्मलोकमुपागमन्॥
—वही

सकता और महादेव जी को भी नमस्कार है। ये दोनों मुझ भक्त पर कृपा दृष्टि रखें"[1]।

तब वे विष्णु को सर्वश्रेष्ठ समझते हुए क्षीरसागर पहुंचे तो वहां भगवान् विष्णु को यह कहते हुए सुना :—

"मैं परब्रह्मस्वरूप, सर्वव्यापक ब्रह्मा और भगवान् शिव की वन्दना करता हूं। वे दोनों मेरा कल्याण करने वाले हों"[2]।

इस पर ऋषि-मुनि आश्चर्यचकित होकर कैलाश पर्वत पर शिव के पास गए। वहां उन्होंने भगवान् शिव को पार्वती से यह कहते हुए सुना :—

"मैं भगवान् विष्णु और भगवान् ब्रह्मा की प्रसन्नता के लिए एकादशी की रात को विष्णु-मन्दिर में जागरण करके नृत्य किया करता हूं और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए तपोनिरत भी होता हूं"[3]।

यह सुनकर ऋषि-मुनियों का भ्रम दूर हो गया और वे आपस में विचार-विनिमय करते हुए कहने लगे कि जब ये तीनों देवता स्वयं ही नहीं जानते कि उनमें कौन सर्वश्रेष्ठ है, तब हम लोग इसका निर्णय कैसे कर सकते हैं। वस्तुतः ये तीनों एक ही परमशक्ति के तीन रूप हैं जो तीन विभिन्न भूमिकाओं के निर्वाह की दृष्टि से भिन्न-भिन्न समझे जाते हैं, परन्तु अन्ततोगत्वा तीनों देवता एक रूप में ही समाहित हो जाते हैं। इन देवताओं के सम्बन्ध में लघुता और महत्ता का प्रश्न साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का परिचायक है।

---

1. तस्मिन्क्षणे विरंचोऽपि श्लोकं प्रभोऽब्रवीत् किल।
   अनन्ताय नमस्तस्मै यस्यान्तो नोपलभ्यते ॥
   महेशाय च भक्ते द्वौ कृपायेतां सदा मयि।

   —स्कन्द पुराण : महेश्वर खण्ड, अ० ४०

2. ततः श्रेष्ठं च तं मत्वा क्षीरोदं मुनयो ययुः।
   तत्र योगेश्वरः श्लोकं प्रबुध्यन्नमुमब्रवीत् ॥
   ब्रह्माणं सर्वभूतेषु परमं ब्रह्मरूपिणम्।
   सदा शिव च वन्दे तौ भवेतां मंगालाय मे ॥

   —वही

3. ततस्ते विस्मिता विप्रा अपसृत्य ययुः पुनः।
   कैलासे ददृशुः स्थाणुं वदतं गिरिजां प्रति ॥
   एकादश्यां प्रनृत्यामि जागरे विष्णु सद्मनि।
   सदा तपस्यां चरामि प्रीत्यर्थं हरि वेधसौ ॥

   —वही

यद्यपि सिद्धान्तरूप में इस तथ्य को सभी पुराणों ने स्वीकार किया है, पर अपने-अपने इष्टदेव की महिमा का वर्णन करते समय उन्होंने सन्तुलित दृष्टि का परिचय नहीं दिया। पुराणों की साम्प्रदायिक भावना के अनुसार आख्यान के पांच भेद किये जा सकते हैं :—

१. शैवाख्यान,
२. शाक्ताख्यान,
३. वैष्णवाख्यान,
४. ब्रह्माख्यान,
५. सौराख्यान,

शैवाख्यान

शैव पुराणों में उपलब्ध आख्यानों में शिव की महिमा वर्णित है। कहीं शिव को, ब्रह्मा और विष्णु का कर्ता और कहीं उन दोनों के समान निरूपित करते हुए, उनकी अनेक लीलाओं का चित्रण किया है। सती आख्यान, दक्ष-यज्ञ विध्वंस, गणेश का प्रथम पूज्यत्व तथा दक्ष-शिव द्रोह आदि आख्यान इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

शाक्ताख्यान

पुराण-साहित्य के बहुत से आख्यानों में शक्ति को त्रिदेवों की जननी और उनकी अपेक्षा अधिक शक्तिशालिनी घोषित किया गया है। अपर्णा, पार्वती, दुर्गा, चण्डिका, अम्बिका, उमा, भवानी, सती आदि नाम धारण कर इस आद्याशक्ति ने धर्म-रक्षा एवं देव-रक्षा निमित्त अनेकशः असुर-वध किया। शाक्त आख्यानों में सती, पार्वती, चण्ड-मुड, शुंभ-निशुंभ, महिषासुर, मधु-कैटभ, धूम्रलोचन तथा रक्तबीज आदि के आख्यान विशेष हैं।

वैष्णवाख्यान

वैष्णव पुराणों के अतिरिक्त ब्राह्म तथा शैव पुराणों में भी विष्णु के अव-तारों से सम्बन्धित आख्यान उपलब्ध होते है, परन्तु राम और कृष्ण से संबन्धित आख्यानों का ही विशद वर्णन हुआ है। अवतार सम्बन्धी आख्यानों में विष्णु के दस अवतारों से सम्बन्धित लीलाओं की ही अधिक चर्चा हुई है।

ब्रह्माख्यान

ब्रह्मपुराण तथा पद्मपुराण के अतिरिक्त वैष्णव एवं शैव पुराणों में भी ब्रह्मा से सम्बन्धित आख्यानों के प्रसंग उपलब्ध होते हैं। देवताओं की सम-स्याओं के समाधान में ब्रह्मा का सहयोग रहता है। असुर भी तप के द्वारा ब्रह्मा से अनेक वरदान पाकर सृष्टि में उपद्रव करते हैं।

सौराख्यान

कुछ पौराणिक आख्यानों में सूर्य को सृष्टि-रचना का मुख्य आधार मान कर उसकी पूजा और उपासना का विधान है। सूर्य सम्बन्धी एक आख्यान के अनुसार विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा का विवाह सूर्य से हुआ था, जिससे वैवस्वतमनु, और यमराज, इन दो पुत्रों तथा एक पुत्री यमुना का जन्म हुआ था। जब सूर्य को ज्ञात हुआ कि संज्ञा उसका प्रखर तेज सहने में असमर्थ है तो उसने विश्वकर्मा से अपने स्वरुप को काट-छांट कर संवलित बना देने को कहा। विश्वकर्मा ने सूर्य को संत्सररूपी खराद पर चढ़ा कर उसके रूप को सुन्दर और लोकोपकारक बना दिया। पुराणों में देवासुर संग्राम सम्बन्धो जो आख्यान मिलते हैं, उनका बहुत कुछ सम्बन्ध सौर शक्ति से है। सूर्य सम्बन्धी अनेक आख्यानों में लोकार्क, उत्तरार्क, साम्बादित्य, द्रौपदादित्य, मयूखादित्य आदि महत्वपूर्ण हैं।

तुलसी इस साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से पूर्णतः मुक्त थे। गंगा की तरह, उनके साहित्य का उद्देश्य भी सबका हित था। अतः उन्होंने विभिन्न सम्प्रदायों से सम्बन्धित पौराणिक आख्यानों का चयन तो किया, किन्तु उनका विनियोग किसी विशेष संप्रदाय के पक्ष में न करके देश की ग्राम जनता में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, त्याग, परोपकार आदि उदात्त भावनाओं के जागरण के लिए किया। तुलसी जिस आदर्श को भारतीय जनता के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहते थे, उस आदर्श के स्वरुप की व्याख्या करने वाले आख्यानों का विनियोग उन्होंने अनेक दृष्टियों से किया है। प्रमुखरूप से इनका वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है;

१. विषयवस्तु की दृष्टि से,
२. उद्देश्य की दृष्टि से,
३. प्रसंग की दृष्टि से।

विषयवस्तु की दृष्टि

पौराणिक आख्यानों का वर्णन केवल किसी प्राचीन घटना का इतिहास मात्र प्रस्तुत करने के लिए नहीं किया जाता। इसका उद्देश्य तो कथा के माध्यम से धर्म, नीति आदि की व्याख्या है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कवि ने ऋषि-मुनियों, देवों, असुरों एवं राजाओं के आख्यानों का विनियोग किया है। विषयवस्तु की दृष्टि से ये आख्यान इस प्रकार हैं :—

१. आर्षाख्यान

अगस्त्य, नारद, दधीचि, वाल्मीकि, विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि से संबन्धित आर्ष आख्यान कहलाते हैं। अगस्त्य की उत्पत्ति, उनके द्वारा समुद्रशोषण, विध्याचल अवरोध, नारद की उत्पत्ति, नारदमोह, नारद को दक्ष का शाप,

दधीचि का त्याग तथा वशिष्ठ-विश्वामित्र द्वेष सम्बन्धी आख्यान इसी प्रकार के हैं।

दैवाख्यान

देवता सम्बन्धी आख्यानों में इन्द्र-अहल्या, कद्रू-विनता, कार्त्तिकेय, गणेश, वामन, नृसिंह, कूर्म, वराह, श्रीराम, श्रीकृष्ण, विष्णु को भृगु का पादाघात, तुलसी की उत्पत्ति, चन्द्रमा-तारा, चन्द्रमा को दक्ष का शाप तथा दक्ष और शिव के बैर का आख्यान आदि उल्लेख्य हैं।

असुराख्यान

इन आख्यानों की मुख्य विषयवस्तु देवासुर संग्राम वर्णन है, जिसका सांकेतिक अर्थ धर्म की अधर्म पर विजय बताना है। बलि, वाणासुर, मय, चण्ड-मुण्ड, शुभ-निशुंभ आदि के आख्यान इसी प्रकार के हैं।

नृपति आख्यान

पौराणिक आख्यानों में अनेक ऐसे राजाओं का वर्णन हुआ है, जिन्होंने समाज और देश की रक्षा के साथ-साथ धर्म, ज्ञान और नीति में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसके विपरीत कुछ ऐसे राजा भी थे जो चारित्रिक शैथिल्य के कारण नृपसमाज से पतित हो गये। रावण, जनक, चित्रकेतु, दशरथ, त्रिशंकु, दण्ड, नहुष, सहस्रवाहु, निमि, पृथु, वेन, शिवि, रन्तिदेव, हरिश्चन्द्र आदि से संबन्धित आख्यान इसी कोटि के हैं।

भक्ताख्यान

तुलसी-साहित्य में कुछ आख्यान भक्ति-भावना से सम्बद्ध हैं। पौराणिक आख्यानों में प्रतिपादित भक्ति केवल मानव तक ही सीमित नहीं, उसमें मानवेतर जातियां भी सम्मिलित हैं। इन भक्तों में अजामिल, अम्बरीष, गजेन्द्र, गणिका, ध्रुव, प्रह्लाद, जय-विजय, शबरी, हनुमान, गालव, नल-नील आदि विशेष हैं।

उद्देश्य की दृष्टि से

पौराणिक आख्यानों का उद्देश्य किसी न किसी धार्मिक, नैतिक आध्यात्मिक एवं सामाजिक सत्य का प्रकाशन रहा है। यही कारण है कि हमें प्रत्येक आख्यान की पृष्ठभूमि में कोई न कोई उद्देश्य अवश्यमेव दृष्टिगत होता है। इन्हीं उद्देश्यों के आधार पर तुलसी-साहित्य में प्रयुक्त आख्यानों को धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक वर्गों के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

धर्म-सम्बन्धी आख्यान

पुराण-साहित्य में धर्म-सम्बन्धी आख्यानों की प्रचुरता है। तुलसी के

राम का सर्वप्रमुख जीवनादर्श भी अधर्म का नाश और धर्म की स्थापना था। इसलिए तुलसी ने अपने प्रतिपाद्य के लिए पुराणचर्चित अनेक धर्म-सम्बन्धी-आख्यानो से सामग्री लेकर व्यक्तिगत और समाजगत धर्म की अभिव्यंजना की है। व्यक्तिगत धर्म में आत्म कल्याण की भावना होती है। गजेन्द्र, गणिका, ध्रुव, अजामिल, अम्बरीष आदि ने आत्मकल्याण के लिए धर्म का अनुसरण करके संसार-सागर से मुक्ति प्राप्त की।

समाजगत धर्म में लोक-मंगल प्रमुख होता है। व्यक्तिगत धर्म की अपेक्षा समाजगत धर्म का पालन कठिन होता है। कपोत की रक्षा के निमित्त राजा शिवि को अपने शरीर का मांस काट-काट कर देना पड़ा, दधीचि को देव-शत्रु वृत्रासुर के संहार के लिए अस्थिदान करना पड़ा, राजा हरिश्चन्द्र को दर-दर की ठोकरें खानी पड़ी। अगस्त्य द्वारा समुद्रपान, कार्तिकेय द्वारा तारकवध आदि महामहनीय अनुष्ठान सार्वजनिक निःश्रेयस के ही अन्तर्गत आते हैं।

भगवान् के अनेक अवतारों का मुख्य प्रयोजन भी धर्म की रक्षा स्वीकार किया गया है। गीता के अनुसार धर्म की ग्लानि और अधर्म का उदय होने पर भगवान् सज्जनों के परित्राण तथा दुष्कर्मियों के विनाश के लिये युग-युग में अवतार धारण करते हैं[1]। वायुपुराण[2], मत्स्यपुराण[3], महाभारत[4], देवी-भागवत[5], तथा ब्रह्मपुराण[6] में भी शब्द-भेद से गीता के मत की ही पुष्टि की गई है। पुराणों में दशावतारों से सम्बन्धित आख्यान सामूहिक धर्म-साधना के अन्तर्गत आते हैं। तुलसी ने इन अवतारों में राम के अवतार धारण की विशेष चर्चा करते हुए जय-विजय, जलंधर, नारदमोह, प्रतापभानु, कश्यप-अदिति तथा मनु-सतरुपा के आख्यानों का वर्णन किया है[7]।

---

1. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
   अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्॥
   परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
   धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥ —गीता, ४/३-४
2. कर्तुं धर्मव्यवस्थानम् अधर्मस्य च नाशनम्। —वायु पुराण, ९८/६९
3. मत्स्य पुराण, ४७/७८
4. असतां निग्रहार्थाय धर्म संरक्षणाय च। —महाभारत, वनपर्व, २७२/७१
5. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूधर।
   अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा वेषान् विभर्म्यहम्॥ —देवीभागवत, ७/३९
6. ब्रह्म पुराण, १८०/२६-२७
7. रामचरितमानस : बाल काण्ड, १२०/७, ३४

नीति-सम्बन्धी आख्यान

समाज एवं शास्त्र द्वारा निर्धारित आचार-विचार, विधि-विधान तथा व्यवहार के नियमों को नीति की संज्ञा दी गई है। व्यक्ति, समाज, देश अथवा विश्व के कल्याण के लिये जितने भी मानदण्ड स्वीकार किये जा सकते हैं, उन की गणना नीति के अन्तर्गत होती है।

तुलसी ने अनेक आख्यानों के माध्यम से नीति की व्याख्या की है। नीति पर चलने से मानव का कल्याण होता है तथा इसके विपरीत आचरण से उसे अनेक दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मद आदि मनोविकारों के प्रभाववश मनुष्य नीतिमार्ग से च्युत होकर अनीति के मार्ग पर अग्रसर होता है तो उसे कैसे-कैसे दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं, इस तथ्य की व्याख्या करना ही नैतिक आख्यानों का उद्देश्य है।

नीतिमार्ग का अनुसरण करने से राम अनेक विघ्न-बाधाओं को छिन्न-भिन्न कर अन्त में सफल हुए और एक आदर्श चरित्र के रूप में अमर हो गये। दूसरी ओर अनैतिक काम-भावना के कारण चन्द्रमा को क्षय रोग हुआ, नहुष स्वर्ग से भ्रष्ट हुए तथा दण्ड के राज्य का सर्वनाश हुआ। लोभ के दुष्प्रभाव से विश्वामित्र और वशिष्ठ में विरोध का भाव जाग्रत हुआ। अभिमान द्वारा मतिभ्रष्ट होने पर रावण सपरिवार विनाश के गर्त में विलीन हो गया। मद से मत्त होकर, अनीतिपूर्ण व्यवहार करने से सहस्रबाहु, इन्द्र और त्रिशंकु को कलंकित होना पड़ा।

आध्यात्मिक आख्यान

माया के वशीभूत मानव सांसारिक प्रलोभनों की ओर अग्रसर होता है तथा शाश्वत सत्य से पराङ्मुख रहता है। संसार के क्षणभंगुर पदार्थ उसे अपने प्रति आकृष्ट करते हैं और वह प्रतिक्षण भ्रमजाल में भटकता रहता है। उसकी दशा उस मृग के समान हो जाती है, जो मरुभूमि में चमकते हुए रेतकणों को जल समझ कर, उससे अपनी तृषा शान्त करना चाहता है।

ईश्वर और जीव में भेद की प्रतीति भी मायाजनित है। ज्ञान होने पर जब यह भेद मिट जाता है तो जीव वास्तविकता को पहचान कर, संसार से वीतराग होकर ईश्वराराधन में लीन हो जाता है। ईश्वराराधन में दो बातें मुख्य हैं। भगवान् के नाम का स्मरण और उनके रूप का ध्यान। इस प्रकार ज्ञान की सहायता से मायामुक्त होकर भगवान् की भक्ति से जीव माया-ममता से मुक्त हो जाता है।

तुलसी ने संसार के प्रपंच को स्पष्ट करके सत्, चित् तथा आनन्दस्वरुप

भगवान् का परिचय देने वाले जिन आख्यानों की चर्चा की है, उनमें चित्रकेतु का आख्यान विशेष महत्व का है। नारद के उपदेश से पुत्रशोक से संतप्त राजा चित्रकेतु शोक एवं अज्ञान से मुक्त हुआ था। नारद के ही उपदेश से दक्षपुत्र हर्यश्व-शवलाश्व सृष्टि-रचना कार्य से विरक्त होकर, मुक्ति-मार्ग पर अग्रसर हुए थे।

दण्डकवन तथा अहल्या उद्धार के आख्यानों में रुपमाहात्म्य की चर्चा है जब कि गणेश, वालमीकि, प्रहलाद, ध्रुव, गजेन्द्र, जटायु तथा हनुमान आदि से संबन्धित आख्यानों में नाम माहात्म्य पर बल दिया गया है।

सामाजिक आख्यान

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में ही वह जन्म लेता है और समाज में ही उसका विकास होता है। समाज में रहते हुए, परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त अन्य अनेक लोगों से भी उसका सम्पर्क होता है। पारिवारिक जीवन ही सामाजिक जीवन का प्रमुख आधार है। अत: कवि ने अनेक प्रसंगों द्वारा पारिवारिक सम्बन्धों की व्याख्या करने के साथ-साथ स्पष्ट किया है कि मनुष्य समाज में रहते समय किस प्रकार के आचरण, व्यवहार और संगति से स्वयं और समाज को उपकृत कर सकता है।

राम के आख्यान में सामाजिक सम्बन्धों की विशद व्याख्या हुई है। कद्रू-विनता के आख्यान में सौत के सम्बन्धों की, सीता-लांछन सम्बन्धी रजकाख्यान में पत्नी की स्वतन्त्रता की, कैकेयी आख्यान में पारिवारिक व्यवहार की अभिव्यंजना हुई है।

प्रसंग की दृष्टि से

तुलसी ने प्रसंग की दृष्टि से भी अनेक आख्यानों का विनियोग किया है। सत्संगति के प्रसंग की चर्चा करते हुए कवि ने लिखा है कि नारद जन्म से दासीपुत्र थे, वाल्मीकि महर्षि बनने से पूर्व दस्यु थे, अगस्त्य का जन्म उर्वशी से हुआ था, परन्तु सत्संगति के प्रभाव से उपर्युक्त व्यक्ति श्रेष्ठ ऋषि-मुनियों के रुप में सम्मानित हुए। अहल्या के सतीत्वहरण प्रसंग में इन्द्र का साथ देने पर चन्द्रमा को कलंक लगा था। राहु के साथ कुछ देर बैठने के परिणाम-स्वरुप आज भी वह चन्द्रमा का शत्रु बना हुआ है।

पंचम अध्याय

तुलसी साहित्य में प्रयुक्त पौराणिक आख्यानों में अभिव्यक्त जीवन-दृष्टि

पंचम अध्याय

तुलसी-साहित्य में प्रयुक्त पौराणिक आख्यानों में अभिव्यक्त जीवन दृष्टि

मानव अपने जीवन संघर्ष में दो प्रकार की प्रक्रिया से गुजरता है—विधेयात्मक और निषेधात्मक—अर्थात् उसके लिए कौन से कर्म करने योग्य हैं और कौन से नहीं। किस प्रकार के कर्म और आचरण से वह जीवन को सुखी, सन्तुष्ट और शान्त बना सकता है और किस प्रकार के कर्म और आचरण से उसका आध्यात्मिक और लौकिक जीवन असुखी, असन्तुष्ट और अशान्त बनता है। इस खोज में मानव आदिकाल से ही संघर्षशील रहा है। जिन महापुरुषों ने पुराणों की रचना की थी, जीवन के प्रति वे अत्यन्त जागरुक थे। यही कारण है कि पुराण-साहित्य में जीवन-दर्शन के तत्त्वों का प्रतिपादन बहुलता से प्राप्त होता है।

पुराण-साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश रुप में पौराणिक आख्यानों का विनियोग, मानव के आध्यात्मिक और लौकिक जीवन को सफलतापूर्वक व्यतीत करने की प्रेरणा देने के लिये किया गया है। प्राय: प्रत्येक आख्यान की पृष्ठभूमि में कोई न कोई जीवन-दृष्टि है। मानव जीवन के साथ सम्बन्धित होने के कारण ही ये आख्यान भारतीय साहित्य में बहुलता से प्रयुक्त किये गये तथा कालान्तर में ये भारतीय जनता में इतने अधिक घुलमिल गए कि वे हमारी संस्कृति का अंग बन गए। यही कारण है कि आज के वैज्ञानिक और भौतिक युग में भी भगवान् राम की शरणागत रक्षा, हनुमान की स्वामी भक्ति, हरिश्चन्द्र का सत्यपालन, श्रवण की पितृभक्ति, कृष्ण का न्यायपक्ष का समर्थन, कर्ण की दानशीलता, दधीचि का आत्मत्याग, भीष्म का ब्रह्मचर्यव्रत पालन आदि से संबन्धित पौराणिक आख्यान आम जनता को चरित्रनिर्माण नैतिकता का पालन, समाजसेवा, स्वार्थत्याग, परोपकार आदि की शिक्षा देकर, उसके जीवन को उच्च बनाते रहे हैं।

तुलसी-साहित्य में पौराणिक आख्यानों का विनियोग जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए किया गया है। तुलसी एक भक्त कवि ही नहीं, भारतीय संस्कृति के व्याख्याता और समाज सुधारक भी थे। अतः उन्होंने मानव को आध्यात्मिक उपदेश देने के साथ-साथ लौकिक जीवन से सम्बन्धित अनेक प्रश्नों पर भी अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है।

अध्ययन की सुविधा के लिए, तुलसी के जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

१. आध्यात्मिक,
२. लौकिक।

आध्यात्मिक दृष्टि से तुलसी ने भगवान को सर्वशक्तिमान माना है। उस की इच्छा के विना संसार में कुछ भी नहीं हो सकता। वह सगुण भी है और और निर्गुण भी। इन दोनों में कोई भेद नहीं है। जीव भी भगवान् का ही अंश है और मन, प्राण तथा बुद्धि से परे है। जगत् मिथ्या नहीं है। ईश्वर और जगत् में भेद माया के कारण दिखाई देता है। माया के दो रुप हैं— विद्या और अविद्या। विद्या का रुप सीता द्वारा संचालित किया जाता है, जब कि अविद्या रुपी माया काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार आदि के द्वारा जीव को भ्रम में डाले रखती है। यद्यपि ज्ञान के द्वारा भी इस माया से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है, किन्तु भगवान् को प्राप्ति में भक्ति ही सब से सरल उपाय है। भक्ति में मन तभी लगता है, जब भगवान् कृपा करें। भक्ति जीव को माया के बंधन से मुक्त कर देती है। यही भक्ति परम सुख का मार्ग है।

अपनी रचनाओं में गोस्वामी जी ने ब्रह्म, आत्मा, जीव, जगत, माया आदि की विस्तारपूर्वक व्याख्या की है।

ब्रह्म

तुलसी ने श्रीराम को ही ब्रह्म स्वीकार किया है। संसार के सभी प्राणियों में उसी का निवास है। यही कारण है कि वे संसार के जड़-चेतन प्राणियों को राममय मान कर उन्हें प्रणाम करते है[1]। यही राम निर्गुण ब्रह्म और परमेश्वर हैं, सभी प्रकार की कामनाओं से हीन, रुप और नाम रहित, अजन्मा, सच्चि-

---

1. (क) जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउं सबके पदकमल सदा जोरि जुग पानि॥
—रामचरितमानस : बाल काण्ड, ७

(ख) सीय राममय सब जग जानी। करउं प्रनाम जोरि जुग पानी॥ —वही, ७/१

(ग) विनयपत्रिका, पद ५६

दानन्द तथा परमधाम हैं। वे सर्वत्र व्यापक एवं विश्वरुप हैं तथा दिव्यरुप धारण कर नानाविध लीलाएं रचाते हैं[1]। सभी जीवों में चेतना के मूल भी यही हैं। विषयों का इन्द्रियों से, इन्द्रियों का इन्द्रियों के देवताओं से और इन्द्रिय-देवताओं का चेतन जीवात्मा से प्रकाश होता है। इन सब को प्रकाशित करने वाले अनादि ब्रह्म अयोध्यापति श्रीराम हैं। यह संसार प्रकाश्य है तथा श्रीराम इसको प्रकाशित करने वाले हैं। वे माया के स्वामी तथा ज्ञान और गुणों के धाम हैं[2]।

तुलसी ने ब्रह्म के स्वरुप की विशद व्याख्या की है। ब्रह्म पैरों के बिना चलता है, कानों के बिना सुनता है और हाथों के विना ही नाना प्रकार के काम करता है। वह मुख के विना ही सभी रसों का आस्वादन करता है तथा वाणी के बिना भी वहुत योग्य वक्ता है। शरीर के बिना ही उसमें स्पर्श की क्षमता है। वह नेत्रों के बिना ही देखता है और नाक के विना ही सभी गन्धों को ग्रहण करता है। उस ब्रह्म की करनी ऐसी अलौकिक है कि उसकी महिमा का बखान संभव नहीं[3]। वेद और पण्डित जिसका इस प्रकार वर्णन करते हैं, मुनि जिसका ध्यान करते हैं, वही दशरथनन्दन, भक्तों के हितकारी, अयोध्या के स्वामी भगवान् श्रीरामचन्द्र जी है। पूर्वकाल में मनु और सतरुपा की तपस्या से प्रसन्न होकर यही ब्रह्म, दशरथ और कौशल्या के पुत्र राम के रुप में प्रकट हुए थे। ये राम विश्व की समस्त चेतना के मूलस्रोत होने के नाते सगुण भी हैं। वेद, पुराण, मुनि और पण्डितों के मत में निगुर्ण और सगुण में कोई

---

1. (क) एक अनीह अरुप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा॥
व्यापक बिस्वरुप भगवाना। तेहिं धरि देइ चरित कृत नाना॥
—रामचरितमानस : बाल काण्ड, १२/२

(ख) विनयपत्रिका, पद ४३

2. विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
—रामचरितमानस : बाल काण्ड, ११६/३-४

3. आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भांति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥
—वही, ११७/२-४

अन्तर नहीं है। जो ब्रह्म निर्गुण, निराकार, अव्यक्त और अजन्मा है, वही भक्तों के प्रेम के कारण सगुण हो जाता है[1]।

श्रीराम विष्णु के अवतार भी हैं। उन्होंने अपने भक्त जय-विजय नामक द्वारपालों को शाप से मुक्त कराने के लिए अवतार लिया, जिन्होंने रावण और कुम्भकर्ण के रुप में जन्म लिया था। नारद के शाप के कारण भी विष्णु को राम के रुप में अवतरित होना पड़ा था। तुलसी ने राम को विष्णु से श्रेष्ठ स्वीकार किया है। ब्रह्मा और शिव की भांति विष्णु भी राम के चरणों की बन्दना और उनकी सेवा करते हैं[2]। उनके चरण ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव द्वारा पूजित हैं[3]। राम के अंशमात्र से अनेक विष्णु जन्म लेते हैं, अनेकों ब्रह्मा और शिव प्रकट होते हैं[4]। राम ब्रह्मा, विष्णु और शिव को भी नचाने वाले हैं[5]। ये तीनों उनकी आज्ञा में रहते हैं। उनसे शक्ति प्राप्त करके विष्णु संसार का पालन, ब्रह्मा उसकी सृष्टि तथा शिव उसका संहार करते हैं[6]। श्री-राम में अनन्त कोटि सरस्वतियों के समान चातुर्य है, अरवों ब्रह्माओं के समान सृष्टि-रचना की निपुणता है। वे अरबों विष्णुओं के ससान पालन करने वाले और अरबों रुद्रों के समान संहार करने वाले हैं[7]। श्रीराम अनुपम हैं—ऐसा वेदों में कहा गया है[8]।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि गोस्वामी जी ने दशरथसुत श्रीराम को ही परमब्रह्म के रुप में देख कर उनके नाम और रुप का गान किया है।

---

1. सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा॥
   अगुन अरुप अलख अज जोई। भगत प्रेमबस सगुन सौ होई॥
   —रामचरितमानस : बाल काण्ड, ११५
2. देखे सिव विधि विष्णु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका॥
   बंदत चरन करत प्रभु सेवा। विविध रुप देखे सब देवा॥ —वही, ५३/४
3. बिधि हरि हर बंदित पद रेनू। —वही, १४५/१
4. सभु बिरचि विष्णु भगवाना। —वही, १४३/३
5. विधि हरि संभु नचावनि हारे। —वही, अयोध्या काण्ड, १२६/१
6. जाके वल विरंचि हरि ईसा।
   पालत हरत सृजत दससीसा॥ —वही, सुन्दर काण्ड, २०/३
7. सारद कोटि अमित चतुराई।
   बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई॥
   विष्णु कोटि सम पालन कर्ता।
   रुद्र कोटि सत सम संहर्ता॥ —वही, उत्तर काण्ड, ९१/३
8. निरुपम ना उपमा राम आन राम समान रामु निगम कहै। —वही, ९१/छन्द १

माया

तुलसी ने माया को ही अज्ञान और मानव की अधोगति का मूल माना है। मैं और मेरा, तू और तेरा की मनोवृत्ति माया का ही दुष्परिणाम है तथा पारस्परिक भेदभाव का प्रमुख कारण है। यदि इस भेदभाव को निरस्त कर दिया जाए तो माया का आवरण स्वयमेव छिन्न-भिन्न हो जाता है। माया की व्याख्या करते हुए गोस्वामी जी ने राम के मुख से लक्ष्मण कोकहलवाया है—

हे तात ! मैं संक्षेप में ही समझा कर कह देता हूं। तुम मन, चित्त और बुद्धि लगा कर सुनो। मैं और मेरा, तू और तेरा—यही माया है, जिसने समस्त जीवों को वशीभूत कर रखा है। इन्द्रियों के विषय तथा जहां तक मन की गति है, यह सब माया का ही प्रसार है। माया के विद्या और अविद्या नामक दो भेद हैं। अविद्या दोष-युक्त और अत्यन्त दुःखकारक है। इसके वश में होकर जीव संसाररूपी कूप में पड़ा हुआ है। विद्या गुणरूप है और जगत की रचना करती है। वह प्रभु से ही प्रेरित होती है। उसका अपना बल सर्वथा नगण्य है[1]। अविद्या जीव को भ्रम में डालती है। इसने चराचर सृष्टि को वश में कर रखा है। यह माया स्वतः जड़ है, परन्तु राम की सत्ता से सत्य भासित होती है[2]। जैसे सीप में चान्दी की और सूर्य की रश्मियों में जल की प्रतीति होती है। यद्यपि यह प्रतीति तीनों कालों में असत्य है तथापि इस भ्रम को सहज ही नकार देना संभव नहीं[3]। इसी तरह यह संसार भगवान् के आश्रित रहता है। तभी तो वे मायाधीश, ज्ञान और गुणों के धाम कहलाते हैं[4]। श्रीराम की विद्यारूपी माया जीव को संसार से मुक्ति प्रदान करने वाली है। भगवान् के सेवक पर अविद्या का प्रभाव न होकर, विद्या का प्रभाव होता

---

1. थौरिहि महं सब कहउं बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई ॥
   मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेंहि बस कीन्हें जीव निकाया ॥
   गो गोचर जहां लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई ॥
   तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ ॥
   एक दुष्ट अतिसय दुखरुपा। जा बस जीव परा भव कूपा ॥
   एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें ॥
   —रामचरितमानस : अरण्य काण्ड, १४/१-३
2. जासु सत्यता ते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया ॥
   —वही, बाल काण्ड, ११६/४
3. रजत सीप महुं भास जिमि जथा भानु कर बारि।
   जदपि मृषा तिहुं काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥ —वही, ११७
4. मायाधीस ग्यान गुन धामू। —वही, ११६/४

है[1]। विद्यारुपी माया भक्तों के मन में भगवान् के प्रति अनुरक्ति उत्पन्न करती है। भगवान् के चरणों में अत्यन्त अनुरक्ति हो जाने पर जीव संसार सागर से मुक्त हो जाता है।

अविद्या के विषय में उनका मत है कि संसार में अविद्यारुपी माया का प्रचण्ड प्रभाव है। उसकी विशाल सेना का सेनापति कामदेव तथा कपट, पाखण्ड आदि सैनिक हैं। इनके प्रकोप से वही प्राणी बच सकते हैं जो माया-पति भगवान् श्रीराम का भजन करें। राम की भक्ति इस माया के दुष्प्रभाव को निवारण करने में पूर्णरूप से समर्थ है।

जीव

जो माया, ईश्वर और अपने स्वरुप को नहीं जानता उसे जीव कहते है[2]। यह जीव चेतन और नित्य है। हर्ष और शोक, ज्ञान और अज्ञान, अहंभाव और अभिमान – ये सब जीव के धर्म हैं, परन्तु यह जीव पंचभौतिक शरीर से पृथक् है तथा जन्म-मृत्यु के बंधन से परे हैं। बालि की मृत्यु पर शोकसंतप्त तारा को समझाते हुए राम कहते हैं—"पृथ्वी, जल, वायु, तेज और आकाश—इन पांच तत्वों से रचित यह शरीर[3] तो तुम्हारे सामने सोया हुआ है। जीव तो अविनश्वर है। पता नहीं तुम किस कारण रो रही हो[4] ?"

ईश्वर और जीव दोनों एक हैं। माया के कारण इनमें भेद की प्रतीति होती है। अखण्ड ज्ञान हो जाने पर ईश्वर और जीव में भेद नहीं रहता। अभिमानी जीव माया के वश में रहता है और सत्व, रज, तम इन तीन गुणों की खान माया, ईश्वर के वश में है। जीव पराधीन है, जबकि ईश्वर स्वतन्त्र है। जीव अनेक तथा ईश्वर एक है। इस जगत्रुपी रात्रि में परमार्थी और मायामुक्त योगी लोग ही जागृत रहते हैं। जब जीव को सांसारिक भोग-

---

1. हरि सेवकहिं न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापइ तेहि विद्या॥
   —रामचरितमानस : उत्तर काण्ड, ७८/१
2. माया ईस न आपु कहुं जान कहिअ सो जीव।
   —वही, अरण्य काण्ड, १५
3. छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥
   —वही, किष्किन्धा काण्ड, १०/२
4. (क) प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम रोवा॥
   —वही, १०/३

   (ख) निज सहज अनुभव रुप तव खल भूति चलि आयो तहां।
   निर्मल निरंजन निर्विकार उदार सुख तें परिहरयो॥
   —विनयपत्रिका : पद १३६

विलास से विरक्ति हो जाए, तभी उसे जागृत समझा जाता है। विवेक हो जाने पर मोहरुपी भ्रम मिट जाता है तथा अज्ञान के समाप्त होने पर, वह श्री-राम की भक्ति के प्रति आकर्षित होता है। मन, कर्म और वाणी से भगवान् श्रीराम के चरणों में अनुराग होना ही सर्वश्रेष्ठ परमार्थ है[1]। यही श्रीराम भक्तों और देवताओं के कल्याण के लिए मानवरुप में अवतरित होकर इस प्रकार की लीलाएं करते हैं कि जिनके श्रवण-मात्र से जीव भव-बंधन से मुक्त हो जाता है[2]।

ब्रह्म, माया जीव और जगत् के सम्बन्ध में तुलसी के विचार स्वत: स्पष्ट हैं। तुलसी सर्वातमवादी भी हैं, क्योंकि सभी जीवों को उन्होंने राम का ही रुप माना है। क्या जड़, क्या चेतन, सभी जीव उसी एक ब्रह्म से उत्पन्न हैं। ब्रह्म की सर्वव्यापकता के आधार पर ही तुलसी सारे संसार को सीता और राममय मानकर करबद्ध होकर प्रणाम करते हैं[3]। है! राम भक्त को प्रेम से गले लगा लेते हैं और अभक्त को मार कर मुक्ति प्रदान कर देते हैं[4]। राम की भक्ति से विमुख रहने वाला जीव कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।

जगत

श्रीराम से प्रेरित माया पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पांच स्थूल भूतों को उत्पन्न करती है और इन्हीं से जगत् की रचना होती है। यद्यपि अपने आप में माया निर्बल है, पर वह राम का बल प्राप्त कर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के समूह की रचना करती है[5]। यह सारा विश्व भगवान् राम का ही रूप

---

1. एहिं जग जामिनी जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी॥
   जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय बिलास विरागा॥
   होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरण अनुरागा॥
   सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहूं॥
   —रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, ९२/२-३

2. भगत भूमि भूसुर सुरभि सुरहित लागि कृपाल।
   करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जगजाल॥
   —वही, अयोध्या काण्ड, ९३

3. सीय राममय सब जग जानी। —वही, बाल काण्ड, ७/१
   करऊं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

4. तदपि करहिं सम विषम बिहारा। —वही, अयोध्या काण्ड, २२८/३
   भगत अभगत हृदय अनुसारा॥

5. सुनु रावण ब्रह्मांड निकाया। —वही, सुन्दर काण्ड, २०/२
   पाइ जासु बल विरचति माया॥

है[1]। राम की विश्वमयता का वर्णन करते हुए, वेदों में कहा गया है कि पाताल जिनका चरण है, ब्रह्मलोक सिर है और मध्यवर्ती लोकों की स्थिति जिनके भिन्न-भिन्न अंगों पर है। भयंकर काल जिनका भृकुटि संचालन, सूर्य नेत्र तथा बादलों का समूह केश हैं। अश्विनीकुमार जिनकी नाक हैं, रात और दिन निमेष, दस दिशाएं कान, वायु श्वास और वेद जिनकी वाणी हैं। लोभ जिनका अधर, यमराज भयानक दान्त, माया हंसी और दिक्पाल भुजाएं हैं। अग्नि जिनका मुख और वरुण जीभ है। उत्पत्ति, पालन और प्रलय जिनके कृत्य हैं। असंख्य वनस्पतियां जिनकी रोमावली, पर्वत अस्थियां, नदियां नसों का जाल, समुद्र उदर तथा नरक जिनकी नीचे की इन्द्रियां हैं। शिव जिनका अहंकार, ब्रह्मा बुद्धि, चन्द्रमा मन तथा विष्णु चित्त हैं, इस प्रकार के राम स्वयं ही विश्वमय हैं[2]।

संसार की सभी वस्तुएं मायाजनित होने के कारण असत्य होती हुई भी सत्य प्रतीत होती हैं। संयोग और वियोग अच्छे और बुरे भोग, शत्रु, मित्र और उदासीन, जन्म और मृत्यु, सम्पत्ति और विपत्ति, कर्म, काल, धरती, धन, घर, परिवार, नगर, स्वग, नर्क आदि जो भी व्यवहार हैं, जो देखने, सुनने और विचारने में आते हैं - इन सबका मूल कारण मोह ही है। वस्तुतः इन व्यवहारों का कोई अस्तित्व नहीं है। जिस तरह स्वप्न में राजा भिखारी हो जाए अथवा दरिद्र स्वर्ग का स्वामी इन्द्र बन जाए, परन्तु निद्रा से जागृत होने पर उन्हें कुछ भी हानि-लाभ नहीं होता, ठीक इसी प्रकार संसार का यह प्रपंच है[3]। मायारचित यह भेद असत्य है तथापि वह ईश्वर भक्ति के बिना

---

1. बिस्वरुप रघुबंस मनि। —रामचरितमानस : लंका काण्ड, १४
2. वही, लंका काण्ड, १४-१५
3. (क) जोग बियोग भोग भल मंदा।
   हित अनहित मध्यम भ्रमफंदा॥
   जनमु मरनु जहं लगि जग जालू।
   संपति बिपति करमु अरु कालू॥
   धरनी धाम धनु पुर परिवारु।
   सरगु नरकु जहं लगि व्यवहारु॥
   देखिअ सुनिअ गुनिअ मन मांही।
   मोह मूल परमारथ नाहीं॥ —वही, अयोध्या काण्ड, ९१/३-४

   (ख) सपने होइ भिखारी नृप रंक नाकपति होइ।
   जागें हानि न लाभ कछु अस प्रपंच जिअ जोइ॥ —वही, अयोध्या काण्ड, ९२

अनेक उपाय करने पर भी समाप्त नहीं होता[1]।

जीव राम की माया से मोहित होकर काल, कर्म और गुणों से बंधा हुआ अनन्त भवमार्ग में भटकता रहता है[2]। संसार में उसे कर्मानुसार फल मिलता है। कोई किसी को सुख अथवा दुःख नहीं देता। सभी को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है[3]। इस संसार में कर्म ही प्रधान वस्तु है, क्योंकि प्रत्येक जीव जैसा करता है, वैसा पाता है। जैसी करनी, बैसी भरनी[4], पर श्रीराम की भक्ति से जीव इस जंजाल से मुक्त हो सकता है।

जगत् के प्रपंच, ब्रह्म, माया, जीव और जगत् के स्वरूप को स्पष्ट करने वाले आख्यानों में राजा चित्रकेतु का आख्यान, प्रहलाद का आख्यान तथा नारद को दक्ष के शाप का आख्यान विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। नारद ने राजा चित्र-केतु को आध्यात्मिक उपदेश के द्वारा संसार का वास्तविक ज्ञान करवा कर उसे पुत्रमोह से मुक्त करके, ज्ञान प्रदान किया था। प्रहलाद को भी जब संसार की वास्तविकता का ज्ञान हो गया तो फिर उसे उस मार्ग से कोई विरत न कर सका[5]। नारद ने दक्ष के पुत्र हयशर्व-शवलाश्वों को जगत् के प्रपंच से छुड़ा कर, परमार्थ के मार्ग पर लगाया था[6]।

लौकिक पक्ष

तुलसी-साहित्य में अनेक ऐसे लौकिक तत्वों की व्याख्या की गई है जिनमें

---

1. ग्यान अखण्ड एक सीताब्रर। मायावस्य जीव सचराचर ॥
   जौं सबके रह ग्यान एक रस। ईश्वर जीवहिं भेद कहहु कस ॥
   मायावस्य जीव अभिमानी। ईसवस्य माया गुन खानी ॥
   परवस जीव स्ववस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता ॥
   मुधा भेद जदपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ॥
   —रामचरितमानस : उत्तर काण्ड, ७७/२-४
   —वही, किष्किन्धा काण्ड २/१
2. नाथ जीव तब माया मोहा।
3. काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सुनु भ्राता ॥
   —वही, अयोध्या काण्ड, ९१/२
4. करम प्रधान विस्व करि राखा। जो जस करइ स तस फल चाखा ॥
   —वही, ११८/३
5. चित्रकेतु कर घर उन घाला।
   कनककसिपु कर पुनि अस हाला ॥ —वही, बाल काण्ड, ७९/२
6. (क) दच्छ सुतन उपदेसन्हि जाई।
   तिन फिरि भवनु न देखा आई ॥ —वही, ७९/२
   (ख) नारद के उपदेस कबन घर गे नहिं। —पार्वतीमंगल, १२०

लोकमंगल की भावना निहित है। तुलसी अपने युग के प्रतिनिधि कवि थे। इस दृष्टि से उनके काव्य में लौकिक विषयों का व्यापक चित्रण हुआ है। इन विषयों में धर्म, नैतिकता, वर्णाश्रम-व्यवस्था, राजनीति एवं सामाजिक चित्रण को प्रमुख रुप से लिया जा सकता है।

धर्म

जिस सदाचार का पालन करने से मानव को लोक में अभ्युदय और पर-लोक में परम कल्याणरूप शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है, वही धर्म है[1]। भागवत पुराण तथा अन्य भारतीय धर्मशास्त्रों में सदैव आत्मशुद्धि, आध्यात्मिक उन्नति तथा अन्त करण की पवित्रता को धर्म की प्रमुख विशेषता स्वीकार किया गया है। व्यास के मत में सत्य, दया, पवित्रता, समदृष्टि, युक्तायुक्त का विचार, इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, संतोष, दान, भगवान की सेवा और नाम का स्मरण आदि धर्म के अंग हैं[2]।

तुलसी-साहित्य में धर्म के उपर्युक्त स्वरूप का ही व्याख्यान हुआ है। तुलसी का उद्देश्य धर्म के शुद्ध रूप का प्रचार था। अधर्म का नाश और धर्म की रक्षा उनके राम का मुख्य आदर्श था। राम का सम्पूर्ण वृत्त धर्ममय था। उनके इस वृत्त का आधार लेकर ही सच्चे वैदिक सनातन धर्म का रूप स्पष्ट किया जा सकता था।

तुलसी का आविर्भाव जिस युग में हुआ उस समय विदेशी सत्ता भारत में अपनी जड़ें जमा चुकी थी। मुगलों का सितारा बुलन्दी पर था। उनके सामने सिवाय राज्य-सत्ता प्राप्ति के कोई आदर्श नहीं था। इसके लिए पुत्र पिता की, भाई, भाई की विना किसी संकोच एवं लज्जा के हत्या कर देता था। उन-का उद्देश्य लोककल्याण होकर अपने अधिकारों व शक्ति में वृद्धि करना था। अतएव सर्वत्र अहंमन्यता, क्रूरता और विलासिता का वातावरण था। विदेशी शासकों द्वारा हिन्दू धर्म को नष्ट करने के अनेक प्रयास किये जा रहे थे। गोस्वामी जी हिन्दू समाज की अपमानजनक स्थिति से भलिभांति अवगत थे परन्तु उनके लिए उसका प्रत्यक्ष वर्णन करना संभव न था। देश की अधोगति का चित्रण करने के लिए उन्होंने रावण के अन्यायों तथा कलियुग की प्रकृति का आधार लिया। जनता में धार्मिक भावना जागृत करने के लिए उन्होंने पाप और पुण्य की स्पष्ट व्याख्या की। उसका व्यावहारिक रूप सामने रखा। जनता के आचरण को शुद्ध रखने के लिए व्यक्तिधर्म, परिवारधर्म, गृहस्थधर्म और समाजधर्म का चित्रण किया। पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-भाई, पिता-

---

1. यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः। —वैशेषिक दर्शन : १/१/२
2. भागवत पुराण, ७/११/८-१२

पुत्र, स्वामी-सेवक, शासक-शासित—इन सबका पारस्परिक धर्म सम्बन्ध किस प्रकार का हो इसकी व्याख्या अनेक प्रसंगों द्वारा की।

धर्म को अपनाने अथवा धार्मिक बनने के लिए व्यक्ति को जिन वस्तुओं का त्याग करना चाहिए, उनकी चर्चा करते समय गोस्वामी जी ने विषय-वासना, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि मनोविकारों को भी त्याज्य बताया। इन विकारों से धर्म की बड़ी हानि होती है और अधर्म का दुष्प्रभाव बढ़ता है। असुर प्रभावी हो जाते हैं। इन्हीं असुरों का नाश तथा धर्म की पुनः स्थापना के लिए ईश्वर अवतार धारण करते हैं।

तुलसी ने धर्म की व्याख्या करने के लिए अनेक पौराणिक आख्यानों का विनियोग किया है। इन आख्यानों में व्यक्तिगत और समाजगत धर्म की अभिव्यंजना की गई है। व्यक्तिगत धर्म में आत्मकल्याण की भावना निहित होती है तथा समाजगत धर्म में लोककल्याण की। व्यक्तिगत धर्म की अभिव्यंजना करने वाले आख्यानों में अजामिल, अम्बरीष, गजेन्द्र, गणिका, गालव, ध्रुव, प्रहलाद, शिवि, हरिश्चन्द्र आदि के आख्यान विशेष महत्वपूर्ण हैं जबकि सामूहिक धर्मसाधना सम्बन्धी आख्यानों में अगस्त्य द्वारा समुद्रशोषण, विन्ध्याचल अवरोध, कार्त्तिकेय जन्म, दधीचि का त्याग, एवं वामन, वराह, नृसिंह आदि अवतार सम्बन्धी आख्यान आते हैं। इन आख्यानों में ऋषियों एवं देवताओं ने लोक-पीड़िक शक्तियों के विनाश के लिए पूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

संस्कृति

तुलसी-साहित्य में आर्यसंस्कृति का विशद चित्रण हुआ है। गोस्वामी जी आर्यसंस्कृति के परम भक्त थे। उसकी रक्षा उनका सर्वोच्च ध्येय था। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय संस्कृति का जो आदर्श स्वरूप जनता के सामने रखा, वह आज भी उसी रूप में भारतीय जन-मन के लिए सांस्कृतिक निकष सिद्ध हो रहा है।

मानव के आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्नति और विकास के इतिहास को संस्कृति के नाम से अभिहित किया जाता है, जिसका उद्देश्य हमारे जीवन को परिष्कृत, शुद्ध एवं पवित्र बनाना है। जीवन के जिस क्षेत्र में मानव ने शारीरिक सुखों को प्राप्त करने का प्रयास किया है, उसके विकास के इतिहास को सभ्यता तथा जहां मन एवं आत्मा को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया गया है, उन प्रयत्नों को संस्कृति कहा जाता है। संस्कृति का अर्थ निश्चय ही धार्मिक विश्वास है।

तुलसी के युग में भारतीय संस्कृति में अनेक दोष आ चुके थे। सदाचार

सत्य, उदारता, संयम आदि के स्थान पर कदाचार, असत्य, अनुदारता एवं असंयम को प्रश्रय मिल रहा था। प्राचीन मर्यादाएं भंग हो रही थीं। वेद और पुराण सम्मत धार्मिक मान्यताओं की अवहेलना होने लगी थी। कलियुग वर्णन के माध्यम से सांस्कृतिक ह्रास की चर्चा करते हुए तुलसी ने लिखा है कि सब लोग मनमाना आचरण करते हैं। उनकी अपार अनीति का वर्णन संभव नहीं[1]। जिसे जो अच्छा लगता है, उसके लिए वही मार्ग है। जो डींग मारता है, वही पण्डित है। आडम्बर और दंभ में लीन ही सन्त कहलाता है[2]। असत्यवादी और हंसी-मजाक करने में कुशल गुणवान् माना जाता है। आचार-हीन तथा वेदमार्ग विरोधी ही ज्ञानी और वैरागी बने हुए हैं[3]। अनकारियों का सम्मान होता है तथा मन, बचन और कर्म से झूठ बोलने वाले वक्ता माने जाते हैं[4]। सभी पुरुष देवता, ब्राह्मण, वेद और सन्तों के विरोधी हैं। जो लोग पराई स्त्री में आसक्त, कपट करने में कुशल, मोह, द्रोह और ममता के वश में हैं, वही ज्ञानी समझे जाते हैं। कलियुग के प्रभाव से सभी लोग वर्ण-संकर एवं मर्यादाहीन हो गए हैं। वे पाप करते हैं और पापकर्मों के फलस्वरूप दुःख, भय, रोग, शोक और प्रियवस्तु का वियोग पाते हैं[5]।

तुलसी जनता की इस प्रवृत्ति को बदलना चाहते थे। इसके लिए उन्हें आदर्श लोकनायक राम का चरित्र सबसे उपयुक्त प्रतीत हुआ। राम के आख्यान द्वारा उन्होंने भारतीय संस्कृति की सभी विशेषताओं का इस ढंग से वर्णन किया, जिससे जनसाधारण अपनी संस्कृति के प्रति श्रद्धावान् हो सकें। धर्म-कर्म, पूजा-पाठ, रहन-सहन, व्रत-नियम, यज्ञ-होम, संस्कार, दान, खान-पान, रीति-रिवाज आदि का वर्णन तुलसी की प्रबुद्ध सांस्कृतिक चेतना का ही परिणाम है।

---

1. सब नर कल्पित करहिं अचारा।
   जाइ न वरनी अनीति अपारा॥ —रामचरितमानस : उत्तर काण्ड, ९९/५
2. पंडित सोइ जो गाल बजावा।
   मिथ्यारंभ दंभरत जोई।
   ता कहुं संत कहईं सब कोई॥ —वही, ९७/२
3. निराचार जो श्रुतिपथ त्यागी।
   कलिजुग सोइ ग्यानी सो विरागी॥ —वही, ९७/४
4. जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
   मन क्रम वचन लवार तेइ वनकता कलिकाल महु॥ —वही, ९८
5. भये बरन संकर कलि भिन्न सेतु सब लोग।
   करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक वियोग॥ —वही, १००

राम के राज्य में सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर रह कर, वेदमार्ग का अनुसरण करते हुए सुख पाते हैं[1]। उन्हें भय, रोग एवं शोक संतप्त नहीं करते। वे दम्भरहित, धर्मपरायण, पुण्यात्मा, कृतज्ञ, कपटहीन, उदार और परोपकारी हैं[2]। पुरुष पत्नीव्रती एवं नारियां पतिव्रता हैं। घर-घर में पुराणों की कथा कही और सुनी जाती है[3]। संस्कृति की रक्षा के लिए व्यक्ति की धार्मिक, भौतिक एवं सामाजिक उन्नति आवश्यक है जो रामराज्य में सर्वतोपरि थी। जनता के नित्यकर्मों में ईश्वरोपासना, सन्ध्या, यज्ञ, हवन, पूजा-पाठ आदि का प्रमुख स्थान था। स्वयं राजा राम भी प्रातःकाल सरयू नदी में स्नान करके ब्राह्मणों और सज्जनों के साथ सभा में बैठते हैं। वशिष्ठ जी वेदों और पुराणों के अनेक आख्यान श्रीराम को सुनाते हैं[4]।

राम के आदर्श जीवन में संस्कृति के विभिन्न अंगों का समन्वय दिखा कर तुलसी ने जनता के व्यावहारिक आचरण को एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया।

भारतीय संस्कृति में संस्कारों का सर्वाधिक महत्व है। इनके अनुष्ठान से मनुष्य शुद्ध, पवित्र एवं पापरहित हो जाता है। हिन्दू धर्म में गर्भाधान से लेकर जीवन पर्यन्त किये जाने वाले संस्कारों का विधान है। धर्मशास्त्र में इन संस्कारों का प्रयोजन स्पष्ट करते हुए लिखा है कि गर्भधान से लेकर उपनयनादि संस्कारों के यथाविधि अनुष्ठान से वैचारिक पवित्रता के साथ-साथ अनेक दोषों का उन्मूलन हो जाता है। विवाह संस्कार के फलस्वरूप उपलब्ध पुत्रोत्पत्ति, पितृऋण से मुक्ति दिलाती है। सारांश में मन, वाणी और शरीर की दृष्टि से पापों का दमन तथा पुण्यों का उदय ही संस्कारों का मुख्य प्रयोजन है।

तुलसी ने राम के जीवन में जातकर्म, नामकरण, चूड़ाकर्म, कर्णभेद, उपनयन, विवाह आदि संस्कारों का वर्णन किया है। रामजन्म के उपरान्त

---

1. वरनाश्रम निज धरम निरत बेद पथ लोग। —रामचरितमानस : उत्तर काण्ड, २०
2. (क) सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। —वही, २०/४
   सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥ —वही, २१/४
   (ख) सब उदार सब पर उपकारी। —वही, २५/४
3. सबके गृह गृह होहिं पुराना।
4. प्रातकाल सरऊ करि मज्जन।
   बैठहिं सभां संग द्विज सज्जन॥
   वेद पुराण वसिष्ठ बखानहिं। —वही, २५/१
   सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥

राजा दशरथ ने नान्दीमुख श्राद्ध करके सभी जातकर्म आदि संस्कार किए[1]। कुछ समय के उपरान्त नामकरण संस्कार का उपयुक्त समय जानकर राजा दशरथ ने ज्ञानी मुनि श्री वशिष्ठ को बुला भेजा[2]। बच्चों के कुछ और बड़ा होने पर राजा ने गुरु वशिष्ठ के आदेश से सबका कर्णभेद तथा चूड़ाकर्म संस्कार किया[3]। जैसे ही राजकुमार कुमारावस्था को प्राप्त हुए, उनका यज्ञोपवीत संस्कार आयोजित हुआ[4]। युवा होने पर चारों भाईयों का जनकपुरी में विवाह संस्कार हुआ।

इन सभी संस्कारों में विवाह संस्कार के वर्णन के प्रति तुलसी अधिक साग्रह रहे हैं। धनुर्भंग के बाद राम और जानकी के विवाह संस्कार के उपलक्ष्य में जनकपुरी का अलङ्कृत किया जाना[5], विवाहमण्डप की अद्भुत रचना[6], दशरथ की वहुरंगी वारात[7], जनकपुरी में वारात का अलौकिक स्वागत, देववृन्द द्वारा विवाहोत्सव का निरीक्षण[8], शास्त्रविधि से विवाह का संपादन[9] तथा विवाहोपरान्त दहेज[10] एवं वारात की विदाई का वर्णन विशेष-रूप से उल्लेख्य है[11]।

संस्कारों के अतिरिक्त त्याग, उदारता, सहनशीलता, मित्रता, शरणागत की रक्षा आदि भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों का व्यापक चित्रण भी तुलसी-साहित्य की अप्रतिम उपलब्धि है।

---

1. (क) नन्दीमुख सराध करी जात करम सव कीन्ह।
—रामचरितमानस : बाल काण्ड, १९३
(ख) जात कर्म करि पूजि पितरसुर, दिये महिदेवन दान। —गीतावली, पद २
2. नाम करन कर अवसरु जानी।
भूप बोली पठए मुनि ग्यानी॥ —रामचरितमानस : बाल काण्ड, १९६
3. करन वेध चूड़ा करन लौकिक वैदिक काज।
—रामाज्ञाप्रश्न, सर्ग १, सप्तक ३, श्लोक २
4. भये कुमार जबहिं सव भ्राता।
दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥ —रामचरितमानस : बाल काण्ड, २०३/२
5. रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, २८६/२-४; २८७/१-४, २८८/१
6. वही, २८८/२-३
7. वही, ३०१/१-४; ३०२/१-४
8. वही, ३१३/१-४
9. वही, ३२२/ छन्द १-२
10. वही, ३२५/१-४
11. वही, ३३२/१-४

नैतिकता

तुलसी हिन्दू समाज में नैतिक आदर्शों के प्रबल समर्थक थे। उनके मत में कोई भी व्यक्ति अथवा समाज नैतिकता के अभाव में भौतिक अथवा आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकता। प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि मनोविकारों के दुष्प्रभाव के अन्तर्गत समाज एवं शास्त्र द्वारा निर्धारित नीतिमार्ग से हट कर अधर्म तथा अनीतिपूर्ण कार्य करता है। उसके ऐसे आचरण से समाज में कामुकता, पारस्परिक शत्रुता, अहंमन्यता आदि का जन्म होता है, जिससे अकेले उसी मनुष्य को ही नहीं, प्रत्युत पूरे समाज को अनेक दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं।

जो आचरण प्रत्येक प्राणी के लिए मंगलदायक सिद्ध हो उसे नैतिक कहा गया है। शील, शिष्टता, नम्रता, सदाचार आदि मानवीय गुण भी नैतिकता के मानदण्डों में गिने जाते हैं। तुलसी ने राम के आख्यान के माध्यम से यही स्पष्ट किया है कि नैतिक आचरण से अनेक बाधाओं के बावजूद व्यक्ति अपने उद्देश्य में सफल रहता है तथा उसके आचरण से समाज भी उपकृत होता है।

रामराज्य में जनता का आचरण नैतिकता का साक्षात् निदर्शन है। पारस्परिक प्रेम, वेद-पुराण में निष्ठा तथा धर्म का पालन करते हुए लोग सुखी जीवन बिताते हैं। उनमें कोई भी अकृतज्ञ, धूर्त और अविवेकी नहीं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि से कोई भी पीड़ित नहीं है। मानस में रामराज्य के वर्णन से पूर्व ही तुलसी अनेक आख्यानों के माध्यम से यह स्पष्ट कर देते हैं कि काम की अनैतिक भावना के कारण इन्द्र, चन्द्रमा, दण्ड, नहुष आदि ने मर्यादा भंग की और परिणाम में अनेक कष्ट भोगे। लोभ के वशीभूत होकर विश्वामित्र ने वशिष्ठ की नन्दिनी नामक गाय को बलात् गृहीत करने का अनैतिक उपक्रम किया तो उसके फलस्वरूप दोनों में भयानक विरोध उत्पन्न हुआ। मद के दुष्प्रभाव से अनैतिक आचरण करने से रावण, बालि और सहस्रबाहु आदि विनाश को प्राप्त हुए।

वर्णाश्रम व्यवस्था

प्राचीन काल से ही हमारे देश में हिन्दू समाज को व्यवस्थित रखने और उसे सुचारु रुप से चलाने के लिए वर्णाश्रम व्यवस्था की प्रमुख भूमिका रही है। प्रत्येक मनुष्य को अपने परिवेश एवं सामाजिक स्थिति के अनुकूल अनेक कर्त्तव्यों का पालन करना होता है। ये कर्त्तव्य उसकी पारिवारिक मर्यादाओं से ओतप्रोत होते हैं। कर्त्तव्यपालन की इस प्रक्रिया में कालान्तर में विश्रृंखलता आ गई। पहले सिद्धों एवं नाथपंथी योगियों ने इस व्यवस्था का घोर विरोध किया और फिर कबीर आदि ने भी इस पर कठोर प्रहार किये।

सन्तों के वर्णाश्रम विरोधी अभियान के फलस्वरूप तुलसीयुग में वर्णाश्रम-धर्म का प्रभाव नाम मात्र रह गया था। तुलसी ने इस सामाजिक अनुशासन का ह्रास कलियुग वर्णन के माध्यम से काव्यनिबद्ध किया। तुलसी का विश्वास था कि यदि वर्णव्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो गई तो सामाजिक व्यवस्था स्वतः धराशायी हो जाएगी। सामाजिक उन्नति के लिए वर्णाश्रम व्यवस्था का पुनरुद्धार आवश्यक है। इस कारण उन्होंने शास्त्र एवं लोकमर्यादा का ध्यान रखते हुए समाज को संगठित रखने के उद्देश्य से वर्णव्यवस्था को नवजीवन दिया।

तुलसी के मत में ब्राह्मणों का कार्य समाज को ज्ञान प्रदान करना है। ज्ञान सम्पन्न होने के कारण ही वे संपूज्य हैं, क्योंकि उनके ज्ञानोपदेश से ही लोकधर्म विकसित होता है।

क्षत्रिय का धर्म प्रजा की रक्षा, दान, यज्ञ, शक्ति तथा पराक्रम का प्रदर्शन है। देश तथा प्रजा की रक्षा के लिए वीरता पूर्वक युद्ध करके, शत्रुनाश करना क्षत्रिय का प्रमुख धर्म है।

वैश्यों का धर्म समाज का भरण-पोषण है। इनके प्रमुख कार्य पशुपालन, दान, यज्ञ, कृषि, व्यापार आदि हैं।

तीनों वर्णों की सेवा तथा अन्य सेवापरक कार्य शूद्र का वर्णधर्म कहा गया है।

तुलसी श्रीराम के आख्यान तथा रामराज्य के वर्णन के माध्यम से उत्तम और समृद्ध समाज की स्थिति के लिये वर्णव्यवस्था को अपरिहार्य मानते हैं।

प्राचीन काल में वर्णधर्म की तरह ही मानव के जीवन को चार भागों अथवा आश्रमों में विभक्त किया गया था जिसे आश्रम-व्यवस्था की संज्ञा दी गई थी। इसके मूल में भी सामाजिक उन्नति की भावना काम करती है। वर्णधर्म के समान ही तुलसीयुग में आश्रमधर्म का भी लोप हो रहा था। मानवजीवन की सुव्यवस्था के लिए आवश्यक मानते हुए तुलसी ने अपने रामचरितमानस में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रम को अपनाने की प्रेरणा दी। आश्रमधर्म के चार भेद इस प्रकार हैं।

ब्रह्मचर्य आश्रम

यह मानव जीवन का प्रथम आश्रम है, जिसकी सीमा २५ वर्ष की अवस्था तक निश्चित की गई है। इसमें यज्ञोपवीत आदि संस्कारों के उपरान्त बालक

विद्याध्ययन के लिए गुरु-गृह जाना आरंभ करता है। तुलसी ने राम के चरित्र द्वारा इस आश्रम का चित्रण किया है। राम विद्याध्ययन के लिए गुरु-गृह में जाना आरंभ करते हैं। कुछ ही काल में वे सभी विद्याओं में पारंगत हो जाते हैं। वेद-पुराणों को स्वयं समझ कर, फिर छोटे भाईयों को समझाते हैं[1]।

गृहस्थ आश्रम

गोस्वामी जी ने गृहस्थाश्रम का चित्रण राम के आदर्श परिवार के माध्यम से किया है। विवाह संस्कार द्वारा इस आश्रम में प्रवेश होता है। श्रीराम जनकपुरी में शिव का धनुष तोड़ कर सीता से विवाह करते है[2]। उनके साथ ही अन्य तीनों भाईयों का भी विवाह होता है[3]। श्रीराम के पारिवारिक चित्रण द्वारा कवि ने गृहस्थधर्म का विस्तृत वर्णन करते हुए परिवार के सदस्यों के पारस्परिक कर्त्तव्यों की विशद चर्चा की है।

वानप्रस्थ आश्रम

पचास वर्ष की अवस्था तक गृहस्थाश्रम धर्म का पालन करने के उपरान्त वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश का विधान है। संतानोत्पत्ति के पश्चात् वन में वास करना, फलादि खाकर ईश्वराराधन में लीन रहना तथा अपने दोषों को दूर करने के लिए तपस्या करना, इस आश्रम के प्रमुख विधान हैं। गोस्वामी जी ने मनु, वशिष्ठ, अत्रि, सतानन्द आदि तपस्वियों का चित्रण करके, इस आश्रम की महत्ता पर प्रकाश डाला है।

सन्यास आश्रम

इस आश्रम में गृहादि सभी वस्तुओं का त्याग करके, गैरिक वस्त्र धारण कर, दण्ड-कमण्डलु लेकर, भिक्षावृत्ति के सहारे वनप्रदेश अथवा तीर्थादि में वास करते हुए, एक मात्र परमेश्वर की आराधना करने का विधान है। शास्त्र में क्षत्रिय और वैश्य के लिए सन्यास आश्रम में प्रवेश का नियम नहीं है।

---

1. गुरु गृह गये पढ़न रघुराई। अल्पकाल सब विद्या पाई॥
   वेद पुराण सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजहिं समुझाई॥
   —रामचरितमानस : बाल काण्ड, २०३/२

2 दूलह श्रीरघुनाथ बने दुलही सिय सुन्दर मन्दिर मांही।
   —कवितावली : बाल काण्ड, १७

3. जस रघुवीर व्याह विधि वरनी।
   सकल कुंअर व्याहे तेहि करनी॥ —रामचरितमानस : बाल काण्ड, ३२५/१

तुलसी ने दशरथ और रावण के प्रसंग में इस आश्रम की चर्चा की है[1]।

आश्रमधर्म का महत्व मानवसमाज को स्वच्छ एवं स्वस्थ रखने में है। मानव अपने जीवन के किस भाग में, किस प्रकार का आचार-विचार एवं व्यवहार रख कर, इह लोक में धर्म, अर्थ, काम तथा परलोक में मुक्तिलाभ कर सकता है, इसी बात का सन्देश आश्रमधर्म देता है। भारत की सामाजिक व्यवस्था वर्णाश्रम धर्म पर ही आधारित रही है और तुलसी का लक्ष्य समाज में फैली अव्यवस्था और अराजकता को दूर कर धर्म का आदर्श प्रतिष्ठित करना था। अतः उन्होंने वर्णव्यवस्था अपनाने पर बल दिया।

राजनीति

यद्यपि तुलसी ने लिखा है कि उन्होंने मानस की रचना अपने अन्तः करण के सुख के लिए की है[2], तो भी मानस की रचना का उद्देश्य वैयक्तिक सुख नहीं माना जा सकता। इस सम्बन्ध में तुलसी ने स्वयं कहा है कि कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है जो गंगा जी की तरह सब का हित करने वाली हो[3]। इस चौपाई से लोकमंगल ही तुलसी का मूल उद्देश्य प्रतीत होता है।

हमारे देश में आज भी रामराज्य की स्थापना के प्रयास किये जा रहे हैं। स्वाधीनता से पूर्व महात्मा गान्धी स्वतन्त्र भारत में रामराज्य की ही कल्पना किया करते थे। इससे स्पष्ट है कि गान्धी जी को राज्य-शासन के सम्बन्ध में मानस से विशेष प्रेरणा मिली थी। तुलसी ने राजा राम, राजा भानुप्रताप, राजा जनक, बाली, सुग्रीव, रावण आदि राजाओं और उनकी शासनविधि का जो चित्रण किया है, उससे स्पष्ट होता है कि वे राजनीति के कुशल जानकार थे।

तुलसी ने राजा, राज्य, प्रजा, शासन, कर, न्याय और दण्ड आदि सब पर अपनी रचनाओं में प्रकाश डाला है।

कवि के अनुसार राजा धर्म के अधीन है। उसके अधिकार धर्म की मर्यादा द्वारा सीमित है। प्रभु होने पर भी वह धर्म से सुशासित है। वशिष्ठ के

---

1. (क) चौथे पन पायउं सुत चारी। —रामचरितमानस : बाल काण्ड, २०७/१
   (ख) संत कहहिं अस नीति दसानन।
   चौथे पन जाइहिं नृप कानन॥ —वही, लंका काण्ड, ६/२
2. स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा। —वही, बाल काण्ड, ७
3. कीरति भनिति भूति भलि सोई।
   सुरसरि सम सब कह हित होई॥ —वही, १३/५

परामर्श से ही दशरथ राम के अभिषेक की तैयारी का आदेश देते हैं[1]। तुलसीदास ने रामराज्य का जो वर्णन किया है, वह धर्मराज्य का आदर्श है। धर्म की स्थापना के लिए आततायियों का दमन आवश्यक है, क्योंकि विना धर्मराज्य के धर्मसाधना संभव नहीं। इसके विपरीत अत्याचारी शासन में वह शान्तिपूर्ण वातावरण उपलब्ध नहीं होता, जो धार्मिक साधना और समाज की सुव्यवस्था के लिए आवश्यक है, क्योंकि जो दशा बवंडर में पड़ी हुई पतंग की और शोकसमूह में पड़े हुए विवेक की होती है, वही दशा बुरे राज्य में, कर्म, धर्म और सुख-सम्पत्ति की होती है[2]। बुरे राज्य में धर्म-कर्म का नाश हो जाता है। इस सम्बन्ध में व्योहार राजेन्द्रसिंह का कथन है—

"अधर्मनाश के वाद धर्म का राज आरंभ होता है जिस में धर्मसाधना को पूरा विकास मिलता है। फिर से समाज का संगठित रूप प्रकट होता है—जिस में सब की मर्यादा तथा कर्त्तव्य बंधा हुआ है। उसके साथ-साथ सब को कर्त्तव्यानुसार अधिकार भी हैं। पूर्ण समता का राज्य है, विषमता का पूर्णतया नाश हो जाता है—'राम प्रताप विषमता खोई'—दण्डनीति-कार्य, दुष्टदमन से समाप्त हो जाता है और धर्मनीति का शासन आरंभ होता है। दण्ड को एक तरफ रख कर राम चरित्रवल से प्रजा पर शासन करते हैं। उनका राज्य व्यक्तिगत राजतन्त्र है, उनका राज्य धर्मराज्य है। एकतन्त्र राज्य होते हुए भी उसमें प्रजा को मत देने का ही नहीं, किन्तु राजा के पारिवारिक जीवन तक की पूरी आलोचना का अधिकार है। राजा प्रजारंजन के लिए अपनी व्यक्तिगत सत्ता प्रजा की इच्छा पर अर्पण कर देता है और क्षुद्र प्रजाजन को प्रसन्न करने के लिए अपनी प्राणप्रिया को त्यागने में भी आनाकानी नहीं करता[3]।"

तुलसी का रामराज्य सुराज्य होने के साथ-साथ स्वराज्य भी है। उस का प्रभाव सभी तक पहुंचने वाला है। राम के राजा बनते ही सारा संसार आनंदित हो जाता है, सब के शोक मिट जाते हैं[4]। सभी सुखी हो जाते हैं।

---

1. कहेउ भूप मुनिराज कर जोइ जोइ आयसु होई।
   राम राज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ॥
   —श्रीरामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, ५
2. चढ़े वधूरे चंग ज्यों ज्ञान ज्यों सोक समाज।
   करम धरम, सुख सम्पदा त्यों जानिले कुराज॥ —दोहावली, ५१३
3. राजेन्द्रसिंह, गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना : भाग २, पृष्ठ २१-२२
4. रामराज बैठे त्रैलोका। हरषित भये गए सब सोका॥
   —रामचरितमानस : उत्तर काण्ड, १९/४

सब के सुन्दर घर हैं। कोई गरीब नहीं दिखाई देता[1]। दरिद्र, दुःखी ग्रौर दीन भी कोई नज़र नहीं ग्राता। सभी उदार, परोपकारी हैं। पुरुष पत्नी-व्रती एवं स्त्रियां पतिव्रता हैं[2]। सभी लोग प्रसन्न हैं। राम राजकार्य के लिए प्रतिदिन सभा में ग्राकर शासन-सम्बन्धी समस्याग्रों के समाधान के लिए विद्वान ग्रौर ज्ञानी जनों से विचार-विमर्श करते हैं[3]।

इस प्रकार के सुराज का ग्राधार नीतिनिपुण राजा होता है। राम ऐसे ही राजा हैं। तुलसी ने उन्हें साम, दाम, दण्ड ग्रौर भेद का ज्ञाता बताया है। ये चारों धर्मशील राजा की विभूतियां हैं, किन्तु राम ग्रधिकांश रुप में साम-नीति का यी ग्रवलंबन करते हैं। खर-दूषण के प्रसंग में राम ने सामनीति का ही ग्राश्रय लेना चाहा, परन्तु जब शत्रु युद्ध के लिए ललकारने लगा तो उन्हें दण्डित करना धर्म था। सुग्रीव के सम्बन्ध में भी राम को दण्ड देने की सीमा तक नहीं जाना पड़ा। यहां पर भी उन्होंने सामनीति का ही उपयोग किया। इसी प्रकार सेना समेत लंका पहुंच जाने पर भी राम, रावण को समझाने के लिए ग्रंगद को भेजते हैं, पर जब सामनीति का रावण पर प्रभाव नहीं पड़ा तो दण्ड नीति का प्रयोग करके, रावण को कुल सहित नष्ट कर दिया गया। रावण स्वयं सीता को ग्रनुकूल करने के लिए साम, दान, भय, दण्ड सभी का ग्राश्रय लेता है, किन्तु प्रमुखतः वह दण्ड का उपासक था। साम उसके लिए कायरता, ग्रसमर्थता का ही प्रतीक था[4]। इसके ग्रतिरिक्त तुलसी ने नीति-सम्बन्धी ग्रन्य सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डाला है। नीति का उचित ग्रवसर पर पालन न करने से राजा नाश को प्राप्त होता है। रावण, राम को तुच्छ समझ कर, उनकी उपेक्षा करता रहा ग्रौर वास्तविक स्थिति से ग्रांखें मूदें रहा। राम के लंका की सीमा में ग्रा जाने पर भी वह नृत्य-गान ग्रादि ग्रानन्दोपभोग

---

1. मुदित चौदह भुवन सब सुख सुखी सब सब काल।
   सब ही के सुन्दर मन्दिराजिर राउ रंक न लखि परे॥

   —गीतावली : उत्तर काण्ड, १/१९

2. (क) नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ ग्रबुध न लच्छन हीना॥

   —रामचरितमानस : उत्तर काण्ड, २०/३

   (ख) सब उदार सब पर उपकारी। विप्र चरन सेबक नरनारी॥
   एक नारि व्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥

   —वही, २१/४

3. प्रातः काल सरजू करि मज्जन। बैठहिं सभा संग द्विज सज्जन॥

   —वही, २५/१

4. रिपु सन प्रीत करत नहीं लाजा। —वही, लंका काण्ड, २०/३

में मग्न रहा[1]। अपने मन्त्रियों तथा अंगद द्वारा सावधान किये जाने पर भी राम, लक्ष्मण तथा उनकी सेना को नगण्य समझता रहा[2]। मन्दोदरी द्वारा नीतिसम्मत सीख देने का भी उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। रावण के सन्दर्भ में ही गोस्वामी जी ने "विनाश काले विपरीत बुद्धि:" इस लोक प्रचलित नीति का भी वर्णन किया है।

शक्तिहीन राजा शक्तिशाली शत्रु के विरुद्ध कैसी नीति का आश्रय ले, इस सम्बन्ध में कवि का मत है कि चतुर राजा बलवान शत्रु का इस प्रकार आदर करे जैसे नौकारूपी शत्रु का आदर, नदी का जल करता है। जब तक नौका समर्थ है, जल उसको अपने सिर पर धारण किये रखता है, किन्तु उसमें सुराख होते ही जल चारों ओर से आक्रमण करके नौका को डुबो देता है[3]। इससे स्पष्ट होता है कि शत्रु पर दुर्बलता की अवस्था में ही आक्रमण करना चाहिए।

कर व्यवस्था

शासन को उचित रुप से चलाने के लिए राजा राज्य के निवासियों से कर ले सकता है, परन्तु वह कर धर्मसम्मत हो। मनमाने ढंग से लगाए गए कर प्रजा की पीड़ा का कारण बनते हैं और उससे प्रजा में असंतोष उत्पन्न होता है। इस सम्बन्ध में चित्रकूट-मिलन प्रसंग में राम, भरत से कहते हैं कि मुखिया को मुख के समान होना चाहिए, जो खाने पीने को तो एक अकेला है, परन्तु विवेक पूर्वक सब अंगों का पालन-पोषण करता है[4]। अर्थात् राजा कर द्वारा प्रजा से जो कुछ भी ग्रहण करे, उसे अपने पास न रख, प्रजा के योग्य प्रतिनिधियों को सौंप दे और यह देखे कि वह 'कर' प्रजा की भलाई में खर्च किया जा रहा

---

1. बैठा जाइ मन्दिर रावन। लागे किन्नर गुनि गन गावन॥
   बाजहिं ताल पखाउज बीना। नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना॥
   —रामचरितमानस : लंका काण्ड, ९/४-५

2. राम छाम लरिका लषन बालि बालक हिं,
   घालि को गनत, रीछ जल ज्यों न धन में।
   काज को कपिराज कायर कपि समाज,
   मेरे अनुमान हनुमान हरिगन में॥ —गीतावली : सुन्दर काण्ड, २३

3. सत्रु सयाने सलिल ज्यों, राख सीस रिपु नाउ।
   बूड़त लखि, पग डगत लखि, चपरि चहूं दिसि धाउ॥ —दोहावली : ५२०

4. मुखिया मुखु सों चाहिए खान पान कहुं एक।
   पालै, पौषे सकल अंग तुलसी सहित विवेक॥
   —रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, ३१५

है या नहीं। दूसरे स्थान पर कवि ने कहा है कि राजा को सूर्य के समान 'अप्रत्यक्ष कर' ही लेना चाहिए। जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से जल खींचता है, उस समय किसी को पता ही नहीं चलता, परन्तु जब वह उस जल की वर्षा करता है तो सब मुदितमन हो जाते हैं[1]। राजा भी इसी प्रकार कर लेते समय प्रजा को कष्ट न दे। प्रजा की दृष्टि से उत्तम, मध्यम और अधम भेद से कर त्रिविध है। जिस प्रकार पके फल को वृक्ष स्वतः ही प्रदान कर देता है, कच्चा फल तोड़ना पड़ता है और कोई कोई फल के साथ वृक्ष की शाखा और पत्तों को तोड़ लेता है, इसी प्रकार जिस कर को प्रजा आसानी से दे सके, वह उत्तम, प्रजा को अप्रसन्न कर अधिक मात्रा में गृहीत कर मध्यम तथा प्रजा को कष्ट देकर, उसकी आर्थिक स्थिति बिना विचारे जो धन, कर के रूप में छीना जाता है, वह अधम कहलाता है[2]।

दण्ड एवं न्याय व्यवस्था

जो जिस प्रकार के दण्ड का अधिकारी है, यदि उसे वैसा ही दण्ड दिया जाता है तो इससे एक तो शासन व्यवस्था सुदृढ़ होती है और दूसरा इससे राजा की शोभा ऐसे बढ़ जाती है जैसे सोना आभूषण का रुप लेकर, स्त्री की सुन्दरता और राजा के लावण्य एवं प्रताप को द्विगुणित कर देता है[3]। राम का अवतार सज्जनों की रक्षा और दुष्टों को दण्ड देने के लिए हुआ था। विभीषण रावण को राम के विषय में कहते हैं कि वे सेवकों को आनन्द लेने वाले, दुष्टों के समूह का नाश करने वाले, वेद तथा धर्म की रक्षा करने वाले हैं[4]। उन्होंने धर्म के नाशक आततायी जनों को कठोर दण्ड दिए हैं। यज्ञों का नाश करने वाली ताड़का को मारा[5]। मुनिद्रोही मारीच का वध किया। सीता के चरणों में चोंच मार कर भागने वाले वायसरूप इन्द्रसुत जयन्त को मर्यादाभंग

---

1. बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोय।
   तुलसी प्रजा सुभागते भूप भानु सो होय॥ —दोहावली, ५०८
2. पाके पकए बिटप दल उत्तम मध्यम नीच।
   फल नर लहैं नरेस त्यों करि विचार मन बीच॥ —वही, ५१०
3. भलेहु चलत पथ पोच भय नृप नियोग नय नेम।
   सुतिय सुभूपति भूषिअत लोह संवारित हेम॥ —वही, ५०६
4. (क) जन रंजन भंजन खल-व्राता। वेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता॥
   —रामचरितमानस : सुन्दर काण्ड, ३८-२
   (ख) कवितावली : उत्तर काण्ड, १२२
5. एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। —रामचरितमानस : बाल काण्ड, २०८/३

के कारण एक नेत्र से विहीन कर दिया[1]। कामुक शूर्पणखा को नाक-कान से हाथ धोना पड़ा[2]। मर्यादा भंग करने वाले बाली को प्राणदण्ड मिला[3]। कुनीति पर चलने, मर्यादा भंग करने से, रावण परिजनों समेत मृत्युदण्ड को प्राप्त हुआ।

राम के राज्य में कोई अधर्म नहीं करता था। अतः दण्ड की आवश्यकता नहीं रह गई थी। दण्ड शब्द केवल सन्यासियों के हाथ में सुना जाता था। अर्थात् अपने आश्रम की मर्यादा के पालन के लिये सन्यासी हाथ में दण्ड धारण करते थे[4]। जनता में कोई ऐसा अपराधी नहीं था, जिसे दण्ड का पात्र समझा जाता।

न्याय

राज्य का सबसे पहला कर्त्तव्य जनता के अधिकारों की रक्षा और कर्त्तव्यों के पालन के लिए सुविधा प्रदान करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए राज्य में न्याय की व्यवस्था की जाती है, जिसके द्वारा उन लोगों को दण्डित किया जाता है, जो स्वधर्मपालन के कार्य में विघ्न-बाधाएं उपस्थित कर, दूसरों के अधिकार क्षेत्र पर आक्रमण करके, मानव-मानव के बीच कलह उत्पन्न करते हैं। तुलसी ने राम का चित्रण एक न्यायप्रिय राजा के रूप में किया है। दुष्टों का दलन करके वे धर्मराज्य की स्थापना करते हैं, जिसमें कोई भी पापी और अपराधी नहीं है। उनका अवतार ही धर्म की रक्षा और अधर्म के पिनाश के लिए हुआ है। अधम, अभिमानी और अन्यायपूर्ण व्यवहार करने वाले दुष्टों का संहार, उनके राज्यशासन का एक प्रमुख अंग है। प्रथम तो कोई अनुचित आचरण करने का साहस हीं नहीं करता, और यदि कहीं हेतुवश कोई ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, तो श्रीराम न्याय के आधार पर निर्णय करते हैं। राजा राम ने श्वान और यती के, उल्लू और बक के झगड़े का न्याय किया था। राम पूर्णरूप से एक न्यायशील शासक थे जो धर्म की रक्षा के लिए अन्याय करने वालों को दण्डित करने के लिए सदैव तत्पर

---

1. सुनि कृपाल अति आरत बानी।
   एक नयन करि तजा भवानी॥ —रामचरितमानस : अरण्य काण्ड, १/७
   लछिमन अति लाघव सों नाक कान बिनु कीन्ह। —वही, १७
2. मारा बालिहिं राम तब हृदय मांझ सर तानि। —वही, किष्किन्धा काण्ड, ८
3. दण्ड जतिन्ह कर भेद जहां। —वही, उत्तर काण्ड, २०

रहते थे[1] ।

शासन व्यवस्था

तुलसीदास ने रामराज्य को आदर्श राज्य कहा है जिसमें शासन की व्यवस्था, सभासदों की सहायता और सम्मति से की जाती है । राजा निरंकुश नहीं होता । दशरथ और राम से सम्बन्धित शासन सम्बन्धी प्रसंगों में कवि ने सभा, राजसभा, समाज, पंच आदि शब्दों का प्रयोग किया है, जिसमें ब्राह्मण, महाजन तथा प्रजा के प्रतिनिधि समय समय पर एकत्रित होकर विचार के लिए प्रस्तुत समस्याओं पर अपनी सम्मति-विमति एवं निर्णय देते हैं ।

राम के अभिषेक सम्बन्धी विषय पर वशिष्ठ के आदेश से ही दशरथ सभा का आयोजन करते हैं[2] । वशिष्ठ इसके लिए शीघ्र ही समाज जुटाने का परामर्श देते हैं[3] । तत्पश्चात् दशरथ अपने मन्त्रियों से पूछते हैं कि यदि पंचों को उचित प्रतीत हो तो राम को युवराज बना दिया जाए[4] ।

राजा दशरथ के दिवंगत होने के उपरान्त, जब राज्य के उत्तराधिकारी का प्रश्न उपस्थित हुआ तब भी मंत्रीगण तथा महाजन आदि को बुलाया गया था[5] । सब की सहमति से जब वशिष्ठ जी ने भरत को राम के आने तक राज्य का पालन करने की आज्ञा दी, तो उसमें प्रजा और सचिवगण की भी सहमति थी[6] । इसी प्रकार जब भरत समाजसहित चित्रकूट में राम के पास

---

1. (क) सावधान सुजान सब दिन रहत नय लवलीन ।
   स्वान खग जति न्याउ देख्यो आपु बैठि प्रवीन ।।
   —गीतावली : उत्तर काण्ड, २४

   (ख) बग उलूक झगरत गए अवध जहां रघुराउ ।
   नीक सगुन बिबरिहिं झगर होइहि धरम निआउ ।।
   जती स्वान संवाद सुनि सगुन कहब जिय जानि ।
   हंस वंस अवतंस पुर बिलग होत पय पानि ।। —रामाज्ञाप्रश्न : ६

   (ग) साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो ।
   —कवितावली : उत्तर काण्ड, १००

   (घ) जेंहि कौतुक बक स्वान को प्रभु न्याव निवेरो । —विनयपत्रिका : १४६

2. नाथ रामु करिअहिं जुबराजू । कहिअ कृपा करि करिअ समाजू ।।
   —रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, ३/१
3. वेगि बिलबु न करिय नृप, साजिय सकल समाजु । —वही, ४
4. जो पांचहि मत लागइ नीका । करहु हरषि हियं रामहि टीका । —वही, ४/२
5. सुदिनु सोधि मुनिवर तब आए । सचिव महाजन सकल बोलाए ।। —वही, १७०/१
6. मोहि उपदेसु दीन्ह गुरु नीका । प्रजा सचिव संमत सब ही का ।। —वही, १७६/१

जाते हैं तो वहां भी तीन बार सभा का आयोजन किया गया। भरत द्वारा राम से घर लौट चलने की विनति का समर्थन करते हुए वशिष्ठ ने परामर्श दिया था कि राम को साधुमत तथा लोकमत देखकर, राजनीति और शास्त्रों का सार समझ कर उचित निर्णय करना चाहिए[1]। पर्याप्त विचार-विमर्श के उपरान्त राम ने भरत को परामर्श दिया था कि—भारी कष्ट सह कर भी प्रजा और परिवार को सुखी रखना चाहिए[2]।

जब राम राजा बने तो वह भी विभिन्न विषयों पर परामर्श करने के लिए सभा में जाते थे। ब्राह्मणों तथा सज्जनों के साथ सभा में विराजमान होते थे[3]। उन्होंने अपनी प्रजा से सानुरोध कहा था कि यदि वे कुछ अनुचित होता हुआ देखें, तो विना किसी भय के उन्हें उस कार्य से रोक दें[4]।

रावण भी शासन सम्बन्धी समस्याओं के उत्पन्न होने पर सभा का आयोजन करता दिखाई देता है। जब शूर्पणखा ने रावण से अपनी दुर्दशा करने वाले की शिकायत करते समय क्रन्दन किया तो सभासद घबरा उठे। अशोक वाटिका उजाड़ने पर हनुमान को भी बांध कर रावण की सभा में ले जाया जाता है। यह बात अलग है कि रावण की सभा में सभी सभासदों पर भय का आंतक था। जहां तक कि सब देवता और दिक्पाल हाथ जोड़ खड़े हैं तथा रावण की टेढ़ी भृकुटि देख कर ड़र जाते हैं[5]। इस आंतक का यही फल निकलता है कि रावण को खुशामदी सभासदों की सलाह उचित लगती है। दरवार में ऐसे ही लोगों की बहुसंख्या है और अन्त में यहीं बात उसके पतन का कारण बनती है।

स्पष्ट है कि उस काल में सभा के सदस्य राज्य के प्रमुख व्यक्ति होते थे जो राजा को शासन से सम्बन्धित समस्याओं पर परामर्श देते थे। राजा उनकी सम्मति को महत्व देता था। तुलसी ने सात्विक राजा के प्रतीक राम और तामस राजा के प्रतीक रावण के आख्यानों द्वारा अच्छी और बुरी शासन-व्यवस्था का चित्रण किया है।

---

1. करव साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि।
—रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, २५८
2. सो बिचारि सहि संकट भारी। करहु प्रजा परिवारु सुखारी॥ —वही, ३५/३
3. प्रातकाल सरऊ करि मज्जन। बैठहिं सभा संग द्विज सज्जन॥
—वही, उत्तर काण्ड, २५/१
4. जौ कछु अनुचित भाषौं भाई। तौं मोहि वरजहु भय बिसराई॥ —वही, ४२/३
5. कर जोरे सुर दिसिप विनीता। भृकुटि विलोकत सकल सभीता॥
—वही, सुन्दर काण्ड, १९/४

राजा और प्रजा का सम्बन्ध कैसा हो, इस विषय में तुलसी ने उसी राजा को श्रेष्ठ कहा है, जो पिता की तरह प्रजा का पालन करे। प्रजा का दुख, उसका अपना दुख हो और प्रजा का सुख उसका अपना सुख। राजा दशरथ और राम दोनों का ऐसा ही शासन था। दोनों के शासन में शासक और शासित धर्म से बंधे हुए थे। दोनों कर्त्तव्यशील थे। यही कारण था कि राम के शासन में अपने अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए प्रत्येक व्यक्ति सुखी और सन्तुष्ट था[1]।

समाज

एक आदर्शवादी कलाकार होने के नाते, तुलसी का मुख्य उद्देश्य अपने समकालीन हिन्दूसमाज में व्याप्त दोषों को दूर करके, जनता के सामने एक आदर्शसमाज का रूप प्रस्तुत करना था। उस युग के समाज की शोचनीय दशा से वे भली भान्ति परिचित थे। विदेशी शासन के अत्याचारों से त्रस्त जनता किंकर्त्तव्य विमूढ़ थी। इसीलिए अपने समकालीन समाज में फैली हुई विषमताओं और विसंगतियों का पर्दा फाश करके, नये सामाजिक आदर्शों की स्थापना उनके लिये एक अनिवार्यता हो गई थी।

तुलसी के युग में हिन्दू जनता वर्णाश्रम व्यवस्था को भूलकर धार्मिक तथा नैतिक दृष्टि से भी पतन की ओर अग्रसर हो रही थी[2]। गरीबी, बेकारी, आदि की चक्की में पिसती हुई जनता, केवल उदरपूर्ति में ही संलग्न थी[3]। समाज के सभी अंग पापपूर्ण आचरण के कारण आधि और व्याधियों से

---

1. बरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
   लचहिं सदा पावहिं नहि भय सोक न रोग॥
   —रामचरितमानस : उत्तर काण्ड, ४२
2. (क) बरन धरम नहिं आस्रम चारी।
   स्रुति बिरोध रत सब नर-नारी॥ —वही, उतर काण्ड, ९७/१
   (ख) बरन धरम गयो आश्रमु निवास तज्यो।
   त्रासन चकित सो परावनो परो सो है॥ —कवितावली : ७/८४
   (ग) आश्रम-बरन-धरम-बिरहित जग,
   लोक बेद मरजाद गई है। —विनयपत्रिका : १३९
3. (क) खेती न किसान को भिखारी को भीख बलि,
   बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी। —कवितावली : ७/९७
   (ख) ऊंचे नीचे करम, धरम-अधरम करि,
   पेट ही को पचत, बेचत बेटा बेटकी। —वही, ७/९६

पीड़ित थे[1]। किसी निश्चित सामाजिक व्यवस्था के अभाव में, शासक-शासित पिता-पुत्र, माता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी आदि के पवित्र सम्बन्ध भी स्वार्थ-भावना से दूषित हो गए थे।

हिन्दूसमाज की इस शोचनीय स्थिति को देखकर गोस्वामी जी ने उसका पुनरुद्धार करने का निश्चय किया। उन्होंने आदर्श सामाजिक व्यवस्था के रूप में रामराज्य का उदाहरण प्रस्तुत किया। समाज में सब को न्याय मिले, कोई बड़ा और छोटा न हो, सब स्वतन्त्रतापूर्वक अपने अपने कर्त्तव्य का पालन करें, परस्पर भाई-चारे की भावना हो, कोई रोगी और गरीब न हो तथा सभी श्रम की महत्ता को पहचानें, जिससे समाज का प्रत्येक जन सुखी और सन्तुष्ट हो सके।

उपर्युक्त सामाजिक उद्देश्यों को क्रियान्वित करने के लिए तुलसी ने रामराज्य को आदर्श रूप में प्रस्तुत करके "सर्वे भवन्तु सुखिनः" का स्वप्न देखा। रामराज्य में कोई सामाजिक विषमता न थी। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में प्रत्येक व्यक्ति को विकास का समान अधिकार था[2]। सबको अपने अपने धर्म एवं कर्त्तव्यपालन की स्वतन्त्रता थी। सभी लोग वेद एवं नीतिशास्त्रसम्मत मार्ग का अवलंबन करते थे[3]। कोई किसी का बैरी न था[4], सब परस्पर प्रेमपूर्वक रहते थे। पारस्परिक शत्रुता, घृणा और ईर्ष्याद्वेष का अभाव था[5]। राज्य की तरफ से जनता के स्वास्थ्य का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। रोगों की रोकथाम के लिए आवश्यक उपाय किए जाते थे। इसके फलस्वरूप न तो कहीं अकालमृत्यु होती थी और न ही कोई पीड़ा, क्लेश आदि से विपन्न होता था। सब के शरीर स्वस्थ और सुन्दर थे[6]। दैहिक, दैविक अथवा भौतिक तापों का अभाव था[7]। समाज अत्यन्त समृद्ध था। सबको

---

1. करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक वियोग।
—रामचरितमानस : उत्तर काण्ड, १००

2. राम प्रताप विषमता खोई। —वही, १९/४
3. चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति। —वही, २०/१
4. बयरु न कर काहु सन कोई। —वही, १९,४
5. सब नर करहिं परस्पर प्रीति। —वही, २०/९
6. अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा।
सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा॥ —वही,२०/३
7 दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुहि व्यापा॥ —वही, २०/१

सुख और सन्तोषपूर्वक जीवन बिताने के साधन उपलब्ध थे[1]। कोई व्यक्ति दीन, दरिद्र और दुःखी दिखाई नहीं देता था[2]।

शिक्षा और सदाचार की दृष्टि से भी समाज अत्यन्त उन्नत था। कोई व्यक्ति मूर्ख न था और न ही कोई शुभ लक्षणों से हीन दृष्टिगोचर होता था[3]। शिक्षा का सर्वत्र प्रचार था। पढ़-लिख कर सभी विद्वान एवं गुणवान् बनते थे तथा अनेक नये नये विषयों का ज्ञान करते थे[4]। अविद्यारूपी रात्रि का नाश हो गया था[5]। शिक्षा का प्रचार होने के कारण घर घर में पुराणों तथा शास्त्रों के सम्बन्ध में परिचर्चा होती थी[6]। सांस्कृतिक दृष्टि से भी रामराज्य का प्रभाव असाधारण था। घर घर में चित्र शालाएं थीं[7]। नृत्य, संगीत एवं वास्तुकला की उन्नति चरमसीमा पर थी। राजमहल, सड़कें, चौराहे तथा बाजार दर्शनीय थे[8]।

जनसामान्य सुरुचिसंपन्न था। कुरुचियों का अन्त हो गया था। अतः न्यायपूर्णशासन के लिए दण्ड-विधान ही एकमात्र प्रतिकार न था। इसी कारण 'दण्ड' केवल संन्यासियों के हाथ में दिखाई देता था और 'भेद' केवल सुरताल के भेद के लिए ही काम में आता था[9]।

छोटे-बड़े सभी श्रम के पक्षपाती थे। समाज में श्रम का सम विभाजन था। तुलसी के मतानुसार यह तभी संभव था जब समाज का निर्माण एक निश्चित व्यवस्था पर हो। इसीलिए रामराज्य में किसी को भय न था। सभी रोग और शोक से मुक्त थे[10]।

---

1. रामराज कर सुख संपदा।
   बरनि न सकइ फनीस सारदा ॥ —रामचरितमानस : उत्तर काण्ड, २१-३
2. नहिं दरिद्र कोऊ दुखी न दीना। —वही, २०/३
3. नहिं कोऊ अबुध न लच्छन हीना। —वही, २०/३
4. सब गुनग्य सब पंडित ग्यानी। —वही, २०/४
5. प्रथम अविद्या निसा नसानी। —वही, ३०/२
6. सब के गृह गृह होहिं पुराना। —वही, २५/४
7. चारु चित्र साला गृह गृह प्रति लिखे बनाई। —वही, २७
8. राज दुआर सकल विधि चारु।
   बीथी चौहट रुचिर बजारु ॥ —वही, २७/४
9. दण्ड जतिन्ह कर भेद जहं, नर्तक नृत्य समाज। —वही, २०२
10. बरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
    चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग ॥ —वही, २०

वर्णाश्रम व्यवस्था के समान ही तुलसी ने परिवार को भी समाज की सुख-शान्ति का केन्द्र स्वीकार किया है। परस्पर प्रेम, सम्मान और शिष्टाचार से ही पारिवारिक सम्बन्ध दृढ़ होते हैं। तुलसी ने राम के आदर्श परिवार की कल्पना के माध्यम से पारिवारिक जीवन के अनेक रूपों की व्याख्या की है :—

वात्सल्य

माता-पिता, सास-ससुर का बच्चों के प्रति प्रेम वात्सल्य कहलाता है। राजा दशरथ, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, सब पुत्रों की बाल-क्रीड़ा से आनंदित होते हैं। दशरथ धूल से लिपटे बच्चों को गोद में बिठा कर सुख की अनुभूति करते हैं[1]। माता-पिता का वात्सल्य भाव तब चरमोत्कर्ष का स्पर्श करता है, जब चारों भाई विवाहोपरान्त अयोध्या लौटते हैं।

सभी रानियां अपनी पुत्र-बधुओं से अत्यन्त स्नेहपूर्ण व्यवहार करती हैं। कौशल्या सीता को अपनी आंखों की पुतली और प्राणों का आधार मानती है[2]। दशरथ पुत्रों को गोद में बिठाते हैं और उसके वाद पुत्र-बधुओं को भी प्रेम-सहित गोद में बिठा कर, दुलार करते हुए, रानियों को समझाते हैं कि बहुएं वच्ची हैं[3], नये घर आई हैं, उनका विशेष ध्यान रखा जाए[4]।

दशरथ का राम के प्रति इतना अगाध स्नेह है कि वे उनके वन जाने के वाद प्राण-त्याग कर देते हैं[5]। एक दूसरे प्रसंग में भी कवि ने शुक-सारिका के वार्तालाप के माध्यम से स्पष्ट किया है कि दशरथ के समान राम से स्नेह करने वाला कोई दूसरा न था[6]।

मातृ-पितृ-भक्ति

राम आदि चारों भाई तथा उनकी बधुएं, माता-पिता के प्रति पूर्ण भक्ति-

---

1. धूसरि धूरि भरे तनु आए।
   भूपति विहंसि गोद बैठाए॥ —रामचरितमानस : बाल काण्ड, २०२/५
2. मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई।
   रूप रासि गुन सील सुहाई॥ —वही, अयोध्या काण्ड, ५८/१
3. बधू सप्रेम गोद बैठारी।
   बार-बार हियं हरषि दुलारी॥ —वही, बाल काण्ड, ३५२/२
4. बधू लरिकनी पर घर आई।
   राखेहु नयन पलक की नाईं॥ —वही, ३५४/४
5. बदउ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।
   बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ॥ —वही, १६
6. गीतावली : २/६६

भाव से समन्वित हैं। राम, पिता के बचनों का सहर्ष पालन करते हुए राज्य की अभिलाषा त्याग कर वनगमन के लिए तैयार हो जाते हैं। उनके लिये पितृऋण से उऋण होना कदापि संभव नहीं[1]। सीता को भी वनगमन के अवसर पर इस बात का पश्चाताप होता है कि वह सास-ससुर की सेवा से वंचित हो गई है[2]।

भ्रातृ-स्नेह

पारिवारिक चित्रण में तुलसी ने भातृ-स्नेह को भी पर्याप्त महत्व प्रदान किया है। यद्यपि लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न राम के सहोदर नहीं हैं, परन्तु राम उनके प्रति पूर्ण स्नेहभाव रखते हैं। यौवराज्य पद का निर्णय होने तक उनका मन अनेक प्रकार की शंकाओं से भर उठता है। वे सोचते हैं कि सब भाई एक साथ ही जन्मे, खेले-कूदे, कर्णभेद, यज्ञोपवीत आदि संस्कार भी साथ-साथ ही हुए, पर अब सब भाईयों को छोड़ कर उनका ही राज्याभिषेक किया जा रहा है[3]। भ्रातृस्नेह के कारण ही लक्ष्मण, नवविवाहिता उर्मिला को घर में छोड़ कर, राम के साथ बन में गए। धनुषयज्ञ में जनक को ललकारा और लंका के युद्ध में अपने प्राणों की बाजी लगा दी। राम वनवास में थे, अतः भरत भी घर में रहते हुए बनवासी जैसा आचरण करते रहे। भरत का अपने प्रति स्नेह देख कर राम ने कहा था कि भरत जैसा भाई न हुआ है और न होगा[4]।

लक्ष्मण को मेघनाद द्वारा शक्ति लगने पर, राम का भ्रातृ-स्नेह उमड़

---

1. निज कर खाल खेंच या तनु से जौ पितु पग पानही करावों।
   होऊं न उरिन पिता दशरथ से कैसे बाके बचन मेटि पति पावों॥
   —गीतावली : २/७२

2. तब जानकी सासु पद लागी।
   सुनिय माय में परम अभागी॥
   सेवा समयं दैव बन दीन्हा।
   मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥ —रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, ६८/२

3. जनमे एक संग सब भाई।
   भोजन सयन केलि लरिकाई॥
   करन बेध उपवीत वियाहा।
   संग संग सब भयउ उछाहा॥
   विमल बंस यह अनुचित एकू।
   बंधु विहाइ बड़े हि अभिषेकू॥ —वही, ९/३-४

4. भये, न हैं, न होहिंगे, कबहु भुवन भरत से भाई। —गीतावली : ७१

उठा। भाई के प्राणों की समता में उन्हें पुत्र, धन, स्त्री, घर और परिवार तुच्छ प्रतीत हुआ[1]। राम के अयोध्या लौटने पर चारों भाईयों का अनुराग-पूर्ण मिलन देखने योग्य था[2]।

दाम्पत्य

राम और सीता के चरित्र के आधार पर ही तुलसी के दाम्पत्य जीवन का आदर्श निहित है। दोनों का प्रथम साक्षात्कार जनक-वाटिका में होता है। दोनों प्रथम दर्शन में ही एक दूसरे पर न्योछावर हो जाते हैं। राम, वनवास के लिए उद्यत हुए तो उन्होंने सीता को घर में रह कर, जब सास-ससुर की सेवा करने का परामर्श दिया, तो सीता जैसी पति-परायणा के लिये यह प्रस्ताव अत्यन्त दुःखद था, क्योंकि पति ही उसका जीवनाधार था[3]। वनवास के दिनों में सीता ने अपने व्यवहार से इस तथ्य को प्रमाणित भी कर दिया था[4]। वन-प्रदेश में कण्टकपूर्ण मार्ग पर चलते-चलते जब सीता के ओठ सूखने लगते हैं, मुख पर पसीने की बूदें चमकने लगती हैं, तो राम की आंखों में अविरल अश्रु-धारा प्रवाहित होने लगती है[5]। सीता और राम के दाम्पत्य प्रेम की मनोरम झांकी ग्राम-वनिताओं के प्रश्नोत्तर प्रसंग में मिलती है, जब वे सीता जी से राम का परिचय पूछती हैं। सीता इस प्रश्न से सकुचा जाती है। वह तिरछे नैनों

---

1. सुत वित नारि भुवन परिवारा।
   होंहि जाहिं जग बारहिं बारा॥
   अस विचारि जिय जागहु ताता।
   मिलई न जगत सहोदर भ्राता॥ —रामचरितमानस : लंका काण्ड, ६०/३-४
2. पुनि प्रभु हरषित शत्रुघन भेंटे हृदय लगाई।
   लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाई॥ —वही, उत्तर काण्ड, ५
3. जिय बिनु देह नदी बिनु बारी।
   तैसिअ नाय पुरुष बिनु नारी॥
   नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें।
   सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥ —वही, अयोध्या काण्ड, ६४/४
4. राम संग सिय रहति सुखारी। —वही,
5. फिर पूछति है चलनो अब केतिक,
   प्रिय पर्ण कुटी करिहौं कित ह्वै।
   तिय की लखि आतुरता प्रिय की,
   अंखियां अति चारू चली जल च्वै। —कवितावली : २/२१

से इशारा करके उन्हें समझा कर मुस्कराती हुई आगे बढ़ जाती है[1]। सीता कुलवधू है। वह मर्यादापूर्ण ढंग से अपनी बात कह देती है। उश्रृंखल प्रेम-प्रलाप उसे अभीष्ट नहीं।

तुलसी ने दाम्पत्य-प्रेम के चित्रण में मर्यादा का अपूर्व पालन किया है। सीता और राम दोनों, कौशल्या तथा इतर माताओं के सामने परस्पर बात करने में सकुचाते हैं। "राम परिवार का प्रत्येक सदस्य समाज के सामने कोई न कोई आदर्श उपस्थित करता है। दशरथ सत्य-प्रियता और पुत्र-प्रेम का, राम पितृ-भक्ति का, लक्ष्मण अपूर्व सहनशक्ति का, कौशल्या प्रेममयी माता का और सीता पतिपरायणा पत्नी का आदर्श है। पिता-पुत्र का, भाई-भाई का, पति-पत्नी का, जो मधुर और आदर्श सम्बन्ध इस परिवार में देखने को मिलता है, उसमें उत्कर्ष और त्याग का सौन्दर्य खिल उठा है[2]"।

"लोक-मर्यादा का उल्लंघन, समाज की व्यवस्था का तिरस्कार, अनधिकार चर्चा, भक्ति और साधुता का मिथ्या दंभ, मूर्खता छिपाने के लिए वेद-शास्त्र की निन्दा ये सब बातें ऐसी थीं, जिनसे गोस्वामी जी की अन्तरात्मा बहुत व्यथित हुई[3]।"

इस सामाजिक अव्यवस्था का मूल कारण उनके मत में विदेशी शासन था। इसीलिए उन्होंने रामराज्य के रूप में एक आदर्श राजनैतिक व्यवस्था प्रस्तुत की। अच्छी शासन व्यवस्था में ही श्रेष्ठ समाज की कल्पना की जा सकती है। जिस समाज में पारस्पारिक ईर्ष्या-द्वेष त्याग कर जनता प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण जीवन व्यतीत करती है, उसे ही आदर्श समाज कहा जाता है[4]।

नारी-भावना

तुलसी साहित्य में नारी सम्वन्धी अनेक प्रसंग मिलते हैं जिनमें कवि का नारी सम्बन्धी दर्शन अभिव्यक्त हुआ है। तुलसी भारतीय संस्कृति के पुजारी

---

1. (क) पूछति ग्रामवधू सिय सों, कहो सांवरे से सखि रावरे को हैं।

—कवितावली : २/२१

(ख) तिरछे करि नैन दे सैन तिन्हें, समुझाई बहु मुसकाई चलीं। वही, २/२२

(ग) रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, ११६/३-४

2. डा० विश्वदेव त्रिगुणायत, तुलसीमानस सन्दर्भ : पृ० ९९
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोकधर्म और मर्यादावादी तुलसी : पृ० १६७
4. राम राज राजत सकल धरम निरत नर नारि।

राग न रोष न दोष दुख, सुलभ पदारथ चारि॥

—रामाज्ञा प्रश्न : सप्तम ६, दोहा १

थे, जिसके विकास में गार्गी, लोपामुद्रा, मदालसा जैसी नारियों का योगदान रहा है। युग परिवर्तन के साथ भारतीय नारी की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन का क्रम चलता रहा। नारी मध्यकाल तक पहुंचकर केवल पुरुषों के आमोद-प्रमोद का साधनमात्र रह गई। पुरुष ने स्वार्थवश नारी को तिरस्कृत किया और उसे अपनी कृपा पर निर्भर कर दिया। फलतः पारिवारिक और सामाजिक दृष्टि से नारी का निरन्तर अवमूल्यन होता गया। तुलसी को नारी की यह शोचनीय स्थिति स्वीकार न थी। वे उसे अपने प्राचीन दिव्यरूप में ही देखना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने श्रीराम के पारिवारिक जीवन तथा कौशल्या आदि के चरित्रों को हमारे सामने रखा। उनके चरित्र-चित्रण द्वारा उन्होंने भारतीय नारी को प्रेरणा प्रदान करने का प्रयास किया।

कौशल्या एक आदर्श माता, आदर्श गृहिणी और आदर्श पत्नी है। तुलसी कौशल्या की प्रमुख विशेषताओं की चर्चा करते हुए कहते हैं कि वे कौशल्या रूपी पूर्व दिशा की बन्दना करते हैं, जिसकी कीर्ति समस्त संसार में फैल रही है। जिस कौशल्यारूपी पूर्व दिशा से विश्व को सुख देने वाले और दुष्टरूपी कमलों के लिए पाले के समान श्रीरामचन्द्र रूपी सुन्दर चन्द्रमा प्रकट हुए[1]। एक सास के रूप में सीता को आशीर्वाद देते समय कौशल्या कहती है—जब तक गंगा और यमुना में जल की धारा बहे, तब तक तुम्हारा सुहाग अचल रहेगा[2]। वे पिता की अपेक्षा माता की आज्ञा-पालन का आदेश देते समय राम से कहती हैं—यदि केवल पिता जी की ही आज्ञा हो तो माता को पिता से बड़ी जानकर वन को मत जाओ, किन्तु यदि माता-पिता दोनों ने वन जाने को कहा हो, तो वन तुम्हारे लिये सैकड़ों अयोध्याओं के समान है[3]।

सीता तो पतिव्रताओं की शिरोमणि हैं। वे वन में प्राप्त होने वाली सभी विपत्तियों को सहन करने को तैयार हैं। राम के विना उन्हें महल नरक के तुल्य

---

1. बंदऊं कौसल्या दिसि प्राची।
   कीरति जासु सकल जग माची॥
   प्रगटेउ जहं रघुपति ससि चारू।
   बिस्व सुखद खल कमल तुषारू॥ —रामचरितमानस : बाल काण्ड, १५/२-३
2. अचल होउ अहिवातु तुम्हारा।
   जब लगि गंग जमुन जल धारा॥ —वही, अयोध्या काण्ड, ६८/४
3. जौ केवल पितु आयसु ताता।
   तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
   जौ पितु मातु कहेउ बन जाना।
   तौ कानन सत अवध समाना॥ —वही, ५५/१

लगते हैं। उनके मत में जैसे बिना जीव के देह और बिना जल के नदी होती है, वैसे ही बिना पुरुष के स्त्री होती है[1]।

सुमित्रा के चरित्र से तुलसी ने भारतीय माताओं के सम्मुख एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया है, जिसका उदाहरण वह स्वयं ही हैं। बड़े भाई और भावज की सेवा करने का उपदेश देती हुई वह लक्ष्मण से कहती हैं—जानकी उसकी माता है और सब प्रकार से स्नेह करने वाले श्रीराम उसके पिता हैं। जहां श्रीराम का निवास हो, वहीं अयोध्या है। जहां सूर्य का प्रकाश हो वहां दिन है। यदि निश्चय ही सीता और राम वन को जाते हैं तो अयोध्या में उसका कुछ भी काम नहीं है[2]। राग, द्वेष, ईर्ष्या, मद और मोह--इनके वश में स्वप्न में भी न होना। सब प्रकार के विकारों का त्याग कर, मन, बचन और कर्म से सीता और राम की सेवा करना। ऐसा ही व्यवहार करना, जिससे श्रीराम वन में क्लेश न पाएं[3]।

कवि ने मन्दोदरी का चरित्र-चित्रण भी एक नीतिकुशल विदुषी के रूप में किया है। वह रावण को समय के अनुसार नीति का अनुसरण करने की प्रेरणा देती हुई श्रीराम के विराटरूप का वर्णन करती है। बालि की पत्नी तारा भी एक चतुर और व्यवहार कुशल नारी है। नारी-धर्म की महानता एवं गौरव का स्पष्टीकरण अनसूया के चरित्र द्वारा किया गया है, जिसमें अनसूया सीता को पातिव्रत-धर्म की विशेषताएं बताती हैं।

तुलसी ने अनेक आख्यानों के द्वारा नारी के विभिन्न रूपों का वर्णन किया है। कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, सीता, अहल्या, ताड़का, कद्रू, विनता आदि के चरित्रों से अपनी नारी-सम्बन्धी भावना स्पष्ट करने की चेष्टा की है। इनमें कद्रू-विनता के आख्यान में कवि ने सौत के सम्बन्धों की, रजक-सीता के आख्यान में पत्नी की स्वतंत्रता की तथा कैकेयी आख्यान में पुत्र के प्रति माता

---

1. जिय बिनु देह नदी बिनु बारी।
   तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥ —रामचरितमानस : अयोध्या काण्ड, ६४/४
2. तात तुम्हारी मातु वैदेही।
   पिता राम सब भांति स्नेही॥
   अवध तहं जहं राम निवासू।
   तहंइ दिवसु जहं भानु प्रकासू॥
   जौ पै सीय राम बन जाहीं।
   अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥ —वही, ७३/१-२
3. जेहि न रामु बन लहहिं कलेसू।
   सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥ —वही, ७४/४

के सम्बन्धों की व्यंजना है। सीता के आख्यान से पातिव्रत तथा अहल्या के आख्यान से चरित्र-स्खलन के दुष्परिणाम पर प्रकाश डाला गया है। सीता विपत्ति में राम का साथ देती है। महलों का सुख-वैभव छोड़कर वनवास में साथ रहती है। इससे तुलसी स्पष्ट करते हैं कि नारी, नर की संगिनी है। मानव की प्रेरणा-स्रोत है। नर की मित्र व संकट की साथी है। राम, सीता के सहयोग और प्रेरणा से ही अनेक आपत्तियों का सामना और उनकी समाप्ति करने में समर्थ होते हैं। दूसरी ओर अपमानित नारी, नर के विनाश का कारण बनती है। रावण ने सीता को अपमानित करके अपने नाश को ही आमंत्रित किया था। इसी प्रकार अन्य आख्यानों में भी तुलसी ने नारी के उसी रूप की झांकी प्रस्तुत की है, जो लोकमंगल की दृष्टि से श्रेयस्कर है। कुछ लोग—

ढ़ोल गंवार शूद्र पसु नारी।
सकल ताड़ना के अधिकारी ॥[1]

इस चौपाई को लेकर तुलसी को स्त्रीनिन्दक के रूप में स्थापित करने की चेष्टा करते हुए कहते हैं कि तुलसी नारी-विरोधी थे। इसी प्रकार अनेक अन्य प्रसंगों में तुलसी ने कहा है—नारी स्वभाव से ही जड़ और अज्ञ[2] है, उसका चरित्र सागर की तरह अथाह है[3]। उसकी गति जानी नहीं जा सकती[4]। वह कपटों और अवगुणों की खान है[5]। उसके स्वभाव में सदैव आठ अवगुण रहते हैं[6]। वे आठ अवगुण हैं—साहस, असत्य, चंचलता, माया, भय, अविचारिता अपवित्रता और निर्दयता[7]।

इसी प्रकार की और भी कुछ उक्तियां हैं, किन्तु प्रसंग की दृष्टि से इनका मूलस्वर ऐकान्तिक नारी निन्दापरक नहीं कहा जा सकता। तुलसी की नारी विषयक भावना को स्पष्ट करने के लिए इन उक्तियों के विषय में कहा जा

---

1. रामचरितमानस : सुन्दर काण्ड, ५८/३
2. ढोल गंवार शूद्र पशु नारी।
   सकल ताड़ना के अधिकारी॥ —वही, सुन्दर काण्ड, ५८/३
   —वही, बाल काण्ड, ५७
3. नारि सहज जड़ अग्य। —वही, अयोध्या काण्ड,
4. नारि चरित्र जल-निधि अवगाहू। —वही, ४६/४
5. जानि न जाइ नारि गति भाई। —वही,
6. सकल कपट अघ अवगुण खानी।
7. नारि सुभाव सत्य कवि कहहीं।
   अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
   साहस अनृत चपलता माया।
   भय अविवेक असौच अदाया॥ —वही, लंका काण्ड, १५/१-२

सकता है कि तुलसी ने जो ढ़ोल, गंवार, शूद्र, पशु और नारी को ताड़न का पात्र माना है, उसमें 'ताड़न' शब्द का अर्थ 'नियंत्रण' है। नीति-शास्त्र में कहा गया है कि पांच वर्ष की अवस्था तक पुत्र का लालन करे, फिर उसे अगले दश वर्ष तक नियंत्रण में रखे। जब वह सोलह वर्ष का हो जाए तो पुत्र के साथ मित्र की तरह आचरण करे, क्योंकि लालन में अनेक दोष हैं और ताड़न में अनेक गुण[1]।

यदि ताड़न शब्द का यहां यह अर्थ लिया जाए कि दस वर्ष तक बच्चे को पीटता रहे, तो यह अर्थ कदापि तर्क संगत नहीं माना जाएगा। इसका यही अर्थ होगा कि ढ़ोल, गंवार, शूद्र, पशु और नारी को देख-रेख में रखना चाहिए।

इसके अतिरिक्त यह चौपाई समुद्र की अपनी उक्ति है। निरन्तर तीन दिवस पर्यन्त अनुनय-विनय करने के उपरान्त भी जब समुद्र ने कोई ध्यान नहीं दिया तो श्रीराम ने समुद्र-शोषण का निर्णय लिया। अपना नाश समीप जानकर, समुद्र एक विप्र के वेष में श्रीराम के समक्ष उपस्थित हो क्षमा मांगने लगा तथा उसने आत्मग्लानि के स्वर में कहा कि प्रभु ने अच्छा किया जो उसे शिक्षा दी किन्तु मर्यादा (जीवों का स्वभाव) भी उनकी ही बनाई हुई है। ढ़ोल, गंवार, शूद्र, पशु और नारी - ये सब ताड़न के पात्र है[2]। यहां आत्मग्लानि के कारण समुद्र ने अपने लिए कठोर शब्दों का प्रयोग किया है। इन शब्दों के प्रयोग द्वारा तुलसी यही कहना चाहते हैं कि ढ़ोल, गंवार आदि को अपने हित के लिए ताड़ित होने में भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

चौपाई का प्रथम शब्द ढ़ोल जड़ तथा शेष सभी शब्द चेतन सत्ता के प्रतीक हैं। यदि ढ़ोल शब्द को विशेषण मान लिया जाए तो अर्थ होगा—ढ़ोल, जड़ गंवार, जड़ पशु, जड़ शूद्र तथा जड़ नारी ताड़ना के पात्र होते हैं अर्थात् जड़त्व के कारण, वे दण्ड के पात्र माने जा सकते हैं। श्रीराम निरंतर तीन दिन तक समुद्र से प्रार्थना करते रहे, परन्तु समुद्र ने अपने अज्ञान एवं जड़त्व का परिचय

---

1. (क) लालयेत् पंच वर्षाणि दशवर्षाणि ताड़येत्।
   प्राप्ते तु षोड़शे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्॥
   —सुभाषित भाण्डागारम् : सामान्यनीति, श्लोक ३०८
   (ख) लालने बहवो दोषास्ताड़ने बहवो गुणाः। —वही, श्लोक ३४३
2. प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही।
   मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही॥
   ढोल गंवार शूद्र पशु नारी।
   सकल ताड़ना के अधिकारी॥ —रामचरितमानस : सुन्दर काण्ड, ५८/३

दिया और भगवान की प्रार्थना की उपेक्षा की। तीन दिन बीत गये, जड़ समुद्र ने राम की विनय स्वीकार नहीं की[1]। इस पर जब राम ने क्रोध किया तो समुद्र विप्रवेष में उपस्थित होकर क्षमा मांगने लगा। इससे स्पष्ट है कि गंवार भी तभी ताड़न योग्य होता है, जब उसमें जड़त्व आ जाता है।

अन्य अनेक प्रसंगों में तुलसी ने गंवार, शूद्र, पशु, नारी आदि का उचित चित्रण किया है। राम के वनमार्ग प्रसंग में ग्रामीण जनता का मनोहारी चित्रण हुआ है[2]। शूद्र निषाद को भरत गले लगाते हैं[3]। मानस के पशु पात्रों—हनुमान, अंगद, जामबन्त, सुग्रीव आदि से राम अत्यन्त अनुराग रखते हैं[4]। यहां तक नारी जाति का सम्बन्ध है, तुलसी ने शतरुपा, कौशल्या, सुमित्रा, सीता, अनुसूया, तारा आदि के चित्रण द्वारा अनेक आदर्श उपस्थित किए हैं। शतरूपा तपस्विनी, पति का अनुसरण करने वाली एवं विवेकशील है, कौशल्या कर्त्तव्य, धैर्य और प्रेम की प्रतिमा है, सुमित्रा धीरता की मूर्ति है। सीता, अनुसूया आदर्श पतिव्रताएं हैं, तारा, मन्दोदरी पति का हित चाहने वाली नारियां हैं। शबरी गंवार और शूद्र—दोनों थी, परन्तु राम उसके प्रेम में आकण्ठ निमग्न हो गए थे। शूर्पणखा को तब तक ताड़ना नहीं दी, जब तक उसमें जड़त्व नहीं आ गया था। नारी सम्बन्धी अन्य आक्षेपपूर्ण उक्तियां भी उन्हीं नारियों पर लागू होती हैं जो विलासी, कर्त्तव्यहीन एवं कुमार्गगामी हैं। इस सम्बन्ध में डा० रामकुमार वर्मा का मत है—

"यदि मानस पर निष्पक्ष दृष्टि डाली जाए तो विदित होगा कि नारी के प्रति भर्त्सना के ऐसे प्रमाण उसी समय उपस्थित किए गए हैं, जब कि नारी ने धर्म-विरोधी आचरण किए है[5]।"

---

1. विनय न मानत जलधि जड़, गये तीन दिन बीति।

   —रामचरितमानस : सुन्दर काण्ड, ५७

2. कृपा सिन्धु फेरहिं तिन्हहि, कही विनीत मृदु वैन। —वही, अयोध्या काण्ड, ११२
3. (क) करत दण्डवत देखि तेहि भरत लीन उर लाई।
   मनहुं लषन सन भेंट भई, प्रेम न हृदय समाई॥ —वही, १९३

   (ख) तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता।
   मिलत पुलक परिपूरित गाता॥ —वही, १९३/४
4. अनुज राज सम्पत्ति वैदेही।
   देह गेह परिवार सनेही॥
   सब मम प्रिय नहिं तुम्हहिं समाना।
   मृषा न कहहु मोर यह बाना॥ —वही, उत्तर काण्ड, १५/३-४
5. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

सती, कैकेयी और शूर्पणखा के प्रसंग ऊपर कहे गए कथन के प्रमाणों के रूप में उपस्थित किए जा सकते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि तुलसी की नारी-भावना बड़ी उदात्त थी। यदि ऐसा न होता तो वे राक्षस नारियों को धर्म-परायण, नीतिनिपुण, विदुषी और भक्तिपरायण चित्रित न करते। मंदोदरी, नीतिनिपुण विदुषी है। मेघनाद की पत्नी सुलोचना धर्मप्राण पतिव्रता है।

इस सम्बन्ध में यह भी ध्यातव्य है कि गोस्वामी जी को पुराण, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि के विविध कथनों के प्रति इतनी अन्ध श्रद्धा थी कि वे उनको जनभाषा के माध्यम से सामान्य जनता तक पहुंचाना चाहते थे, जिससे संस्कृत से अनभिज्ञ व्यक्ति भी अप्रत्यक्ष रूप से इस गरिमाशाली प्राचीन भारतीय साहित्य से जुड़ सकें। इस भावना से प्रेरित होकर उनमें संस्कृत के सुभाषित साहित्य के भाषान्तरण की प्रवृत्ति जागरुक हुई। अपने कविकर्म में उनको जहां भी अवसर मिला, उन्होंने अनेक सुभाषितों को दोहों और चौपाईयों के रूप में प्रस्तुत किया। तुलसी साहित्य में ऐसे दोहों तथा चौपाईयों का विपुल भण्डार है, जो संस्कृत के सुभाषित श्लोकों की अक्षरशः प्रतिच्छाया हैं। उदाहरण के रूप में—

१ जब जब होई धरम कै हानि[1]।
२ जिमि जिमि भाजत सक्रसुत व्याकुल अति दुख दीन[2]।
३ बरू भल वास नरक कर ताता[3]।
४ जिमि पाखण्ड विवाद ते लुप्त होहिं सद्ग्रन्थ[4]।
५ दमिनि दमक रही घनमांही। खल कै प्रीति यथा थिर नाहीं ॥[5]
६ हरित भूमि तृण संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ[6]।
७ सरदातप निसि ससि अपहरई[7]।
८ सरिता सर निर्मल जल सोहा। संतहृदय जस गत मद मोहा ॥[8]

---

1. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। —श्रीमद्भागवत् गीता : ४/७
2. यत्र यत्र ययौ काकः शरणार्थी स वायसः। —पद्मपुराण : उत्तर खण्ड, २६९/९९
3. वरं हि नरके वासो। —गरुडपुराण : पूर्व खण्ड, आचार काण्ड, १०९/३
4. यथा पापेन पाखण्डा नहि वेदा कलौ युगे। —भागवत् पुराण : १०/२०/८
5. न बबन्धाम्बरे स्थैर्यं विद्युदत्यन्त चञ्चला।
मैत्रीव प्रवरे पुंसि दुर्जनेन प्रयोजिता ॥ —विष्णु पुराण : ५/६/४२
6. मार्गाबभूवुरस्पष्टा स्तृणशष्पचयावृताः। —वही, ५/६/४३
7. सूर्यांशु जनितंतापं निन्ये तारापतिः शमम्। —वही, ५/१०/१३
8. सर्वत्राति प्रसन्नानि सलिलानि तथाभवन्।
ज्ञाते सर्वगते विष्णौ मनांसीव सुमेधसाम् ॥ —वही, ५/१०/११

९ जल संकोच विकल भई मीना ।[1]

आदि को लिया जा सकता है। अपनी इसी धुन में बिना यह सोचे कि उनकी इस नीति की भविष्य में क्या प्रतिक्रिया होगी, उन्होंने गंवार, शूद्र, पशु, नारी आदि से सम्बन्धित संस्कृत के एक सुभाषित श्लोक का शब्दशः अनुवाद करके प्रसंगानुसार उसका नियोजन कर दिया[2]। उनको क्या पता था कि कभी ऐसा युग भी आएगा कि भारत के प्रधानमन्त्री पद पर भी एक नारी ही प्रतिष्ठित होगी और शूद्र भी देश के महानतम नेताओं के रूप में स्वीकार किए जाएंगे।

वस्तुतः गोस्वामी जी का उद्देश्य नारी-निन्दा नहीं था, प्रत्युत उनके अवचेतन में संस्कृत-सुभाषितों के प्रति उनकी अन्धानुकारिता प्रायः जोर मारती रहती थी। इसीलिए वे उनके अनुवाद में अधिकाधिक रुचि ले रहे थे। यह प्रवृत्ति उन पर इतनी अधिक छा गई थी कि वह नारी-निन्दा विषयक सूक्ति, जो उनकी निजी विचारधारा की भी परिपन्थी थी, के अनुवाद के लोभ का मोह संवरण नहीं कर सके।

---

1 अवापुस्तापमत्यर्थं शफर्यः पल्लवोदके। —विष्णु पुराण : ३/१०/२

2. (क) गर्दभः पटहो दासी ग्रामण्यः पशवः स्त्रियः।
दण्डेणाक्रम्य भुन्जीयात् नस्ते सम्मान भाजनम् ॥
—सुभाषित भाण्डागारम्: सामान्यनीतिः, श्लोक ५६४

(ख) दुर्जनाः शिल्पिनो दासा दुष्टाश्च पटहः स्त्रियः।
ताड़िता मार्दवं यान्ति न ते सत्कार भाजनम् ॥
—गरूड़ पुराण : पूर्वखण्ड, आचार काण्ड, १०९/३१

षष्ठ अध्याय

पौराणिक आख्यानों के विनियोग की दृष्टि से तुलसी साहित्य का मूल्यांकन

षष्ठ अध्याय

पौराणिक आख्यानों के विनियोग की दृष्टि से तुलसी साहित्य का मूल्यांकन

तुलसी अपनी भक्ति-भावना में पुराण साहित्य से प्रभावित थे। इसका मूल हेतु यही था कि तुलसी और पुराण साहित्य के मन्तव्य में कोई विशेष अन्तर न था। पुराण साहित्य में मनोरंजक आख्यानों के माध्यम से मानव को उच्च जीवन बिताने की शिक्षा दी गई है। भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति, सदाचार सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन से सम्बन्धित अनेक विषयों को आख्यानों के द्वारा इस ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि समाज का सामान्य व्यक्ति भी उनके श्रवण एवं मनन से प्रभावित हो जाता है। बहुत से आख्यानों में जहां परोपकार, उदारता, त्याग, सहनशीलता आदि सत् प्रवृत्तियों के गौ-रवगान के संकेत हैं, वहां काम, क्रोध आदि दुष्प्रवृत्तियों के दुष्परिणामों से साव-धान किया गया है, जिससे मानव-समाज में उदात्त जीवन-मूल्यों की स्थापना संभव हो सके।

तुलसी युग पराधीनता का युग था। एक परतन्त्र जाति के समाज में जो भी अवगुण हो सकते हैं वे तत्कालीन हिन्दू समाज में आ चुके थे। वे हिन्दू जाति और हिन्दू समाज को उसके उन्नत अतीत की ओर ले जाना चाहते थे। वे अपने समाज की दीन और हीन अवस्था से चिन्तित थे, जिससे उनका कोमल हृदय हाहाकार करता था। उनके हृदय का यह क्षोभ, तुलसी काव्य के अनेक प्रसंगों में मुखरित हुआ है।

क्या तुलसीदास इन आख्यानों के माध्यम से भारतीय समाज, परिवार तथा व्यक्ति के आदर्शों की प्रतिष्ठा स्थापित करने में सफल रहे हैं? क्या वे मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों, मनःस्थितियों तथा भावनाओं को उचित प्रतिनिधित्व दे सके हैं?

इस दृष्टिकोण से राम के आख्यान को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। रामत्व का आधार लेकर कवि ने जो कुछ भी लिखा है, वह सभी दृष्टियों से महान् तथा सार्वकालिक बन गया है। यह तुलसी की कलाकुशलता का ही परिणाम है कि 'रामचरितमानस' आज करोड़ों भारतीयों का धर्मग्रन्थ है। उसके सभी प्रतिमान तुलसी के अवतारी राम के प्रतिरूप हैं।

राम को आदर्श रूप में चित्रित करने के लिए तथा धर्म, नीति, अध्यात्म, समाज, सत्संगति, अहंकार, मद, मोह आदि पर प्रकाश डालने वाले बहुत से आख्यानों का विनियोग तुलसी साहित्य में उपलब्ध होता है। आज यदि ये आख्यान भारतीय जनमानस में जीवित हैं, तो इसका मूल कारण यही है, कि कवि की प्रतिभा-कला के संस्पर्श ने उन्हें अमरत्व प्रदान कर दिया है।

तुलसी से पूर्व संस्कृत भाषा में निरूपित होने के कारण ये आख्यान सामान्य भारतीय जनता के लिये उपादेय सिद्ध नहीं हो सकते थे और पण्डितवर्ग के एकाधिकार में ही सीमित थे। तुलसी ने जनता की भाषा में उनका प्रस्तुतीकरण करके उन्हें जनता के अधिक निकट लाने का महामहनीय प्रयास किया। यह उसी प्रयास का फल है कि आज ध्रुव, प्रह्लाद, द्रौपदी, श्रवणकुमार, हरिश्चन्द्र, कर्ण, श्रीकृष्ण, वाल्मीकि, शबरी जैसे बहुत से आख्यान जनता के जीवन का अविभाज्य अंग बन चुके हैं। हरिश्चन्द्र की सत्यवादिता तथा श्रवण की पितृभक्ति ने महात्मा गांधी जैसे राष्ट्रपुरुष को जो संबल प्रदान किया था, उस के विषय में स्वयं राष्ट्रपिता ने अपनी आत्मकथा में सविवरण प्रकाश डाला है।

तुलसी ने धर्म और नीति के प्रचार में, अवतारवाद के प्रसंग में, उदात्त भावनाओं के स्पष्टीकरण में जिन आख्यानों के दृष्टान्त दिये हैं, वे भी भारतीय जनता के मानस में घुल-मिल गये है। लोककथाओं, लोकगीतों, वाद-विवादों और सभा-सम्मेलनों में वक्ताओं द्वारा उनका प्रयोग इसका प्रमाण है। कथावाचकों द्वारा अपनी बात के समर्थन में आख्यानों का दृष्टान्त रूप में प्रयोग भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है।

जहां तक इन आख्यानों के जनमानस पर प्रभाव की बात है, उसके सम्बंध में भी स्पष्ट है कि द्रौपदी की लाज-रक्षा के आख्यान ने भारत की असंख्य नारियों में भगवान् की शरणागत रक्षकता में आस्था उत्पन्न की है। शबरी अजामिल और वाल्मीकि के आख्यान सामान्य जनता में भगवान की दीनबन्धुता में विश्वास उत्पन्न करने में सहायक हुए हैं। प्रहलाद के आख्यान ने दुर्बल व्यक्तियों को भी अन्याय एवं अत्याचार को चुनौती देने का साहस प्रदान किया है। श्रीराम के आख्यान से गांधी जी इतने प्रभावित थे कि स्वाधीनता के

बाद उन्होंने देश में रामराज्य जैसे शासनतन्त्र की कल्पना की थी। आज भी भारत में रामराज्य एक आदर्श के रूप में स्वीकार किया जाता है।

भगवान राम की शरणागत रक्षा, श्रीकृष्ण की न्यायप्रियता, हनुमान का सेवा-भाव, कर्ण की दानशीलता, हरिश्चन्द्र का सत्यपालन, प्रहलाद की निर्भीकता, शिवि एवं दधीचि का लोकमंगल के लिए अभूतपूर्व त्याग आदि से सम्बन्धित आख्यानों के माध्यम से कवि ने सामान्य जनता में चरित्रनिर्माण, नैतिकता का पालन, न्याय का समर्थन, समाजसेवा, स्वार्थ त्याग, परोपकार आदि की शिक्षा प्रदान की है। इन आख्यानों के माध्यम से तुलसी ने मानव के सम्मुख ऐसे आदर्श स्थापित किये हैं, जिनके प्रभाव से वह पवित्र और उत्तम जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा प्राप्त करता रहा।

पौराणिक आख्यानों के विनियोग की दृष्टि से तुलसी साहित्य का विशेष महत्व है। यह तुलसी जैसे महान् कवि एवं साधक का ही सामर्थ्य था, जिन्होंने वर्षों तक पुराण साहित्य का अध्ययन करके, उसमें से ऐसे आख्यानों का चयन किया, जिनका प्रभाव और महत्व केवलमात्र सामयिक न होकर सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक है। तुलसी का समकालीन कोई अन्य कवि भारतीय जनता के सम्मुख ऐसा आदर्श प्रस्तुत नहीं कर सका।

दूसरा कारण इन आख्यानों का साभिप्राय विनियोग है। कवि ने प्रत्येक आख्यान का विनियोग किसी न किसी उद्देश्य को लेकर किया है। कवि किसी आख्यान विशेष के प्रयोग से केवल किसी नैतिक, धार्मिक अथवा आध्यात्मिक सत्य की अभिव्यंजना ही नहीं करता, प्रत्युत अपने अध्येता को सामाजिक व्यवहार से सुपरिचित भी करा देता है।

अगस्त्य द्वारा समुद्रशोषण आख्यान में अगस्त्य की लोकमंगल की भावना एवं तपोवल की महिमा का, ध्रुव, अजामिल एवं वाल्मीकि-आख्यान में राम नाम के माहात्म्य का, अम्बरीष आख्यान में भक्ति के प्रभाव का, इन्द्र-अहल्या आख्यान में चरित्र-स्खलन के फल का, कद्रू-विनता आख्यान में कपटी प्रकृति का, गज-मोक्ष एवं गणिका आख्यान में वैष्णव भक्ति का, चित्रकेतु आख्यान में आत्मज्ञान का, जलंधर आख्यान में पातिव्रत धर्म का, त्रिशंकु आख्यान में राज-मद एवं दुराग्रह का, दधीचि आख्यान में उपकार वृत्ति का, दण्डकवन के आख्यान में सदाचार का, नहुष आख्यान में प्रभुता के मद का, नारद-मोह आख्यान में अहंकार का, नारद को दक्ष का शाप नामक आख्यान में आध्यात्मिकता का, रन्तिदेव आख्यान में दानशीलता का, शिवि आख्यान में त्याग व उदारता का तथा हरिश्चन्द्र आख्यान में सत्यवादिता का चित्रण किया गया है।

जीवन की विभिन्न मर्मस्पर्शी स्थितियों को इन आख्यानों के माध्यम से उभार कर तुलसी ने अपने वक्तव्य को नवीन आयाम दिये हैं। मानव जीवन की विविधमुखी घटनाओं को उत्कृष्ट रूप में चित्रित करने में तुलसी की सफलता का यह ऐकान्तिक रहस्य है।

इस क्षेत्र में तुलसी की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि प्राचीन तथा अर्वाचीन संस्कृति में एकता की स्थापना है। आज के भौतिक युग में रहते हुए भी हम भावात्मक रूप से अनेक आख्यानों के आदर्श पात्रों से जुड़े हैं। राम, सीता, सावित्री, द्रौपदी, ध्रुव, प्रहलाद, हरिश्चन्द्र, श्रवण, शबरी, नारद, शिवि, दधीचि आदि हमारे सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

आज भारत तथा विदेशों में भी श्रीराम को जो असाधारण लोकप्रियता प्राप्त है, उसकी पृष्ठभूमि में तुलसी का आदर्शवादी चित्रण है। यदि ऐसा न होता तो आज भारत धर्मप्राण देश न होता। भारत की नारियां पातिव्रत धर्म के महत्व को भूल जातीं; व्यक्ति, परिवार व समाज के सम्बन्धों में विश्रृंखलता आ जाती; त्याग, उदारता, दान, सहनशीलता, जितेन्द्रियता, शिष्टता, सहानुभूति, करुणा आदि मानव मूल्यों का ह्रास हो जाता। स्थान-स्थान पर रामलीला का आयोजन न होता। रामनवमी तथा विजयदशमी के उत्सव निष्प्राण हो जाते।

तुलसी ने रामत्व का आधार लेकर पौराणिक आख्यानों के माध्यम से सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से जो सम्पदा प्रदान की है, उसका मूल्य और महत्व सर्वथा अक्षुण्ण है। यह सत्य है कि राम का आधार लेकर तुलसी अमर हो गये, परन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि यदि तुलसी न होते, तो आज राम करोड़ों भारतवासियों के हृदय-सम्राट न होते। "यह तुलसी की लेखनी का ही प्रताप है जिसके मौलिक स्पर्श ने भयंकर सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, वैषम्य के युग में राम के चरित्र को सर्वग्राह्य एवं लोकप्रिय कर दिया तथा वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण एवं अन्य समस्त पूर्ववर्ती तथा समकालीन रामकाव्यों के राम की अपेक्षा उसे उत्कृष्ट कर दिया[1]।

---

1. शचीन्द्र भटनागर, तुलसी मानस सन्दर्भ : पृ० ५४५

सहायक पुस्तक सूची

क्रम	नाम	लेखक	प्रकाशक
१.	अष्टादश पुराण दर्पण	ज्वाला प्रसाद मिश्र	चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय काशी।
२.	आगम और तुलसी	राममूर्ति त्रिपाठी	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।
३.	आकलन और समीक्षा	डा० संसारचन्द्र	आशा प्रकाशन गृह, दिल्ली।
४.	कवितावली	तुलसीदास	गीताप्रैस, गोरखपुर।
५.	कृष्ण गीतावली	,,	,,
६.	गीतावली	,,	,,
७.	जानकी मंगल	,,	,,
८.	तुलसीदास और उनका काव्य	रामनरेश त्रिपाठी	राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली।
९.	तुलसीदास	माताप्रसाद गुप्त	हिन्दी परिषद, विश्व-विद्यालय प्रयोग।
१०.	तुलसीदास (गोस्वामी)	रामचन्द्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
११.	तुलसीदास 'गोस्वामी'	श्यामसुन्दर दास	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
१२.	तुलसी दर्शन मीमांसा	डा० उदयभानु सिंह	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।
१३.	तुलसी साहित्य और साधना	डा० इन्द्रपाल सिंह	,, ,,
१४.	तुलसीदास : जीवनी और विचारधारा	राजाराम रस्तोगी	,, ,,
१५.	तुलसी मानस रत्नाकर	डा० भाग्यवती सिंह	सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा।
१६.	तुलसी का शिक्षा-दर्शन	डा० शम्भूलाल शर्मा	आशुतोष पुस्तकालय, फलोदी, राजस्थान।
१७.	तुलसी	राममूर्ति त्रिपाठी	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।
१८.	तुलसी-दर्शन	बलदेवप्रसाद मिश्र	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
१९.	तुलसी, सूर एवं दादू में समाज एवं संस्कृति	सावित्रिचन्द्र शोभा	,, ,,
२०.	तुलसी काव्य-चिंतन	रामप्रतिपाल मिश्र	,, ,,

क्रम	नाम	लेखक	प्रकाशक
२१.	तुलसी साहित्य और सिद्धान्त	यज्ञदत्त शर्मा	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
२२.	तुलसीदास और उनका युग	भगीरथ मिश्र	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।
२३.	तुलसीदास, परिवेश, प्रेरणा, प्रतिफलन,	हरीकृष्ण अवस्थी	,, ,,
२४.	तुलसी मानस सन्दर्भ	—	मानस चतुश्शती आयोजन समिति, संभल (उ० प्र०)।
२५.	तुलसीदल	हनुमानप्रसाद पोद्दार	गीताप्रेस, गोरखपुर।
२६.	तुलसी साहित्य में राज-नीतिक विचार	डा० शीलवती गुप्ता	साहित्य प्रकाशन, दिल्ली।
२७.	तुलसी का राजनीतिक चिन्तन	,, ,,	सूर्य प्रकाशन एण्ड कम्पनी, दिल्ली।
१८.	तुलसी काव्य-दर्शन	डा० रामलाल सिंह	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
२९.	तुलसीकृत कवितावली का अनुशीलन	डा० भानु कुमार	पुस्तक प्रचार, गान्धीनगर, दिल्ली।
३०.	तुलसीकृत विनयपत्रिका में अन्तः कथाएं	संतोषसंघी	पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
३१.	तुलसी की दृष्टि में नारी और मानव जीवन में उसका महत्व	डा०ज्ञानवती त्रिवेदी	काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय, काशी।
३२.	नैतिकता और सगुण-भक्ति साहित्य	डा० विद्याधर	सूर्य प्रकाशन एण्ड कम्पनी, दिल्ली।
३३.	पार्वती मंगल	तुलसीदास	गीताप्रैस, गोरखपुर।
३४.	पुराण कथा कौमुदी	रघुनाथ दत्त वन्धु	राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली।
३५.	पुराण विमर्श	वलदेव उपाध्याय	चौखम्वा विद्या भवन, वाराणसी।
३६.	पुराण दिग्दर्शन	माधवाचार्य शास्त्री	माधव पुस्तकालय, कमला-नगर दिल्ली।
३७.	पुराण और साहित्य	रायकृष्ण दास	,, ,,
३८.	पुराण सन्दर्भ कोश	पद्मिनी नेनन	,, ,,
३९.	पौराणिक आख्यानों का विकासात्मक अध्ययन	उमापतिराय चन्देल	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

क्रम	नाम	लेखक	प्रकाशक
४०.	पौराणिक उपाख्यान	द्वारिकाप्रसाद शर्मा	,, ,,
४१.	प्राचीन भारतीय साहित्य	रामचन्द्र पाण्डेय	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
४२.	बरवै रामायण	तुलसीदास	गीताप्रैस, गोरखपुर।
४३.	भारतीय संस्कृति	शिवदत्त ज्ञानी	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
४४.	भारत का सांस्कृतिक इतिहास	हरिदत्त वेदालंकार	मेहरचन्द लक्ष्मण दास, सैद मिट्ठा बाजार, लाहौर।
४५.	भारतीय संस्कृति की रूपरेखा	गुलाबराय	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
४६.	भारतीय संस्कृति को तुलसीदास का योगदान	बलदेवप्रसाद मिश्र	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
४७.	भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास	पी० एन० चोपड़ा	मैकमिलन कम्पनी आफ़ इण्डिया, मद्रास।
४८.	मध्ययुगीन साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन	डा० सत्येन्द्र	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
४९.	मनुस्मृति	मनु	मेहरचन्द लक्ष्मणदास, सैद मिट्ठा बाजार, लाहौर।
५०.	मन्वर्थ मुक्तावली	कुल्लूकभट्ट	,, ,,
५१.	महाकवि तुलसीदास और युगसन्दर्भ	रामरतन भटनागर	सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली।
५२.	मध्य युगीन वैष्णव-संस्कृति और तुलसीदास	डा० रामरत्न भट्टनागर	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
५३.	महाकवि तुलसीदास और उनका युग	भगीरथ मिश्र	सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली।
५४.	मानस सन्दर्भ कोश	वागीशदत्त पाण्डेय	ग्रन्थम, कानपुर।
५५.	रामकथा	कामिल बुल्के	हिन्दी परिषद प्रकाशन, प्रयाग।
५६.	रामचरितमानस	तुलसीदास	गीताप्रैस, गोरखपुर।
५७.	रामाज्ञा प्रश्न	,,	,, ,,
५८.	रामलला नहछू	,,	,, ,,
५९.	रामकथा के पात्र	डा० राजूरकर	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।

क्रम	नाम	लेखक	प्रकाशक
६०.	रामकाव्य की भूमिका	डा० जगदीशप्रसाद	राजपाल एण्ड सन्ज़, न्यू दिल्ली।
६१.	रामकथा और तुलसी	डा० राजूरकर	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।
३२.	रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन	सं० डा० नगेन्द्र	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।
६३.	रामचरितमानस में पुराख्यान तत्व	डा० चन्द्रशेखर	,, ,,
६४.	रामचरितमानस : नाना पुराण निगमागमसम्मतम्	डा० गनौरी महतो	,, ,,
६५.	लोकधर्म और मर्यादा-वादी तुलसी	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	,, ,,
६६.	लोककवि तुलसी	डा० सरला शुक्ल	सूर्य प्रकाशन एण्ड कम्पनी दिल्ली।
६७.	लोकवादी तुलसी	विश्वनाथ तिवारी	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।
६८.	विश्वकवि तुलसी और उनके काव्य	डा० रामप्रसाद मिश्र	सूर्य प्रकाशन एण्ड कम्पनी, दिल्ली।
६९.	विनय-पत्रिका	,,	,, ,,
७०.	विनय-पत्रिका में अन्तः कथाएं	संतोष संघी	पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
७१.	वैदिक साहित्य का इतिहास	राजकिशोर सिंह	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
७२.	वैराग्य संदीपनी	तुलसीदास	गीताप्रेस, गोरखपुर।
७३.	वैदिक साहित्य और संस्कृति	बलदेव उपाध्याय	,, ,,
७४.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	बलदेव उपाध्याय	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
७५.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
७६.	हिन्दी साहित्य की भूमिका	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
७७.	हिन्दी साहित्य	श्यामसुन्दर दास	,, ,,
७८.	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा	,, ,,
७९.	हिन्दी विश्वकोश	नगेन्द्रनाथ वसु	विश्वकोश लेन बाग बाजार, कलकत्ता।

क्रम	नाम	लेखक	प्रकाशक
८०.	हिन्दी विश्वकोश	—	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
८१.	हिन्दुत्व	रामदास गौड़	सेवा उपवन, काशी।
८२.	हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता	डा० वेणीप्रसाद	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
८३.	हिन्दू सभ्यता	राधाकुमुद मुखर्जी	,, ,,

संस्कृत पुस्तक सूची

क्रम	नाम	लेखक	प्रकाशक
८४.	अथर्व वेद	—	सं, प्रका० श्री सातवलेकर, भारत मुद्रणालय, औन्ध, १७, बम्बई।
८५.	अध्यात्म रामायण	—	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
८६.	अमरकोश	अमरसिंह	निर्णय सागर प्रैस, बम्बई।
८७.	अग्निपुराण	—	आनन्दाश्रम ग्रन्थ माला, पुना।
८८.	आनन्द रामायण	—	चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी।
८९.	ऐतरेय ब्राह्मण	सं० डा० अलवर्चट वेवर	रायल एकेडमी प्रैस, बम्बई।
९०.	ऋग्वेद संहिता	सं० मैकसमूलर	एलन एण्ड कम्पनी, लण्डन।
९१.	कूर्मपुराण	—	एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता।
९२.	गरुड पुराण	—	वेंकटेश्वर प्रैस, बम्बई।
९३.	छान्दोग्योपनिषद	सं० जीवानन्द विद्या सागर	सुचारू प्रैस, कलकत्ता।
९४.	तन्त्रवार्तिक	तुकाराम जावजी	निर्णय सागर प्रैस, बम्बई।
९५.	न्यायदर्शन सूत्र	गौतम	आनन्दाश्रम प्रैस, पूना।
९६.	नारदीय पुराण	—	सतातन धर्म प्रैस, मुरादाबाद।
९७.	निरुक्त	सं० जीवानन्द विद्या सागर	सरस्वती प्रैस, कलकत्ता।
९८.	पद्मचन्द्र कोश	गणेशदत्त शास्त्री	मेहरचन्द लक्ष्मण दास, लाहौर।

क्रम	नाम	लेखक	प्रकाशक
९९.	पद्म पुराण	—	ग्रानन्दाश्रम ग्रन्थमाला, पूना ।
१००.	ब्रह्मसूत्र भाष्य	सं०तुकाराम जावजी	निर्णय सागर प्रैस, बम्बई ।
१०१.	ब्रह्म पुराण	—	ग्रानन्दाश्रम ग्रन्थमाला, पूना ।
१०२.	ब्रह्माण्ड पुराण	—	बेंकटेश्वर प्रैस, बम्बई ।
१०३.	ब्रह्मवैवर्त पुराण	—	गुरु मण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता ।
१०४.	भविष्य पुराण	—	नवल किशोर प्रैस, लखनऊ ।
१०५.	भागवत पुराण	—	गीताप्रैस, गोरखपुर ।
१०६.	मनुसंहिता	—	एजुकेशन प्रैस, कलकत्ता ।
१०७.	मत्स्य पुराण	—	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
१०८.	महाभारत	—	गीताप्रैस, गोरखपुर ।
१०९.	मार्कण्डेय पुराण	—	बेंकटेश्वर प्रैस, बम्बई ।
११०.	लिंग पुराण	—	,, ,,
१११.	वराह पुराण	—	एशियाटिक सोसाइटी बंगाल ।
११२.	वामन पुराण	—	बेंकटेश्वर प्रैस, बम्बई ।
११३.	वाचस्पत्यम्	तारानाथ भट्टाचार्य	काव्यप्रकाश प्रैस, कलकत्ता ।
११४.	वाल्मीकि रामायण	—	बेंकटेश्वर प्रैस, बम्बई ।
११५.	विष्णु पुराण	—	गीताप्रैस, गोरखपुर ।
११६.	वृहदारण्यक	—	सुचारू प्रैस, कलकत्ता ।
११७.	शतपथ ब्राह्मण	डा० ग्रललचर्ट वेवर	रायल एकेडमी प्रैस, लण्डन ।
११८.	शिव पुराण	—	बेंकटेश्वर प्रैस, बम्बई ।
११९.	स्कन्द पुराण	—	,, ,,
१२०.	साहित्य दर्पण	विश्वनाथ	मोतीलाल बनारसीदास लाहौर ।

पत्र-पत्रिकाएं

१. कल्याण : भक्ति ग्रंक — गीताप्रैस, गोरखपुर ।

२. कल्याण : रामचरितमानस अंक ,, ,,
३. कल्याण : मानवता अंक ,, ,,
४. तुलसी विशेषांक जम्मू यूनिवर्सिटी रिव्यू।
५. पुराणम् आल इण्डिया काशीराज ट्रस्ट, वाराणसी।
६. सम्मेलन पत्रिका : मानस चतुःशती विशेषांक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद।

अंग्रेजी पुस्तक सूची

१. नोटस आन तुलसीदास : जार्ज ग्रियर्सन।
२. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया : जार्ज ग्रियर्सन।
३. विष्णु इन वेदाज़ : दाण्डेकर।
४. वैस्ट्रन ओरियण्टलिज़म : जे० रोगर रैवीयर।
५. हिस्ट्री आफ एनिशिएन्ट इण्डिया : वी० ए० स्मिथ।
६. हिन्दी लिट्रेचर : डा० के० के०।
७. हिस्ट्री आफ इण्डियन लिट्रेचर : विण्टरनित्ज़।

अनुक्रमणी

ख

ग

च

छ

ज

त

द

श

स

लेखक-परिचय

नाम : डॉ० बालकृष्ण शास्त्री ।

जन्म : 11 सितम्वर, 1931.

शिक्षा : शास्त्री—जम्मू व कश्मीर विश्वविद्यालय ।
एम० ए०—पंजाब विश्वविद्यालय ।
पी-एच० डी०—जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू ।

सम्प्रति : अध्यक्ष हिन्दी विभाग
राजकीय महिला कॉलेज, परेड, जम्मू ।

कृतियां : १. देविका तट दी संस्कृति ।
२. डुग्गर च देविका नदी दा सांस्कृतिक महत्तव (डोगरी) ।

प्रकाश्य : माता वैष्णो
इतिहास और कथा ।